

॥ श्रीमत् सुखसागर सद्गुरुर्विजयतेतराम ॥

॥ सुख चरित्र ॥

(रचयिता)

मुनिवर्य श्रीमान् वीर पुत्र

आनन्दसागरजी महाराज साहेब.

SUKH CHARITRA.

BY

MUNIVARYA SHREELMAN VELI PUTRA
ANANDSAGARJEE MAHARAJ

(प्रसिद्ध कर्त्ता)

कोठारी पूनमचन्द आनन्दमल्ल.

बीकानेर-राजपूताना

वीर सम्मत १४४३] वि सं १९७४ [सन १९१७

प्रथम संस्करण
१८८८

} सर्व हफ्ता स्थायी

{ न्यायालय
तत्त्वग्रहण

अहमदाबादके

साठपुर टंकशालमें-जी युनिपन प्रीन्टिंग प्रेस कंपनी लीमिटेडमें
मोतीलाल सामन्दासने ठापा

(३)

॥ ॐ ॥

॥ श्री जिनेश्वरभ्यो नमः ॥

॥ श्रीमद् सुखसागर सद्गुरुभ्यो नमः ॥

॥ प्रस्तावना ॥

क्या कोई ऐसा पुरुष है कि जो अपने धुरंधर आचार्योंदि महान् पुरुषोंके चरित्र सुनना न चाहै ? उन्होंने किस ५ समयमें क्या २ महत्वके कार्य किये कि जिससे जन समुदाय एक अलौकिक हालतमें आ गया ? उत्तरमें कहना होगा कि अज्ञान प्रेमियोंको ठोम मत्येक मनुष्य इस बातको जानने व सुनने की इच्छा करेगा

इस जैन शासनमें परम परमात्मा चरम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामीके पश्चात् अनेकानेक महान् विद्वान् उद्यमशील परोपकार परायणादि विशिष्ट गुण विज्ञापित ऐसे ५ आचार्य होगये हैं कि जिनका चरित्र पढ़कर या सुनकर हरेक जव्य जिज्ञासु अपने आचरणको सुधार जैन शासनको उन्नत दशामें लानेके लिये मयत्नशील हो सकता है

आधुनिक समयमें जी पाश्चात्य विद्वानोंको पुरातन चरित्र (ANCIENT HISTORIES) पढ़ने व लिखनेका अत्यन्त शौख है इतना ही नहीं चरनवे अपना सर्व समय ग्रंथ व लेखादिके मोजमें व्यतीत कर अपनेको कृतकृत्य मानते हैं तात्पर्य की महान् पुरुषोंका चरित्र ,मनुष्योंको निर्मल बुद्धिधारक बना देता है

यद्यपि जैन वर्गमें सेकनों आचार्य मत्तर बुद्धिको धारण करनेवाले हो गये तदपि आसन्नोपकारियोंके चरित्र हमें जियादे लाभप्रद हो सकते हैं

बस इस ही बातको विचार कर इस ग्रंथमें एक महान् विद्वान् तपस्वी, यशस्वी, परोपकार परायणका चरित्र लिखनेका मयत्न किया गया है जैनके महान् उद्यमशील आचार्योंमें आप जी एक अद्वितीय मुनिराज हो गये हैं

आपका पवित्र नाम “सुखसागरजी महाराज” या आप असाधारण विद्वान् महा महोपाध्याय श्रीमान् कृपाकल्याणजी महाराजके पञ्चम पट्टपर हुवे हैं। आपकी विद्यमानी वीर सं. १३४७ विक्रम सं. १८१६ से वीर सं. १४११ विक्रम संवत् १९४१ तक रही।

सच्चा चरित्र वही है कि जो जीवनीके साथका साथ कइयक सिद्धान्तिक रहस्योंमें जरा हुवा हो तात्पर्यकी इस चरित्रके अंदर ग्रंथ कर्त्ता महानुभावने अपनी विशाल बुद्धिसे योग्य १ स्थानो पर प्रसंगानुक्रमसे बड़े ही रहस्यकी बातें उल्लेख कर जनों समुदाय पर महडपकार किया है।

इस ग्रंथके निर्माता पूज्यपाद गणाधीश्वर शान्त मूर्ति मुनि महाराज श्रीमान् त्रैलोक्यसागरजी महाराजके स्वयं वैरागी, आवाल ब्रह्मचारी, बुद्धि विचक्षण, सुविनीत शिष्य श्रीमान् वीरपुत्र आनंद सागरजी महाराजने अपने अमूल्य समयको सार्थक कर गुरु जन्मिके वश व परोपकारार्थ इस ग्रंथकी रचना कर अपनी निर्मल बुद्धिका परिचय दिया है।

आपने इसमें हमारे चरित्र नायकके अनुपम चरित्रको वर्णन करते हुवे प्रथम ग्रहस्थाश्रमके विषयकों खुलासा तौर पर उद्धृत किया है।

आपने इसमें मुख्य १ चौबीस विषयोंको बड़े ही योग्यताके साथ दर्शाये हैं। खासकर ज्ञान, दर्शन और चारित्रिका आपने हेतु युक्ति करके नये ढंगपर इस प्रकार उल्लेख किया है कि प्रत्येक साधारण बुद्धिवाला जी उसके गूढ़ रहस्यों सहज ही समझ सके।

आगे चल कर आपने दान, शील, तप और ज्ञानाचार्यों इस प्रकार खुलासा बताया है कि लोगोमें जो आजकल इन चारों विषयों पर वादानुवाद चलते हैं वे तो मानो पलायन ही कर गये-

ऐसे अलौकिक ग्रंथको देख हमारी इच्छा हुई कि यदि यह ग्रंथ ठपकर प्रकाशित हो जाय तो जैन व जैनेतर सर्वकों बड़ा उपयोगी हो।

हमने हमारे अजिमाय उक्त ग्रंथ रचयिता मुनिराजके सन्मुख निवेदन किये आपने महत् कृपाकर हमको यथेष्ट करनेकी आज्ञा नहीं दी की

हमारे लघु चाता आणंदमल्लके स्वर्गीय पुत्र “दा रचन्ड” के परजव जात समय ज्ञानादि टिकि के लिये कितनाक वृष्य सस्थापन कर रखवा है इस अवस्थामें हमने यह कार्य उत्तम समझ उसहीके तर्फमें यह ग्रंथ ठपकाकर विना मूल्य विनीर्ण किया है.

इस ग्रंथके अंतमें हमारे चरित्र नायकके गुण गाँतित अष्टक और कितनीक गहूलियें जी रखी गई हैं

अन्तमें हम ग्रंथकर्त्ता महानुजायको कोटिगः व यवाद देकर पाठक उगोंमें सविनय निवेदन करते हैं कि इस ग्रंथको पढ़कर उसका अनुकरण करनेका महान लाभ उठावें

यद्यपि इसके मुद्रादि शोधनेका कार्य ध्यान पूर्वक किया गया है तदपि यदि दृष्टि दोषमें वा ठोपेवालेकी अमायधानतासे कोई त्रुटि रह गई हो तो गल्लन जन सुधारकर पढ़नेकी कृपा करें

॥ शुभं भूयात् ॥

आपके कृपाकादी
पुनमचन्द्र आनंदमल्ल कोठारी.
वीरानेर-राजपूताना

॥ ॐ ॥

॥ श्री वीतरागेज्यो नमः ॥

॥ श्रीपद्मसुखसागर सद्गुरुज्यो नमः ॥

॥ विषयाऽनुक्रमणिका ॥

नम्बर	विषय	पृष्ठ
१	मङ्गलाचरणम्	१
२	गृहस्थाश्रमका विवेचन	२
३	वैराग्यकी सुदृढता ..	५
४	दीक्षाकी यापधूम	७
१	वनोत्तेका स्वरूप	७
२	दीक्षा दिवसका शुजागमन	८
३	वरघोषिका दृश्य	९
४	श्रमणपदाऽलङ्कृत	१०
५	धर्मोपदेश	११
१	गुरु पदका महात्म्य	१४
२	कृतघ्नतापर उदाहरण..	१८
६	वृहद्दीक्षा	२०
७	धर्म देशना	२०
१	चतुर्गतिका दृश्य	२२
१	संसारकी अनिश्चिताका अनुभव ..	२५
२	गृहस्थाश्रमसे ग्लानि और वैराग्यमें रमणता	२७
८	पञ्च महा व्रतोंका दिग्दर्शन	३१
१	प्रथम आहिंसा महा व्रत	३१
२	द्वितीय सत्य महा व्रत	३२
३	तृतीय अस्तेय महा व्रत	३४
४	चतुर्थ ब्रह्मचर्य महा व्रत	३६

नम्बर.	विषय.	पृष्ठ
५	पञ्चम अपरिश्रु महा व्रत	३९
६	पञ्चम महा व्रतों पर दृष्टान्त	४०
७	प्रार्थना रूप उपदेश	४३
१०	चारित्र्य रक्षा तथा ज्योपकार	४४
११	यथा नाम तथा गुणाः	४५
१२	शान्तमुद्रा	४६
१३	सम्यग् ज्ञानकी महिमा	५०
१	दिव्य पुरुषार्थ	५०
२	पाठनशैली	४९
३	अमृत रसका आस्वादन	५३
१४	सम्यक् दर्शनका विवेचन	५५
१५	सम्यक् चारित्र्यका विवरण	५८
१	अष्ट प्रवचन माताका स्वरूप ...	५९
१	धोर शत्रु मनकी डर्जयता.	६२
२	अज्ञूत दृष्टान्त....	६४
३	मौनानंद	६९
४	कायोत्सर्गकी संनिष्ठता.	७०
१६	दान गुण पर व्याख्या	७४
१७	शीलका महा प्रज्ञाव.	८१
१	पवित्र नववाक्नोंका विचार	८२
१८	दिव्य तपस्या	९५
१	गुरु शिष्यका अपूर्व दृश्य.	१०५
२	सर्वोपयोगी तप चिन्तन	१३२
३	इखठी तपस्याका महा फल	१३८
१९	निर्मल जावना	१४३
२०	अप्रति वक्षताका विशाल प्रज्ञाव	१५९
१	जगद्विषय वाणीका माहात् प्रज्ञाव.	१६०

	१	कुतुहलमें गुणाकर	.	.	.	१६३
११		जवान्तरमें उत्तम प्रस्थान	१७०
१२		प्रजावशाली गुरु जयन्ति	१७३
१३		मोहन गुर्वावली	१७४
१४		ग्रन्थकी पूर्णाहुतीके दोहरे	११०

॥ शुद्धम् ॥

V. A. S.



(११)

॥ ॐ ॥

॥ श्री वीतरागेन्द्रो नमः ॥

॥ श्रीपत् सुखसागर सद्गुरुभ्यो नमः ॥

॥ समर्पण पत्रिका ॥

शान्त, दान्त, महन्त, डर्नय त्यागी, सकल गुणरागी, अशरण शरण,
तरण, तारण, कृपावन्त, दयावन्त, गुणवन्त, धर्म धुरंधर, धर्मावतार, तेजस्वी,
यशस्वी, अतुल प्रतापी, आसङ्ग, वर्मङ्ग, तत्त्वज्ञाद संमत्त गुण चरिष्ट जैन
गगन मार्गएम् विशाल ज्ञानी गणाऽधोश्वर विज्ञाते स्मरणीय पूज्यपाद गुरु-
वर्य श्रीमज्जेनाचार्य श्री श्री श्री १००० श्री श्रीमान् सुखसागरजी महाराज
साद्व्य की ज्योत् निर्मल सेवामें

हे पृथ्वेश्वर ! आपने घोर तपस्यादि अनेक सदाचारों द्वारा दुर्निवार
कर्म बधनोंको शिथिल कर दिये, इतनाही नहीं किन्तु अनेक प्रकृतियोंको
मध्यस्थ कर निर्मूल कर दीं

हे अद्वैत विद्वातः ! आपने अपने दिव्य ज्ञानकी मौढ शक्ति द्वारा जैन
वर्मका विशाल प्रज्ञाव चारों ओर विस्तीर्ण किया अर्यान् दमकती हुई दिव्य
ज्ञान कान्तिसे जूमएडलका प्रकाशित कर दिया

हे कुरुणारम् जण्णार ! आप श्रीने अपने पवित्र हृदयसे उमरते हुवे व-
चनमृतों द्वारा अनेक देह धरियोंका अनुपम उपकार कर उनके जीवनको
सार्थक किये

हे स्वामिन् ! हम सकल समाज आपके नित्य स्मरणीय परमोपकारको
जीवन पर्यन्त स्मृति पयसे तनिक भी त्रियोगावस्था प्रतिपन्न नहीं कर सकते

हे माणाधार ! उपरोक्त दिव्य गुणोंका मुद्गुर्मद्गुःखिन्नन कर आपके जव्य जीवन स्मरणाय यह लघु ग्रन्थ “सुख चरित्र” आपकी पवित्र सेवायें सादर समर्पण कर सविनय प्रार्थना करता हूँ कि मेरे कुछ जीवनको कृतार्थ कीजिये.

॥ शिवं जवतु ॥

जवदीय चरणोपासकः—

आनंदसागर,

मु० बीकानेर-राजपूताना.



(ग्रंथरचयिता के गुरुवर्य ।)

प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद गुरुवर्य श्री श्री श्री १००८
श्रीमान् त्रैलोक्यसागरजी महाराज साहव ।



जन्म वीरात् २३९९]

[दीक्षा वीरात् २४२२

(ग्रंथरचयिता)

विभाते स्मरणीय पूज्यपाद मुनिवर्य श्रीवीर-
पुत्र श्रीमान् आनंदसागरजी महाराज ।



जन्म वीरात् २४१९]

[म्रणा वीरात् २४३७]

॥ ॐ ॥

॥ श्रीवीतरागेभ्यो नमः ॥

॥ श्रीमद सुखसागर सङ्गुह्यो नमः ॥

॥ सुखचरित्र ॥

(मङ्गलाचरणम्)

अर्हन्तो जगवन्त इन्द्रमहिता. सिद्धाश्चसिद्धि स्थिता ।
आचार्या जिनशासनो व्रतिकराः पूज्यानुपाध्यकाः ॥
श्रीसिद्धान्त सुपाठका मुनिवरा रत्नत्रयाराधकाः ।
पञ्चैतेपरमोष्ठिनः प्रतिदिनं कुर्वन्तुवो मङ्गलम् ॥ १ ॥

जाचार्यः—प्रथमही प्रथम अखिल दूषणत्यागी, सकल गुण गणालंकृत,
परमोपकारीश्री अर्हन्त जगवानकों नमस्कारता हूँ (कथ्यन्ता अर्हन्तः) कैसे
हैं वे अर्हन्त प्रभु (इन्द्रमहिताः) उच्चर्गसे पूजित हैं

तत्पश्चात् निरक्षण, निराकार, अकथ्य, अविनाशी, केवलज्ञान, केवलदर्शन,
दायकममकितादि गुणोंको धारण करनेवाले सिद्ध परमात्माकों नमस्कार करता हूँ (कथ्यन्ताः सिद्ध देवा) कैसे हैं वे सिद्ध प्रभु (सिद्धस्थिताः)
सिद्ध स्थानके अन्दर स्थित हैं

तत्पश्चात् परमपूज्य धीरवीर, गम्भीर, धर्म्मधुरंधर, धर्म्मावतार, श्रीमदाचार्य
महाराजकों नमस्कार करता हूँ (कथ्यन्ताः आचार्याः) कैसे हैं वे आचार्य
महाराज (जिनशासनोव्रतिकराः) जिनशासनके उन्नति करनेवाले हैं

तत्पश्चात् ज्ञानदाता, परमोपकारी उपाध्याय महाराजकों नमस्कार करता

हूँ (कथम्भूताः उपाध्यायकाः) कैसे हैं वे उपाध्याय महाराज (श्रीसिद्धान्त सुपाठकाः) ग्यारह अङ्ग और बारह उपाङ्गादि सिद्धान्तोंको पढ़ानेमें परिपूर्ण निपुण हैं।

तत्पश्चात् परमपवित्र, शान्त मुद्राधारी, निर्मल चारित्रधारी, दिव्य ज्ञान गुणोपेत श्रीमन्मुनि महाराजानुकों नमस्कार करता हूँ (कथम्भूता मुनिवराः) कैसे हैं वे पवित्र मुनिमहाराज (रत्नत्रयाराधकाः) ज्ञान, दर्शन और चारित्र तीन रत्नोंकी आराधना करनेवाले हैं।

यह अनन्त गुण गणालंकृत पञ्चपरमेष्ठि प्रतिदिन मङ्गलकारी होवें यही प्रार्थना है।

अब मैं अपने परमोपकारी, शान्त, दान्त, महन्त, धीरवीर, गम्भीर, तेजस्वी, यशस्वी, सागी, वैरागी, धर्मधुरंधर, धर्मावतार, विशालज्ञानी, निर्मलदर्शनधारी, मोक्षान्जिलाषी, उत्कृष्टसंयमधारी, ब्रह्मजागी, सुजागी, अवाल-ब्रह्मचारी, अतुलप्रतापी, शशिसमान सौम्य, सायरसम गंजीर, पृथिवसम सहनशील, जारण्मवत् अमभक्त, सकल गुणरागी, अज्ञानतिमिरजाष्कर, कृपावतार, दयासागर, आत्मध्यानी, योगीश्वर, शास्त्रज्ञ, धर्मज्ञ, तत्त्वज्ञाथनेक गुणगुणालंकृत प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद गुरुवर्यश्री श्री श्री १००० श्री श्री खरतरगञ्ज गगनाम्बरमणि श्रीमज्जेनाचार्य गणाऽधीश्वर श्रीमान् सुखसागरजी महाराज साहबका “ संक्षिप्त जीवनचरित्र ” लिख दिखनेका प्रयत्न करता हूँ।

सज्जनो! यद्यपि मेरी इतनी सामर्थ्य नहीं हैं, कि उन महान् पुरुषका सच्चरित्र वर्णन कर सकूँ तदपि उनहीके महा प्रज्ञावकी अतुल कृपाका अबल-म्बनकर अपने विषय (Subject)—में प्रवृत्त होता हूँ।

॥ गृहस्थाश्रमका विवेचन ॥

अतीव मनोहर मरु स्थल देशमें बीकानेरके निकट सरसा नामक एक ग्राम है, वहांपर खीची नामक क्षत्रीय वंशसे उत्पन्न हुवे डग्गर गोत्रको धारण करनेवाले जैन बृहत् औंस वंशके अन्दर सुशोभित जैन धर्मानुरागी, मनसु-

खलालजी नामक श्रावक निवास करते थे, उनके पतिव्रतको धारण करने-
वाली जेतीयाई नामकी जार्या थी इनके चतुर्वुष्टिकों धारण करनेवाला मुख-
लाल नामक एक सुपुत्र था, ये लोग न्याय इव्यापार्जन करके अपनी आजी-
यका करते थे तथा धर्मकी आराधनाजी उत्तम प्रकारसे करते थे इस प्रकार
मुखपूर्वक अपना काल निर्गमन करते थे

इस सुपुत्रका जन्म वीर संवत् (१३४५) विक्रम संवत् १८१६ में हुआ
द्वितीया क शशि समान दिनघटिन चढती कलाको प्राप्त होने लगा इस प्रकार
मुखपूर्वक वाङ्मयावस्था व्यतीत की, इसही अवस्थामें आपके मातपिता
परलोक प्रस्थान कर गए कितनेक समयके पश्चात् अपनी जगिनीके कथनसें
जयपुर नामक शहरमें प्राप्त हुवे, वहापर गोलेन्ना माणियचइजी, लक्ष्मीचंइ-
जीकी सहायतासें मुत्फरीक वस्तुओं (Spices) का व्यापार करते थे

कितनेक काल पर्यंत तो इस प्रकार न्यायमे इव्योपार्जन किया तत्पश्चात्
उपरोक्त सहायक श्रेष्ठीके वहापर मुनीमपदकों धारण किया और शान्ततापू-
र्वक अपना निर्वाह करते रहे, अपने स्वामीका कार्य मच्चे दिलसें नेकनामिपूर्वक
करते थे इस प्रकार अति तृष्णा (Greed) शाकिनीसें पृथक् होकर संतोष-
पूर्वक कालको निर्गमन करते रहे

आप अखण्ड शिखलव्रत (Chastity) को धारण करते हुये तपश्चर्या
(Devotion) के अंदर निपुण थे तथा व्रत, प्रत्याग्न्यानादि योग्यतापूर्वक
उत्तम प्रकारसें करते तथा प्रतिष्मण, सामायिक और जिनेश्वरकी पूजनादि
करनेमें पूर्णतः रुचिपूज थे पञ्चप्रतिष्मण और कितनेक प्रस्तावोंसे परिचित
एव देव, गुरु और धर्मकी सेवामें श्रद्धायुक्त तल्लीन थे

अनुचित जोगोपजोगको परित्याग कर योग्य पदार्थोंको सेवन करते थे
पिताजीके असन्त आग्रह होनेपर जी वेम्नि (Fetters) रूपस्त्रीको अङ्कि-
कार नहीं की, आप समझते थे कि कीचके अंदर प्रवेश हो जानेके पश्चात्
धर्मकी निर्धल आराधना नहीं कर सकेंगे इस इसमकालके अंदर स्त्रीजातिपर
विश्वास करना गोयायोका खाना है, देखिये नीतिकाम्ने कहा है:—

(४)

(श्लोक)

नदीनांचनखीनांच । शृङ्गिणामशस्त्रपाणानाम् ॥

विश्वासोनैव कर्तव्यः स्त्रीपुराज कुलेषु च ॥ १ ॥

जावार्थः—निम्न लिखितका विश्वास नहीं करना चाहिये.—नदियोंका कारण कि किसी समय फुटाकर रसातलमें पहुँचा देगी.

नखधारी व शृङ्गधारी जानवरोंकाः—कारणकि अवशरकों पाकर शरीरकों छेदन कर देंगे.

हस्तगत शस्त्रधारियोंकाः—कारणकि क्रोध वश दोनों पर मस्तकादि छेदन कर देंगे.

स्त्रियोंकाः—कारणकि डपमकालकी स्त्रियोंका चरित्र विचित्र है; देखिये कहा हैः—

(पद)

स्त्रीचरित्र जाने नहीं कोय ॥

पति मारकर सति होय ॥ १ ॥

राजाओंकाः—कारणकि कहा है कि डराचार राजाओंके कान होते हैं मगर ज्ञान (Sense) नहीं होती.

आपकों उपरोक्त नीतिवाक्यसें जली व प्रकार यिदित हो गया होगाकि स्त्री संसर्गसें किस प्रकार हानि होती है.

बुद्धिवान्पुरुष अपने आज्ञ्यन्तर विचारोंको स्त्रीके सन्मुख प्रगट नहीं करते कारणकि स्त्रीजातिका हृदय गम्भीर नहीं होता; देखिये मैं प्रसङ्ग दृष्टान्त लिख बताता हूँ.—

स्त्री अपने पम्पेसी (गृह निकटवर्ति) के सन्मुख यह जाहिर करती है

कि आज अमुक जोजन बनाया था, अमुक शाक कीयी, अमुक ब्राह्मण आया था, अमुक वस्तु लार्ई गई है, अमुक वस्तु जेजी है, अमुक प्रकारका कलह हुआ, अमुक आनन्द प्राप्त हुआ इत्यादि अनेकशः वार्तालाप करती है

सझनो ! खानपानकी जी बात जब हृदयमें नहीं उठर सकती तो दीर्घ विचारका उठरना कैसे संभव हो सकता है किसी व्यक्तिपर विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है बल्कि स्त्रीके जाति स्वभावमेंही अनेकशः डपण मौजूद हैं; उनमेंसे कितनेक यद्वापर उद्धृत करता हूँ—

(श्लोक)

अनृतंसाहसंमाया । मूर्खत्वमति लोभता ॥

अशौचत्वं निर्दयत्वं । स्त्रीणांदोषाः स्वभावजाः ॥१॥

अर्थः—ऊठ बोलना, साहसिकपन करना, कपट क्रियाओं सेवन करना, जड़ मति होना, अति लोभ दशाको धारण करना, उर्गठनीय दशामें रहना, निर्दय हृदय होना इत्यादि स्त्रीजातिमें स्वभाविक दोष होते हैं

पाठकवरों ! जब स्वभावहीके अन्दर इतने उर्गुण रहे हुवे हैं तो बाहरी दूषणोंकी गिनती कैसे हो सकती हैं; अर्थात् उष्ट्र स्त्रियें अगण्य दूषणोंमें दूषित हैं ऐसे दीर्घ विचारका अवलम्बन करके बेनीरूप स्त्रीको अङ्गीकार नहीं किया गरजकी समारमें रक्त न होते हुवे परम वैराग्य दशामें रमण करते थे

॥ वैराग्यकी सुदृढ़ता ॥

ऐसे सुअवशरमें परमपूज्य श्रीमान् राजसागरजी महाराज और ऋषि-मागरजी महाराजने अपने चरण रेणुकासें उम जयपुर नगरको पवित्र किया, अर्थात् आप महानुभावोंका गुणाग मन हुआ

आवक आगिकाओं अत्यामदमें चातुर्मासकी विनति स्वीकार कर वहीं पर सुगर्भक निवास करते रहें, आप महानुभाव जन्मात्माओंपर अतिदी उपकार किया करते थे, धर्मदेशनाके अदर मायः वैराग्य रत्नको विशेष रूपसे

प्रदर्शित करने थे. आपके अमृतमय देशनाके पान करनेमें स्वयं वैरागी सुख-लालके जाव दृढीभूत हुये.

एक दिन सुखलालने आकर श्रीमान् राजसागरजी महासागरकों दोनों करजोड़ सविनय प्रार्थना की:-

ह गुरुवर्य ! मैं मरु स्थल देशमें सरसा नामक ग्राममें रहता हूँ मेरे पि-
ताके अत्यंत आग्रह होनेपर जी सर्पणीरूप स्त्रीजालको अङ्गीकार नहीं की
और अपनी बहीनके आग्रहसें यहांपर आया हूँ.

हे स्वामिन् ? मैं बचपनसेंही वैराग्य दशामें निमग्न हूँ, इसही लिये अधिक
काल तपश्चर्यामें व्यतीत किया और सांसारिक जंजालसें पृथक् रहा.

ह नाथ ! यहापर आनेसें मुझे ऐमा अपूर्व लाभ हुआ है कि जिसका
मैं वर्णन करनेको असमर्थ हूँ; किन्तु इतनी तो अवश्यही प्रार्थना करूंगा कि
जैसें लोहेको पारस लगजानेसें सुवर्ण हो जाता है वैसें ही आप जी अपनी
उदार वृत्तिद्वारा मुझ अधमको पावन करो.

धन्य है ! ऐसे धर्मात्मा पुरुषोंकोकि जो सत्प्रज्ञतीकी वांछा करते हैं. सत्य
है ! सत् सङ्गतीका उत्तमही फल हुआ करता है. कहा है:-

(श्लोक)

काचः काञ्चन संसर्गा । हृत्ते मारकतीं द्युतिं ॥

तथा सत् सन्निधानेन । मूर्खोयाति प्रवीणताम् ॥ १ ॥

अर्थः—सुवर्णके संसर्गसें काच मरकतमणि (Emerald) के प्रज्ञाकों
धारण करता है; तैसेही सत्सङ्गतिसें मूर्ख प्राणी प्रवीणताको प्राप्त हो जाता है.

पुनः—वह गुरु महाराजको प्रार्थना करता है कि हे प्रज्ञो ? मुझे इस
असार संसारसें बहुतही ग्लानो आनी है वास्ते अनुग्रहपूर्वकदीक्षा (Incan-
tation) प्रदान कर चरणशरण कीजियेगा.

हे महानुभाव! आप खुदही जानते हैं कि “श्रेयासि बहु विप्रानि” इस-
लिये कृपाकर शीघ्रही मंयमरूपी नाँकामें स्थान दीजियेगा

यहस्याश्रममें जयजीत जानकर तथा बेराग्य (Asceticism) वचनोक्तों
श्रवण कर करुणालय मुनि महाराज श्रीराजसागरजीने फरमाया “एवमस्तु”

प्रथमही प्रथम तो यह खयाल हुआ कि चातुर्मासमें दीक्षा देना शास्त्रोंमें
मना फरमाया है और यह बेरागी अतिही आतृता करता है अत्र क्या क-
रना चाहिये? विचारज्ञानमें शीघ्रही यह विज्ञात हुआ कि जैन सिद्धान्तोंका
एकान्त पक्ष नहीं है किन्तु सामान्य और विशेष दोनोंही नियम हुआ करते
हैं, शास्त्रकारोंका यह जी हुकुम है कि किसी प्राणिको यदि उग्र बेराग्य प्राप्त
हो गया हो और संसारसे जयजीत होकर चरणशरण आया हो आदि
विशेष कारणोंसे चातुर्मासमें जी दीक्षा हो सकती है

ऐसे मुख्यवर्गमें उस मुखलाल नामक श्रावकके विद्यमान संन्यसियोंसे
आज्ञा लेकर दीक्षाका कार्य उपरोक्त श्रेष्ठवर्ग्यमाणिरयचन्द्रजी, लक्ष्मीचन्द्र-
जी गोलेठा (गठौड़ा) की तर्फसे प्रारंभ हुआ

॥ दीक्षाकी धामधूम ॥

युज मुहूर्त्तके अन्दर उच्च माद्रलिककी विधियों करते हुवे नियमानुसार
दीक्षाका कार्य प्रारम्भ किया

यह बेरागी यन्मा प्रातःकालमें अपने नित्यनियममें निवृत्त होकर अपने
शारीरिक व्यथाओं अलग कर स्नान मञ्जन करनेके पश्चात् प्रज्जुज्जक्तिमें लय-
लीन हो जाता था; तत्पश्चात् नाना प्रकारकी मनोहर पोषाक पहनकर अनेक
अञ्जुषणोंमें अलङ्कृत होता हुआ परोपकारी गुरुवर्यके दर्शनार्थ जाता था,
तत्पश्चात् अपने सङ्गजनोंसे मित्राप करता हुआ प्राण्य लोगोंकी उष्ठा परिपूर्ण
करनेके निमित्त धनोला (जोजनार्थ) के वास्ते प्रभ्यान करता था

(वनोत्तेका स्वरूप)

बेरागीके ध्याने नाना प्रकारके वाजित्र घने रदेये, चोतफमें ब्रह्मों लोग

शौजाको प्राप्त हो रहेथे, सबसे आगे बहुतसे लोग जैनशासनकी जय बोलते हुवे प्रस्थान कर रहेथे एवं सर्वसे पीठे बहुतसी सांजागिनी स्त्रियें माङ्गलिक गायन कर रहीथीं; इस प्रकार मत्थेक दिन अति उत्सवपूर्वक बनोला किया जाताथा।

कइ एक महानुजाव यहांपर शङ्का करते हैं की वैरागीकां ऐसी पोष के, इतना जेवर, ऐसा खानपान और इतनी उपजोगीय पदार्थ क्यों सेवन करवाई जाती है यह तो वैरागी (Ascetic) काल क्हाण नहीं दें किन्तु साक्षात् सरागीका स्वरूप है।

जोगश्च कर्त्ता साहव ! आपका प्रश्न करना ययार्थ है; किन्तु यदि आपने सूक्ष्म दृष्टिसे विचार किया होता तो यह आक्षेपीय मौका प्राप्त नहीं होता, देखिये योम्मेसेमे ही आपके इस प्रश्नको हल् (वारण) करनेका प्रयत्न करता हूँ:-

वैरागीकी मनोवृत्ति स्थिरीभूत है या जोगोपजोगमे रक्त है इस बातकी परीक्षाके वास्ते उपरोक्त व्यवहार किया जाता है, अन्य कारण यह भी है कि उसके अपूर्व स्वरूपको देखकर जगतनिवासी जन्म्यात्मा उस पवित्र वैराग्यकी अनुमोदना करके अनन्त पुण्यार्थके जागी हो तथा जैन शासनका उद्योत हो।

बनोलेके पश्चात् मध्यान्ह कालमे व्यावहारिक और धार्मिक कार्यमे अपना काल निर्गमन करता था; एवम् सायङ्कालके जोजनके पश्चात् अपने प्रतिक्रमण कार्यमें प्रवृत्त हो जाताथा।

प्रतिक्रमण कर्मके पश्चात् रात्रीके अन्दर सज्जनोसें मिलाप करता हुवा पहर रात्री पर्यन्त धर्मगोष्ठी किया करताथा बाद इसके शयनावस्थामें हो जाता था इस प्रकार अपने नियमित टाइमपर प्रत्येक कार्य कुशलतापूर्वक (Proficiently) किया करताथा।

(दीक्षा दिवसका शुजागमन)

देखते ही देखते दीक्षाका निजदिन शुभमिति जाइपद शुक्ला पञ्चमी वीर

संस्वत् (१३१५) विक्रम संस्वत् १९०६ का सुवर्णमय सूर्य अपने दिव्य स्वरूपको प्रकाशित करता हुआ उदय स्थानपर आन पहुँचा

चारों ओरसे लोक मनोहर वस्त्राजूपण पहिने धर्मशालामें एकत्रित होने लगे, योमेही समयमें क्या देखते हैं कि निर्मलास्याको वारण करनेवाला वैरागी वनमा उवत् स्थानपर आन पहुँचा; आतेही वरानर गुरु महाराजको विनयपूर्वक नमस्कार करके योग्य स्थानपर बैठ गया

योमेही समयके बाद खमा होकर दोनो करजोम गुरु महाराजसे तथा विद्यमान सम्बन्धियोंसे एवं समस्त चतुर्विध सघसे कृपाका प्रार्थि हुआ

सर्व सज्जनोने अनुग्रहपूर्वक कृपा बहीसकी; तत्पश्चात् गुरुवर्यके तथा समस्तके समक्ष इस अनुपम गायिका उच्चारण किया:-

(गाथा)

खामेमि सव्वजीवे । सव्वेजीवा खमंतुमे ॥

मित्तिमे सव्व ज्ञूएसु । वेरंमञ्जंन केणई ॥१॥

जावार्थः—मैं सर्व जीवोंसे कृपाका प्रार्थि होता हूँ, सर्व जीव मुझे कृपा करें; समस्त जीवोंसे मुझे मैत्रीय जाव है किसीसे वैरजाव नहीं है

इस महा माङ्गलिक गायिका सविस्तार विवेचन करनेके पश्चात् गुरु महाराजसे वन्दना कर वरघोडेमें प्रवृत्त हुआ

(वरघोमेका दृश्य)

सर्वसे आगे नगारे (Drums) पर विजयका डंका धनाधनसे पट्ट रहता था, निशान (Emblem) अपनी शोजाको प्रकट कर रहा था, बेण्ण वाजोकी ध्वनिचारों ओर गुञ्जा रही थी, शोजनीक कुञ्जर, कोतलके अम्ब, शीधिकार्ये, (पालखीयें) वगिर्ये और सिगराम (सेजगाम्भियें) अपनी शोजाको पृथक् पृथक् बतला रही थीं; सवार और सिपाहियोंकी

पलटनसे अधिक शोजा हो रही थी, समस्त वरघोमेके बीचोबीच बैरागीका हस्ति अपनी घूमत चालसे शनैः शनैः कदम ऊठा रहा था बैरागीके मस्तक पर चवरादि ढुल रहे थे इसही अवस्थामें वार्षिक दान देना हुवा कृतार्थ होता था चारों तर्फ श्रावकोंके मुखद्वारा जैनधर्मकी जयध्वनि उमर रही थी. सर्वसे पीठे सधवा स्त्रियें धवलमङ्गल गा रहीं थीं, बैरागीके मस्तकपर रहे हुवे तुरें और किलङ्गी अपनी अजीब शोजाकों बतला रहे थे, इसका दिव्य स्वरूप सर्व लोगोंको मनोरञ्जन कर रहा था; यहां तक कवि अपने गौरव लक्षणसे प्रकाशित करता है कि यह वरघोमा (Procession) साक्षात् चक्रवर्तिके वरघोमेके सदृश दिव्य शोजाकों प्राप्त हुवा था.

अनुक्रमसे वरघोमा दीक्षाके स्थान पर जा पहुंचा; ज्योंही बैरागी वनमा हस्तिसे नीचे उतरा कि सब लोगोंने जैनशासनकी जयध्वनिका उच्चारण किया. बैरागी वनमेने प्रथम पूज्यपाद गुरुमहाराजको नमस्कार किया और अपने योग्य स्थानपर विश्रामित हुवा.

इसही अवसरमें कई एक लोगोंने अंतर फुलेलद्वारा बैरागीका सन्मान किया (received) और कितनेहीने न्योठावर करके जिक्रुक तथा गरी-बोंको बढीसकिया.

॥ श्रमणपदालङ्कृत ॥

तत्पश्चात् दीक्षाका समय उपस्थित होनेपर गुरुमहाराजने क्रियामें प्रवृत्त होनेके वास्ते सूचना की “आज्ञा प्रमाण” ऐसा कहकर क्रियामें प्रवृत्त हुवा, कुछ क्रिया कर लेनेके पश्चात् श्रमणलिङ्ग (साधुवेश) (monk-dress) धारण करानेकों अन्य स्थानपर ले गये, गृहस्थके सर्व वस्त्र परित्याग कर श्रमण वस्त्रोंमें अलङ्कृत कियों, ज्योंही उस स्थानसे रवाना हुवे की समस्त लोगोंने वीरशासनकी जयध्वनी की और धन्य धन्य इन शब्दोंसे बधाया.

यह महानुज्ञाव पुनरपि अपनी क्रियामें प्रवृत्त हुवे, थोड़ीही टाइमके बाद युज मुहूर्तमें सर्व सामायक उच्चरई गई; पश्चात् विधिपूर्वक नाम स्थापन किया;

नाम “मुखसागरजी” रक्का गया और शिष्य (Disciple) श्रीमान रिद्धि-सागरजी महाराजके किये गये

इस अवसरमें सर्व लोगोंने पूज्यपाद राजसागरजी महाराज ऋद्धिसागरजी महाराज और मुखसागरजी महाराजके नामकी जयध्वनी की.

तत्पश्चात् वर्षादेशना प्रारम्भ की; इस देशनामें संसारकी अनिष्टता और साधु कर्त्तव्य विशेष रूपसे बतलाया गया उस विषयकी यत्किञ्चित् व्याख्या लिख दिखाने है:—

॥ धर्मोपदेश ॥

(श्लोक)

अर्थाः पादरजोपमा गिरिनदी वेगोपमं यौवनम् ।

मानुष्यजल विन्दु लोलचपलंफेनोपम जीवनम् ॥

धर्मयो न करोति निश्चलमतिः स्वर्गार्गलोच्छादनम् ।

पश्चात्ताप इतो जरापरिणतः शोकाग्निना दह्यते ॥१॥

भावार्थः—लक्ष्मी पेरके रजके मुआफिक है, जैसे पेरपर रज लगकर अति शीघ्र अलग हो जाती है तैसेही लक्ष्मी (Wealth) चलायमान होती है यौवनावस्था पर्वतकी नदीके वेगके मुआफिक होती है, जैसे नदीका वेग शीघ्र उत्तर जाता है जिसमें जो ढालु पर्वतकी नदीका वेग अतिही शीघ्र उत्तर जाता है वैसेही चार दिनकी माहुणी यौवनावस्था प्रस्थान कर जाती है सच है? “ चार दिनकी चादनी फिर अंगेरी रात ” मनुष्योंका जीवन क-छोलित जलके चपल विन्दु तथा जलके जाग सदृश होता है, जैसे चपल विन्दु तत्क्षणमे नष्ट हो जाता है तैसेही जीवनका कुछ ठिकाना नहीं जो स्थिर बुद्धिवाला स्वर्गके अर्गला (जागल) को दूर हटानेवाले धर्मका आवरण नहीं करता है वह वृद्धावस्थाके अन्दर पश्चात्तापसे दहप्रदत् किया जाता है ठीक कहा है “ अब पन्ताण क्या बने अब चिहिया चुग गई खेत ” और

शोकरूपी अग्निसँ जलाया जाता है जैसे अग्नि हर एक पौत्रलिक स्थूल पदार्थको जला देती है तैसेही शोकातुर प्राणीकी आँत जल जाती हैं. इस शो-
कके सदृश जगतमें अन्य कोई डःखदाई पदार्थ नहीं दिख पड़ती.

सामायक चारित्र ऐसा उत्तम पदार्थ है जोकि यथा ख्यात चारित्रको प्राप्त करा देता है, जैसेकि श्रुतज्ञान (knowledge of scripture) केवल ज्ञानके दिलानेमें एक प्रधान निमित्त है.

यह चारित्र त्रिविध १ (मन, वचन और कायाके साथ करना, कराना और अनुमोदना) अङ्गीकार किया जाता है; इसमें मुनिराज सावध व्यापार-
का सर्वथा सागी होता है अर्थात् साधुके सर्व कर्त्तव्य करनेको स्वीकारता है महत्त कारणको पृथक् रखकर कोई प्रकारका आगार (बुझी) नहीं रहती हैं.

वर्तमान समयमें सद्पात्र महानुभाव मुनिवरोंको ठोमकर कइ एक आम-
स्वरीय, प्रमादी, और मदोनमत्त साधु, साध्वी अपने क्रियासँ जड़ होकर तीर्थङ्करोंको आझाका खून करते हुवे डर्गतिका प्रयत्न करते हैं. मगर धन्य हो उन मुनिवरोंको जोकि जवतारक चारित्रको निर्मल तथा पालन करके अपने मनुष्यजवकी साफल्यता करते हैं.

जिस वख्त वैरागियों उत्कृष्ट वैराग्य प्राप्त होता है उस वख्त वह जीव सप्तमगुणस्थानपर वर्तता है, दीक्षा लेनेके पश्चात् षष्ठमगुणस्थानपर आ जाता है कारणकि उसकी स्थिति केवल अन्तर्मुहूर्त्तकीही होती है, द्वितीय यहजी कारण है कि नैगमनयके विचारवाला दीक्षा लेके शीघ्र पतित हो जाता है हां अलवत्ता? सूक्ष्मरूजु सूत्रवाला कुठ दृढ ज्ञाववाला होता है; परन्तु आ-
द्योपान्त दृढ परिणामोंको रखनेवाला स्थूल रूजुसूत्र धारक होता है और यह उत्कृष्ट चारित्रधारी कहलाता है. देखिये:—

दीक्षा चार प्रकारकी होती है तद्यथा:—

- १ सिंहके मुताविक लेना और भिहके मुताविक पालन करना
- २ शियालके मुताविक लेना और सिंहके मुताविक पालन करना

३ सिंहके मुताबिक लेना और शियालके मुताबिक पालन करना

४ शियालके मुताबिक लेना और शियालके मुताबिक पालन करना

प्रथम पदवाला उत्कृष्ट, द्वितीय पदवाला मध्यम, तृतीय पदवाला जघन्य और चतुर्थ पदवाला कनिष्ठ कहलाता है

जिस वस्तु दीक्षा अङ्गीकार की जाती है उस वस्तु यही विचार रहता है कि सर्व मपञ्चो (enxieties) को परित्याग कर दाक्षिण्यता (flattery) से विमुख होकर अमतिग्रन्थ आचरण करूँगा तथा पुत्रलको अरसविरस आहारपानी देकर जीर्ण वस्त्रोंको सेवन करता हुआ उत्कृष्ट चारित्र्य प्रतिपालन करूँगा एवं शास्त्र मिथ्यान्तोंका वेत्ता होकर अनेक जघन्य जीवोंका उपहार करूँगा और खासकर योगाज्यास करता हुआ शुद्ध ध्यान एवं आत्म निन्दाद्वारा कर्मोंका ह्यकर परमपद लेनेका प्रयत्न करूँगा

इत्यादि नाना प्रकारसे विचार करता है लेकिन दीक्षा लेनेके पश्चात् महानुभावोंके शिवाय पामर प्राणि अपनी समस्त प्रतिज्ञाओं परित्यागकर विपरीत वर्तव करने लग जाता है जैसे:—

गृहस्थोंके वशीकृत होकर दूषित जोगोपजोग पदार्थोंको सेवन करता हुआ आचारसे पतित होकर निर्मल चारित्र्यको कलङ्कित करता है इत्यादि अनेकशः अवगुणोंसे अलङ्कृत होकर डर्गतिका जागी होता है

हम उनही महामुनिवरोंको वन्द्य समजते हैं कि जो सिंहके मुताबिक गुरुरीर होकर निर्मल चारित्र्यको अङ्गीकार करते हैं तथा यावत् उन्न वैसाही निज्जाते हैं, सज्जन पुरुष डर्गति दातार गृहस्थाश्रमको ठोमकर पवित्र चारित्र्य को ग्रहण करके अपनी आत्माका कल्याण करते हैं, यह बात जगत् प्रसिद्ध है कि जितनी उत्कृष्ट करणी चारित्र्यधारी कर सकते हैं उतनी अन्यको करना डप्यार है

चारित्र्यधारीमें सर्वसे बड़ा गुण यह होना चाहिये कि दृढ श्रद्धायुक्त* गुरु * जक्तिमें तल्लीन रहें तथा उनको आह्वानों अणुमात्र जी विपरीत न

चले. आप जली प्रकार जानते हैं कि गुरु सेवासें बढ़कर जगत्रयमे कोई पदार्थ नहीं है देखिये किसी दीक्षेच्छु महानुभावने श्री सम्मैत शिखरके स्तवनमे ठीक कहा है:—

॥ गुरुपदका महात्म्य ॥

(गाथा)

गुरु चरणोंमें प्रीत बनी रहै ।

इसको खूब निजाना मोरे राजिन्दा ॥

ज्ञानतत्त्व अरु सकल पदारथ ।

इससें सब मिल जाना ॥ मोरे राजिन्दा सम्मै ॥१॥

सच है ? गुरुचरणोंकी सेवाका यही फल होता है, गुरु कृपा एक ऐसी उत्तम चीज़ है कि डःसाध्य जी साध्य हो जाता है.

कई एक बुद्धि विलक्षण यह कह देते हैं कि सेवासें कुछ जी फल नहीं होता किन्तु पढ लिखकर होशियार होना चाहिये जिसमे अपनी यशकीर्ति (fame) तथा शासनका उद्योत हो.

यद्यपि उनका कथन यथार्थ है मगरताहम जी निर्मल ज्ञान तबही प्राप्त हो सकता है कि जब गुरु महाराजकी कृपाका अवलम्बन हो, देखिये इस पर मुझे एक दृष्टान्त स्मरण होता है. वह लिख दिखाता हूँ:—

किसी एक अनुपम शहरके अंदर अनेक साधुओंकी समुदायसें सुशो-
जित एक आचार्य महाराज विराजते थे. उनके कइ एक शिष्य व्याख्यान-
दाता, कइ एक विद्यार्थि और कइ एक वैयावची थे उनमेंसे एक विद्यार्थी
और एक गुरु जक्तकी सफलताका नमूना पेश करता हूँ.

* गुरुका अर्थ यहांपर यही समझना चाहिये कि जो चारित्रिको निर्मल पालन करने-
वाले हों अर्थात् चारित्रसें पतित और क्रियासें भ्रष्ट गुरुको गुरु नहीं समझना.

पढ़नेवाले शिष्यको जब गुरु महाराज कोई कार्य बतलाते थे तब वह यही उत्तर देता था की अजी हम पढ़ते हैं दोनों काम नहीं कर सकते “चाहे पढ़ा लो चाहे घास कटालो” जब कभी जोरें देकर गुरु महाराज कोई कार्य करनेको कहते तो वह लौकिक लज्जासँ वे मुश्किल करता सो जी उसमें ऐसा प्रयोग करता कि दूसरी वस्तु कोई कार्य न बतलावें यथा:— पानी लेनेको जाता तो मटकी फौर् देता और गौचरीको कजी जाता तो पात्रे तौर् देता इत्यादि कार्य इसही प्रकार करता था मगर वे महानुभाव गुरु महाराज यह खूब समझते थे कि यह गुरु कृपाके बगेरही ज्ञानकी सफलताको चाहनेवाला अविनीत मूर्ख शिरोमणी है

उपर जक्ति गुणोंको वारण करनेवाले सुविनीत शिष्यको जब गुरु महाराज कोई कार्य फरमाते थे तब वह महानुभाव “तहत्त वचन” (प्रमाणवचन) ऐसा महान सुविनय वचनका प्रयोग करता हुआ अन्य सर्व कार्यको परिहाण कर गुरु महाराजके अनुग्रहपूर्वक बतलाए हुए कार्यको करता था; कहनेका तात्पर्य यह है कि वह जक्तिवान् शिष्य सबसे अधिक टाइम अपने गुरु जक्तिमें लगाता था, जिस वस्तु गुरुकी सेवा किया करता था उस वस्तु उसें कई एक उत्तमोत्तम वस्तुओंकी प्राप्ति होती थी गुरु महाराज उसपर अतिही प्रसन्न थे सच है ! विनय गुणके अन्दर ऐसीही अपूर्व शक्ती है कि हरएकको प्रसन्न कर सकता है

एक दिनका जिक्र है कि एक महत् सभा (Gathering) इकठी हुई थी उसमे अनेक विद्वान् लोक एकत्रित थे मत्येक धर्मका विचार किया जा रहा था उसके अन्दर यह आचार्य महाराज जी मय अपने शिष्य समुदायके उपस्थित थे इस सुअवसरमें जैनधर्मके तात्त्विक पद इन्त्य संवेन्धि प्रश्न किये गये ।

आचार्य महाराजने पहिलेही पहिल पढ़नेवाले शिष्यको आझा दी की इन प्रश्नोके तुम ययार्थ उत्तर दो वह गुरुजक्तिसे विहीन केवल पढ़ाईका मौल रखनेवाला अविनीत शिष्य सामानौल करने लग गया.

इतनेहीमें गुरु महाराजने उस बैयावच्चीय सुविनीत शिष्यको आझा दी

कि तुम उन प्रश्नोंका यथार्थ उत्तर दो, इस वचनका सुनतेही “आज्ञाप्रमाण” इस पवित्र शब्दका उच्चारण कर उन प्रश्नोंके युक्तियुक्त प्रमाणसे ऐसे उत्तम उत्तर दिये कि जिससे सर्व सच्चासद् लोग प्रसन्न हो गये उसही समय सर्व सच्चाके समक्ष गुरु महाराजने यह प्रकट किया कि गुरुज्ञातिका प्रत्यक्ष फल इस प्रकार मिलता है और अविनीतोंकी अवगणना इस प्रकार होती है।

यह सुन वह जड़ित विहीन शिष्य लज्जित हुवा और गुरु महाराजसे यह प्रार्थना की कि हे स्वामिन् ! मैं महामूर्ख हूँ कि आपकी सेवा विलकुल न की केवल पढ़नेहीके स्वार्थमे लीन रहा इसही लिये मुझे सद्विज्ञान प्राप्त न हुआ और इस प्रकार डर्दशासे दूषित हुआ, अब अनुग्रहपूर्वक पूर्वके समस्त अपराधोंको क्षमा कीजियेगा आजसे मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि आपकी सेवामे प्रतिदिन संलग्न रहूंगा।

अहाहा ! गुरु महाराजकी कृपाका ऐसाही महात्म्य है, जो गुरु महाराजकी सेवा कर ज्ञान संपादन करता है वही निर्मल ज्ञानका जागी हो सकता है, पुस्तकके पढ़ेये दिव्य ज्ञानी (men of deep thoughts) नहीं हो सकते क्योंकि गुरु गम्यताका जो उत्तम ज्ञान होता है वह पुस्तकोंमे प्रायः नहीं रहा करता है; देखिये किसी एक विशाल ज्ञानीने ठीक कहा है:—

(श्लोक)

पुस्तक प्रत्ययाधीतं । नाधीतं गुरु सन्निधाः ॥

सच्चा मध्ये न शोचन्ते । जार गज्जाश्च स्त्रियः ॥१॥

जावार्थः—जो प्राणी गुरुके पास पढ़नेसे विमुक्त रहा और केवल पुस्तकके प्रतीतसे पढ़ा हुआ है वह व्यभिचारिणी (Adulteress) गर्जवती स्त्रीके मुआफिक सच्चांमे शोचाकों प्राप्त नहीं होता है; अर्थात् लज्जित होता है। कहनेका तात्पर्य यह है कि गुरुगम्यताकी विद्याके सदृश अन्य कोई विद्या नहीं है।

गुरु महाराज यदि प्रसन्नतापूर्वक ज्ञान बढ़ास करें तो एक शब्द सहस्र शब्द इतना फल करता है यह प्रत्यक्ष उपरोक्त दृष्टान्तसे तथा अनुभवसे सिद्ध है।

गुरु महाराज उत्तम ज्ञान देकर ज्ञान प्रदान करते हैं क्योंकि मध्यम ज्ञानके अन्दर प्रदान करनेसे विपर्यय हो जाता है कहा है:—“पयःपानं जुजंगानां केवलं विपर्ययेत्” अर्थात् सर्पको डग्घ पिलानेमें सिर्फ जहर उड़ता है, मध्यम ज्ञानका यही लक्षण है

महानुजावा ! यदि कोई यहांपर यह प्रश्न करे कि गुरु महाराज ही यदि शुद्धाशुद्धका विचारकर अशुद्धको ज्ञान प्रदान न करेंगे तो अधम लोग कैसे पावन हो सकते हैं ? उत्तरमें विदित होकि अधमको पावन करनेका लक्षण इस प्रकार होता है:—

जैसे अशुद्धदेव हलादि प्रयोगमें शुद्ध हो जाता है तब अशुद्ध ज्ञान भी शुद्ध हो जाता है; अर्थात् उस अशुद्ध ज्ञान के साथमें ऐसा प्रयोग करना चाहिये कि जिससे शुद्ध मार्गमें प्रवृत्त हो जाय इस अवस्था तक सामान्य ज्ञानका परिचय होना उत्तम है तत्पश्चात् शुद्धावस्थामें गुरु गम्पनाका उत्तम ज्ञान प्रक्षेपण करना समुचित है यही परम्पराका प्रचलित नियम है

वर्तमानमें कइ एक जक्ति करानेके स्वार्थि गुरु वगैरे परीक्षा किये हुये ही गुगल-यानी जक्त जनोको उत्तम प्रकारका ज्ञान प्रदान कर देते हैं किन्तु अखीरमें उसका बहुत ही घुरा परिणाम होता है; देखिये गृहस्थ लोग एक दमकीकी हँसी खरीद करते हैं उस समय यह फूटी है या अछी है इस बातको जाननेके वास्ते तीन टुङ्कारोंमें उजाकर ग्रहण करते हैं; तो क्यों माहिर ? शिष्यवर्गकी या विद्यार्थिकी वगैरे परीक्षा किये हुये उत्तम ज्ञान प्रदान करना कैसे समुचित हो सकता है ? अर्थात् अवश्य परीक्षा करना चाहिये

इधर वर्तमान जमानेमें कइ एक धूर्त विद्यार्थि लोग स्वार्थ लोभमें मग्न होकर बाग जक्ति लक्षणको दिखलाने हुये उत्तम ज्ञान ग्रहण करनेकी कोशिश करते हैं और दृष्टयमें यह दूषित विचार करते हैं कि ज्ञान सम्पादन होनेके पश्चात् उसमें परिचय रखनेकी कोई आवश्यकता नहीं है नहीं ! नहीं !! इतना ही नहीं !!! उनके ज्ञान सम्पादन करनेके पश्चात् यह चेष्टा किया करते हैं कि जब तक यह गुरु महाराज मौजूद हैं तब तक मेरी प्रतिष्ठा नहीं हो स-

केगी इसलिये कोई प्रयत्न करूं कि यह संसारसे प्रस्थान कर जाँय यह वही मसल है कि जिस तरह सिंहके डट शिथुने अपनी उपगारिणी बिछीको मारनेका प्रयत्न किया था; इसही लौकिक दृष्टान्तको किञ्चित् रूपमें प्रकाशित करते हैं:—

(कृतघ्नता पर उदाहरण.)

एक किसी ज्ञानक अटवीके अन्दर बहुत से जानवर रहते थे, वे एक दूसरेसे संयोग कर अपना योग्य कार्य किया करते थे.

व्यावहारिक यह कहावत है कि बिछी सिंहकी मासी होती है. एक दिनका जिक्र है कि एक सिंहके बच्चेने जाकर मार्जारको प्रार्थना की कि हे मासी ! मुझे पञ्जे मारने वगेराकी कला सिखलानेकी कृपा कीजिये; मुनतेही बिछीने दिलमें यह विचारकि इस नूतन जानजेको एकदमसे मर्ब कलाएँ नहीं सिखलाना चाहिये न मालूम विनीत है या अविनी है ऐसा समझ उसने यह उत्तर दिया कि कलसें तू कला सीखनेको आना.

द्वितीय दिन प्रातःकाल होते ही वह सिंहका बच्चा अपनी मासी बिछीके आश्रम पर आन पहुँचा और प्रार्थना की कि मैं आपकी आज्ञानुसार हाजिर हुवा हूँ, अब कृपा फरमाकर अपनी कलाकौशल सिखलाइयेगा; उस बिछीने दया लाकर पञ्जा मारना आदि कला कौशलमे निपुण किया.

सिंहके बच्चेने एक दिन दिलमें विचार किया कि जब तक मासी मौजूद रहेगी तब तक अपनी प्रतिष्ठा (Respect) होना डण्धार है क्योंकि पाठक गुरुकी विद्यमानीमें विद्यार्थिकी पूर्णतः प्रतिष्ठा नहीं होती इसलिये इस मासी को इसजबसे विदा कर देना चाहिये; ऐसा विचार विकराल रूपको धारण कर ज्योंही बिछीको मारनेको पञ्जा उठाया सोंही बिछी तत्काल दरखत पर चढ़ गई.

यह अवस्था देख सिंहके बच्चेने बिछीसे प्रार्थना की कि हे मासी ! मुझ-

को यह कला तुझने क्यों न सिखलाई; विछीने उत्तर दिया रे डष्ट ! अधम ! !
कृतघ्न ! ! ! यदि तेरेको यह कला सिखलाती तो आज मेरा जीवन रहना
डण्णार था सच है ! कृतघ्नो (Ungreatful) का यही लक्षण है और इस
ही लिये सिंह पञ्जे वगेराकी कला जानता है मगर दरख्तपर नहीं चढ़ सकता है

इस दृष्टान्तसे तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार विछीने अयोग्य सिंहेके
बच्चेको संपूर्ण कला नहीं सिखलाई उस ही प्रकार ज्ञानवान् पुरुष योग्यायो-
ग्यकी परीक्षा किये वगेर अयोग्यको उत्तम प्रकारका ज्ञान प्रदान नहीं करते
है मगर यदि व अपनी अतुल कृपाद्वारा किञ्चित् जी गुरुगम्यताका ज्ञान
बढ़ीस कर दे तो जबका निस्तारा होना अति सहज है; गुरु महाराज ही
तरणतारण है; देखिये एक सुविनीत विद्वान्का कथन है:—

(श्लोक)

विदलयति कुबोधं बोधयत्यागमार्थ ।

सुगतिकुगतिमार्गो पुण्यपापे व्यनक्ति ॥

अवगमयति कृत्याकृत्य जेदं गुरु र्यो ।

ज्वजल निधि पोतस्तं विना नास्ति रुश्चित ॥१॥

श्री सोमप्रज्ञाचार्य ॥

भावार्थ:—हे स्वामिन् ! आप अज्ञानको विनाश करनेवाले है तथा आ-
गमके रहस्याध्यको बतलानेवाले हैं; एवम् पुण्य पापरूप सद और असत्ता-
तीका भ्रष्ट कथन करनेवाले है तथा हे गुरुवर्य ? कृपाकृप जेदोंको आप
बतलानेवाले है इस ही लिये हे नाथ ? इस ज्वरूपी संसारसे तिरानेमें आ-
पके शिवाय कोई अन्य नौका नहीं है; अर्थात् आप ही समर्थ और आ-
धारज्यूत है

गरजकी जगद्वयमे गुरु महाराजके समान कोई उपगारी नहीं हो सकता
इस ही लिये उनकी आज्ञामें कटिबद्ध (engago) होना यह शिष्य
वर्गका मुख्य धर्म है और इस ही से चारित्रकी निर्मल आराधना कर अपनी
आत्माका जला कर सकता है

॥ वृहदीक्षा ॥

इन महानुज्ञावकी वृहदीक्षा इस ही सालके मार्गशीर्षमे वने ही समारो-
हसे हुई इस वृहदीक्षाका किञ्चित् स्वरूप लिख दिखानेका प्रयत्न करता हूँ:-

सज्जनो ? इस वृहदीक्षाका नाम ठेदोपस्थापनीय है. यानी ठोटी दीक्षामे
प्रमाद वश लगे हुए प्रायश्चित्तोंको ठेदनकर निर्मल पञ्च महाव्रत (give great
oaths) उच्चाए जाते हैं. इस अवस्थाके पूर्व तक केवल सर्व सामायकका
ही अधिकारी रहता है. इस प्रकार उत्तम चारित्र्यका प्राप्त होना बड़ा ही
डर्लज है; देखिये श्री उत्तराध्ययनके तृतीय अध्ययनके प्रथम गाथामें इस
प्रकार फरमाया है:-

॥ धर्मदेशना ॥

(गाथा)

चत्वारिपरमङ्गाणि । दुद्धहाणीह जन्तुणो ॥

माणुसत्तं सुईसद्धा । संजमम्मीय वीरियम् ॥१॥

अर्थ:-प्राणियोंको मनुष्यपन, सूत्रपर श्रद्धा, संयम और वीर्य इन चार
उत्कृष्ट अङ्गोंका प्राप्त होना अति डर्लज है. इन चारों अङ्गोंका किञ्चित् वि-
शेष स्वरूप लिख दिखता हूँ:-

यह चेतन अनादि कालसे निगोदके अन्दर रहा हुआ अनन्त डःखोंसे
दग्ध हो रहा है. नरक (Hell) के जीवोंको जितना डःख है उतना अन्य
गतिवालेको नहीं मगर विचारे निगोदके जीवोंको उससे ज़ी अनन्त गुणा-
डःख जानियोंने फरमाया है. देखिये मनुष्य जिस वरुत जन्म लेता है उस
समय इतनी वेदना होती है कि जैसे कोई बलवान् पुरुष माढेतीन क्रोम सूइयें
गरम करके अपनी शक्तिपूर्वक किसी मनुष्यके सर्व रोमराइमे प्रवेश कर दे
इसमें जितनी वेदना है उससे ज़ी अनन्त गुणी होती है. कहा है:-

(गाथा)

कंठकोम्पी सूई ताती करीरे । समकाले चेवे कोई राय जो ॥
 तेथी अनंतगुणीतोहा कहीरे । दुःख सहत विचार तव धायजो
 तूने संसारी ॥१॥

निरोगी पुरुष एक स्वासोद्वास लेता है इतनेमे निगोटिये जीव कुठ जा-
 जेरू (अधिक) सत्तरा जव कर लेते हैं यानी इतनी राइममे सतरा वरत जन्म
 और सतरा वरत मरणको प्राप्त होते हैं आत्मारथि महानुजावों ! विचारिये
 कि जब एक वरत जन्म लेनेसे इतना दुःख होता है कि जिसको मृत्तने मात्रसे
 जव्वात्माकी देह कम्पायमान हो जाती है, अश्रुपातसे नटियें बहने लग जाती
 हैं, करणमें गूलसा मालूम होता है, जुजाका पल नष्टाको प्राप्त हो जाता है,
 दुखि विह्वल दशाको प्राप्त हो जाती है, मन शोकसागरमें गोता लगाने लग
 जाता है, मग्न शून्य दशाको प्राप्त हो जाता है, चिन्ता महारानी शरीरके
 मखेरु अवयवमे मवेश कर जाती है कहीं तरु कहा जाय वज्रके घावसे जी
 अधिक दुःखको प्राप्त होता है शिराय दुःखके कुठ जी नहीं मूकता जब मृ-
 ननेसे ही ये हाल है तो जला जोगती गवनका तो कहनाही क्या है

'मर्माऽनुरागिणो' एकवार जन्मका इस प्रकार दुःख होता है तो
 विचारे निगोटिये जीव जोकि निरोगी पुरुषके एक स्वासोद्वासके अन्दर ११
 वरत जो जन्म मरण करते हैं उनके दुःखोंको केवली महाराज या उनकी आ-
 त्मा ही जान सकती है

ऐसे महान् कष्टके स्थानमें यह चेतन अकाम निर्जरा कर व्यवहार राशिमें
 प्राप्त होता है इसमें जी यदि अपर्याप्ताऽवस्थाको प्राप्त हवा तो कोइ जी कार्य
 करनेको समर्थ नहीं हो सकता कदाच पुण्ययोगमें पर्याप्तावस्था पालिया और
 एकेन्दिमें उत्पन्न दुरा तो जी नाना प्रकारकी वेदना महन करना पड़ती है;
 देखिये पृथ्वी, अग्नि, वायु और जलमयिकाय मनोज्ञावक कारण कुठ
 जी उचित कार्य करनेसे समर्थ नहीं हो सकती है

अकाम निर्जरा करता हुआ अनन्त पुण्यार्थके वश वेइन्डिओं प्राप्त करता है तत् क्रमशः तेन्डि चौरिन्डि तक पहुंचता है मगरताहम जी ज्ञानादि तथा मनोऽज्ञावसें यथार्थ धर्म प्रतिपालन नहीं कर सकता है.

(चतुर्गंतिका दृश्य)

इस स्थलसे उठकर अमन्नि पञ्चेन्डिओं प्राप्त करता है मगर यहांपर जी नव प्राण होनेसे धर्मका यथावत् आचरण नहीं कर सकता है. पश्चात् जीव सन्नी पञ्चेन्डिओं धारण करता है; इस अवस्थामें जी चारों गतियें मौजूद हैं. यदि जीव नरक गतिमें प्राप्त हो जावे तो नाना प्रकारकी वेदनाओं सहन करना पड़ता है वहांपर रहे हुवे परमाधामी किस १ प्रकार वेदना दते हैं; देखिये:—नेरैयेकी टंगडि पकड़कर चारसो पांचसो योजन उंचे उठालते हैं बीचमें कई वाजकवे आदि चूँट १ कर खाते हैं, नीचे कुंजीपाक नरकमें गिरते हैं, कजी खड़से शिर काटते हैं, कजी हात, कजी पैर, कजी नाक, कजी कान काटते हैं; कजी जाला शिखासें मालकर नीचे निकाल देते हैं, कजी अधोसें उर्ध्व जागमें निकलाते हैं. कजी नेत्रोंमें पिराते हैं, कजी कणोंमें और कजी मुखमें प्रवेश करते हैं, कजी कटारीसें हृदय विदीर्ण करते हैं, कजी लोहकी नदीमें टंगरी पकड़ फेंक देते हैं, कजी गरम १ स्तम्भ आलिङ्गन करवाते हैं, कजी जयानक रूप बनाकर मराते हैं इत्यादि अनेकशः घोरातिघोर कष्ट देते हैं. जिसका पूर्ण स्वरूप हमारी लेखनीसे बाहर है.

यदि जीव पुण्य योगसें तिर्यञ्च गतिको प्राप्त हो जावे तो वहां पर जी देखिये कितने १ कष्ट सहन करना पड़ते हैं; जैसे विचारें बेलोंको सार्थवाह रथोंमें, गाँवियोंमें जोतकर मनोबंध बोझा खिचवाते हैं; किसान कुवेमेंसे जल खिचवाते हैं; नेत्रोंको बंद कर तैलीघानीमें घूमाते हैं; व्योपारी पीठपर पोठी रखकर कंकर पल्लरमें गमन करवाते हैं. जिस्ती पानीकी पखाल लादकर डुमाते जाते हैं; किसान खेतोंमें हलमें जोतकर जमीन विदारण करवाते हैं. विचारे घोड़े फिदन (वगी) तांगे. इक्के वगेरामें जुड़कर कितने ही मनुष्योंका व माल असबाबका बोझा खींचते हैं; घासपानी और दाना जी

वस्तुपर नहीं मिलता है; चातुर्कोणे प्रहार सहन करते हुवे अपने कालको व्यतीत करते है इस प्रकार हस्ति, ऊठ और खरादि जानवरोंको जी अनेकशः कष्ट सहन करना पड़ता है जोकि हम मनुष्य दृष्टिसे देख सकते है.

यदि जीव पुण्य कृत्यसे देवगतिमें उत्पन्न हो जावे तो व्रत पञ्चकाण ग्रहण नहीं करनेसे यथेष्ट धर्मका पालन नहीं कर सकता है विचारे देवता प्रार्थना करते है कि हे प्रभो ! दो घड़ीकी सामायक यदिहमें जी उदय आ जाय तो हमारा जन्म सफल हो जाय; यद्यपि वह कितने ही सुखी है तदपि उस गतिसे मोक्ष हरगिजन ही हो सकता यही प्रबल पुण्यहीनताका लक्षण है

ज्ञोन्नव्यात्मा ! उपरोक्त तीनो ही गतियोंको परित्याग करके जो प्राणि मनुष्य गतिको प्राप्त करता है वह अनन्त पुण्यार्थों वारण करनेवाला अपने यथार्थ धर्मको प्रतिपालन करनेको समर्थ हो सकता है इस प्रकार कठिनता पूर्वक मनुष्य जव प्राप्त होता है मगर इस गतिमे जी कितनी ही आफतें होने से यथार्थ धर्मको पाना कुछ सहल नहीं है किन्तु अतिही कठिन है देखिये:-

यदि अनार्य क्षेत्र में उत्पन्न हो गया तो धर्मकी प्राप्ति नहीं हो सकती है, कदाचित् पुण्य योगसे आर्य क्षेत्रमें उत्पन्न हुवा और नीच जातिमें प्राप्त हो गया तो जी यथार्थ धर्म नहीं पा सकता, यदि उत्तम जातिमें प्राप्त हुवा और दरिद्र कुलमे जन्म लिया तो जी श्रेष्ठ धर्मकी प्राप्ति नहीं हो सकती, यदि उत्तम कुलमें प्राप्त हुवा और शरीरसे लाचार रहा तो जी धर्मकरणी नहीं कर सकता, यदि शरीर निरोग रहा और उर्व्यसनोमें मग्न रहा तो जी धर्मकृत्य नहीं कर सकता यदि उर्व्यसनोसे अलग रहा और देव गुरु धर्मकी योगवाँई न मिली तो जी इष्ट सिद्धि नहीं होती, अगर पुण्ययोगसे उस क्षेत्रमें इन तीनों रत्नोंकी योगवाँई हो और उनसे संयोग न होतो जी पुण्यहीनता समझना चाहिये, कदाचित् समर्ग हुवा और धर्म श्रवण न किया तो जी यथार्थ प्राप्ति नहीं हो सकती, यदि श्रवण किया और उसको दिलमे धारण न किया तो जी कुछ फल नहीं हो सकता, कदाचित् धारण किया और उस निज बाणीपर श्रद्धा न हुई तो जी उत्तम फल प्राप्त नहीं हो सकता, यदि किञ्चित् श्रद्धा हुई और उसके मुताबिक प्रवृत्ति

न की तो जी संपूर्ण यथैष्टता प्राप्त नहीं हो सकती. इस प्रकार जिनागमपर श्रद्धा होना बड़ी डरलज है

महानुजावों ! उत्तम श्रद्धा हो जानेके बाद जी निर्मल चारित्र्यको ग्रहण करना अत्यन्त डरलज है, गृहस्थाश्रममें हजारों डःख मौजूद हैं यथाः—सबसे बड़ा चिन्तारूपी डःख आकर व्याप्त हो जाता है. जैसेः—

लक्ष्मी न होनेकी हालतमें उसे प्राप्त करनेका अधिकाधिक फिकर रहता है, अरे मैं क्या करूं ? व्यापार करूं या माका मालूं या देश लूटूं या निलाम करूं या अन्य द्यूत व्यापार करूं ? आदि अनेक विकल्प बने रहते हैं तथा लक्ष्मी होनेपर उसके रक्षा की अधिकतः चिन्ता होती है यथाः—

अरे कोई चोर न ले जाय, कहीं राज न ले ले । कहीं माकान पड़ जाय, कहीं अग्निमें न जल जाय, कहीं देवता अपहार न कर लें और कहीं जमीन निगल न जाय आदि अनेकशः डःख होते हैं. एवम्ः—

कुटुम्ब परिवारके जी बहुतसे डःख हैं यथा कोई कु स्त्रीसे संयोग हो जाय तो वह अनेकशः डःख देती है जैसे विचारा पुरुष डकानसे या नो-करीसें जोजनकी बख्त घरपर आता है उस तप्ताऽवस्थामें वह स्त्री कहती है आजनाज नहीं है, कजी कहती घृत नहीं है, कजी कहती गुद् नहीं है, कजी कहती शकर नही है, कजी कहती दाल नहीं है, कजी कहती आज लकड़ियें नहीं हैं क्या तुमारे हाथपर जलाके रोटियें बनाऊँ ? इस प्रकार विचारे उस पुरुषको जोजनके समय डःख देती है, और जी सुनियेः—

जिस बख्त की शयनगृहमे पहुंचता है उस बख्त जी नाना प्रकारसें बड़बड़ाहट किया करती है, कजी कहती मुझे उत्तमोत्तम वस्त्र बना दो, कजी कहती अठे ९ जेवर बना दो, कजी कइतो मुझे उत्तमोत्तम खानपान कराउं; अन्यथा मैं तुमे स्वीकार न करूंगी, न तुमारे घरमें रहूंगी आदि अनक प्रकारकी धमकी बतलाकर विचारे उस पुरुषको डःख कर देती है.

इस ही प्रकार वहीन और लक्ष्मी यही कहा करती हैं कि मुझे कुछ जी

नहीं दिया चाहे उन्हें हजारों रुपयैका माल दे दिया जाय तोजी संतोष को प्राप्त नहीं होती है पिता, माता, चाई, पुत्र इत्यादि सर्व अपने स्वार्थमे रमण करते है यह डनियाइ रिस्तावही तक फलदायक है जहा तककी अपना शरीर नि-
रोगावस्थाको धारण किया हुवा है तथा लक्ष्मीने जब तक निवास किया है

देखिये स्वार्थि रिस्तद्वार बाहरसे इतना प्रेम दिखलाते हैं कि जैसे नि-
र्गुणी रोहिङ्गे पुष्प अपने मनोहर रूपको बतलाते हैं; सच है ! डर्जनोका यही
स्वरूप है लेकिन सज्जन पुरुष वेही है कि जो डःखमे जी सहाय्य करते है सुखमे
तो हजारों मित्र बन जाते है कहा है:—

(दोहरा.)

सुखमे सज्जन बहुत हैं । डःखमें लीने बीन ॥

सोना सज्जन कसनको । विपति कसोटी कोन ॥१॥

इस प्रकार स्वार्थि सम्बन्धियोंकि डःखके अन्दर परीक्षा हो जाती है
कि उनका सच्चा भेम है या ऊँठा इसपर मुझे एक अनुपम दृष्टान्त स्मरण होता
है उसे यहा उद्धृत कर लिख दिखाता हूँ:—

(संसारकी अनित्यताका अनुभव.)

जम्बुद्वीपके इसही जरतक्षेत्रके अन्दर मालव देशमें अवन्तिकापुरी नामक
एक अनुपम शहर है वहापर विक्रमादित्य राजा अनेक गुणशाली राजाओंसे
शोभायमान होता हुवा सुखपूर्वक राज्य करता था उसमें बसे १ विशाल जैन
मन्दिर अपने दिव्य स्वरूपको प्रकट कर रहेथे और ध्वजा पताका तोरणादि
अलौकिक शोभासे सुशोभित थे

वहापर देवगुरु जन्म, धर्म कार्यरक्त, विनयवन्त अनेक जग्य श्रावक श्रा-
विका निवास करते थे; उन्हेंमें मणिचन्द्र और सुवर्णचन्द्र नामक दो प्रति-
ष्ठित सेठ निवास किया करते थे उनके सूर्यकान्ता और चन्द्रकान्ता दो स्त्रियें

थीं, उनके-सूर्ययश और चन्द्रयश नामके दो विनयवान् पुत्र थे-इन दोनोंके-चन्द्रमति और तारामति नामकी दो स्त्रियें थीं.

इन दोनों श्रावक बंधुओंके आपुसमें गाढ प्रीति थी इनमेंसे सूर्ययश कुमार विशाल बुद्धिको धारण करनेवाला जिनेश्वरके आगमोंके रहस्यका वेत्ता था सांसारिक विषय-सुखोंको जोगता हुआ जी अनित्य जावनामें निमग्न था. इधर चन्द्रयश कुमार विचारा जोलेपनको धारण किया हुआ गहरे विचारोंसे विमुख था.

एक दिनका जिक्र है कि यह दोनों मित्र आपुसमें वार्त्तालाप कर रहे थे उसही अवसरमें विद्वर्य सूर्ययश कुमारने संसारकी अनित्यता प्रकट कीकि हे मित्र ! पिता, माता, चाइ, बहीन, स्त्री, पुत्र, पौत्रादि समस्त परिवार स्वार्थके साथी हैं कोई किसीका नहीं सब जुंठा है ऐसा जिनेश्वरका वचन है इसलिये किसी पर विश्वास नहीं करना चाहिये. सदा सावधानीसें ही रहना यह उत्तम पुरुषोंका कर्त्तव्य है.

यह व्यवस्था सुन चन्द्रयश बोला कि मित्र तुम्हारा कहना यथार्थ नहीं; देखिये मेरे मातपितादि मुऊपर अधिकाधिक स्नेह रखते हुवे लालना पालना उत्तम प्रकारसें करते हैं मेरे विरह (Separation) को विलकुल सहन नहीं कर सकते, आधिव्याधिमें इतना दग्धपना हो जाता है कि जो मेरे कथनसें बाहर है, इधर स्त्री ऐसी पतिव्रता है कि जो मेरे दर्शन किये बगेर अन्नजल ग्रहण नहीं करती है तथा आइससें एक अणुमात्र जी विपरीत नहीं करती, मेरी विरहावस्थाको समयमात्र जी सहन नहीं कर सकती, आधिव्याधिमें मृत्युवत् दुःखको प्राप्त हो जाती है, यहाँ तक उसका उत्तम व्यवहार है कि जहाँपर मेरा स्वेद (पसीना) गिरता है वहाँपर रुधिर मालनेको तैयार है अर्थात् विनय जाक्तिमें इतनी लीन है कि जो हमारे वक्तव्यसें बहार है, इसही प्रकार अन्य कुटुम्ब परिवार जी बम्हा ही स्नेहकारी है; इसलिये हे मित्र ! तुमारा कहना तदन मिथ्या है.

यह सुन सूर्ययश बोला कि हे जोले चाई ! तेरा यह कहना ठीक नहीं

वे सन्ध्याके रङ्गके मुखार्थिक पलटते देर नहीं करते हैं। गजसुकुमालजीने अपनी मातासे ठीक कहा है—

(-गाथा-)

पलटते रङ्ग पतङ्ग कसूँवाको जिसो
ते ऊपर विश्वास जामण करवो किसो ॥१॥

हे मित्र ! यदि तेरी छा हो तो तेरे स्नेही कुटुम्बकी प्रत्यक्ष परीक्षा करके धनलाज कि डःखमें किस प्रकार सायी है उस बातको सुनकर चन्ड-यशने सहर्ष स्वीकार किया

मूर्ययशने उसको कहा कि हे मित्र ! तुम यकानपर जाकर “उदरमें शूल-रोग हो गया” ऐसा घाढ़ना (Pretence) करना और अपने नेत्रों वगैरेको ऐसे विरुद्धि रूपमें करना की जिससे मय लोगोंको मृत्यु अथवा प्रतीत होने लग जाय

सुनतेही उन शब्दोंके यह शीघ्रही अपने घरपर पहुँचा और जोरन करके एकदमसे कल्पित शूलरोगमें दग्ध होता हुआ विलापन करने लगा.

उस अवस्थाको देखकर मातपिताओंने फइ एक वैद्य, दहीम और मा-चटारोंको बुलाये मगर किसीकी जी औपची फायदेमन्द न हुई सर्व कुटुम्बके लोग निराम होकर उस जयानक डःखसे डःखित होने लगे

इसदी घरगर्भमें यह मूर्ययश कुमार वैद्य स्वरूपको धारणकर औपचीका पौह लेफ चन्डयशके यकानपर जा पहुँचा पहुँचतेही नोकरसे फडाकि शेर सादृषमें जाकर बटोकि एक विदेशी वैद्य घागपर खम्हा है, वह मरके बीमा-रीशी उच्चोषण औपची जानता है यह सुन नोकरने शीघ्रही शेरमें जाकर मार्गना को सुनतेही शेरने धर्तीय हर्षके साथ बुलानेकी आवाह पहीमकी, ठगही बग्न नोकरने ठग वैद्यको जीवर प्रवेश करा दिया, वैद्यने अपने योग्य

स्थानपर बैठकर उस ग्लानीकी नब्ज देखी और कहाकि एक डग्धका कटोरा जर लेआओ.

सुनतेही इस शब्दके उसका पितारजत (चांदी) के कटोरेके अन्दर निर्मल डग्ध जर लेआया उस वैद्यने कटोरेको लेकर उस ग्लानीके शरीरपर इक्कीसवार उतारा किया और सब लोगोंके सामने यह जाहिर कियाकि व्याधिका जितना जहर था सर्व इसके अंदर खिंच गया है इसलिये जिसको यह कुमार प्यारा हो वह इसे पानकर लेवे जिससे यह कुमार जीवित हो जायगा और पान करनेवाला मरण शरण हो जायगा.

अब यह वैद्य प्रत्येकको पृथक् पृथक् है उसपर लोग क्या उत्तर देते हैं सो विचित्र लीला ध्यानपूर्वक पढ़ियेगा.

प्रथमही प्रथम वह वैद्य डग्धका कटोरा लेकर उसके पिताके सन्मुख हुवा और प्रार्थना कीकि है श्रेष्ठ साहब ! आप बृद्ध हैं अधिक जीवकी संज्ञावना नहीं इसलिये यदि आप सच्चे प्रेमी हैं तो आफताफके मुआफिक दमकते हुए इस कुंवर कन्हैयाको जीवित कीजिये और लीजिये यह डग्ध सानन्द पान कीजिये.

पिताका उत्तरः—प्यारे वैद्यजी ! यह कार्य होना अति कठिन है इस जगतमें विरले पुरुषोंको ठोमकर कौन ऐसा है कि जो चाहकर मृत्युवश होवे इसके अतिरिक्त जिस बातको तुम कहो वह स्वीकार है, यदि हम दोनो दम्पती मौजूद रहेंगे तो पुत्रोत्पत्ति होना असंजवित नहीं है. जाई वैद्यजी ! निर्यक हांहां करनेमें कुछ लाज नहीं है देखिये ठीक कहा हैः—“ आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जा सुखी भवेत् ” इसका अनुकरण करते हुवे मैंने आपसे स्पष्ट निवेदन किया है.

यह सुन वैद्य कौतुकार्थ माताके सन्मुख उपस्थित हुवा और प्रार्थना कीकि हे श्रेष्ठानी साहबा ! यह आपका युवान पुत्र मिनटोंके अंदर मरण शरण हो जायगा, जिस पुत्रकोकि आपने नौ मास पर्यन्त अपने उदरके अन्दर स्थान

प्रदान किया है बाद में जाना प्रकारकी मृश्रुपाकर पालन किया है वह मनो-
हर पुत्र आज परलोकके प्रस्थानकी तैयारी कर रहा है आप दृष्टावस्थाके
अन्दर पहुँच गई हो अब अधिक जीवनकी संज्ञावना नहीं इसलिये कृपाकर
अपने प्यारे पुत्रको वचात, रक्षा करो, इस छष्ट कालके कब्जेसे मुक्त करो;
अर्थात् जीवितदान दो और लो यह डग्घपान कर लो

माताका उत्तरः—हे जाई वैद्यजी ! तुम्हारा कहना सर्वथा ठीक है किन्तु
यह कार्य होना बहुत कठिन है इस डनियामें सैकड़ों पुत्र जन्मते हैं और
इसही प्रकार मृत्युको प्राप्त होते हैं तो जला ! किसके पीठे जान दी जाय
यह सत्तारका अनादि प्रवाह ऐसाही चला आता है और इसही प्रकार
चलता रहेगा विशेष न्या कहू तुम खुद मुझ हो

इसके बाद डग्घका कठोरा लेकर बहुत सेरिस्तहदारोंके सम्मुख हुआ
किन्तु सर्वने इसही प्रकार दृटाफूटा उत्तर दिया अन्तमे वह वैद्य उसकी
स्त्रीके पास गया और कहाकि हे जड़े ! तुम अपने पतिकों वचात, अगर पति
मर जायगा तो तुम्हें इस डनियामे कुछ जी सुख नहीं है देखो उत्तम खान-
पान जी तुम नहीं कर सकती, उत्तम उख जी जोगमें, नहीं ला सकती हो
तथैव अलङ्कारोंसे अलङ्कृत नहीं हो सकती, उत्तम सेजपर शयन नहीं कर
सकती हो, हँसीमजाक तथा अन्य मार्त्तालाप निम्न नहीं कर सकती हो,
अपने शीलकी रक्षा जी उत्तम प्रकारसे करना डर्लज है इसही प्रकार कि-
सीसे घनिष्ठ सम्बन्ध रखना जी डःसाध्य है कहनेका तात्पर्य यह है कि पति
मृत्युके बाद स्त्रीको किसी प्रकारका सुख नहीं हो सकता है तो फिर अपने
प्यारे पतिके वचानेका यश क्यों ठोमती हो स्त्रियोंका यह मुख्य धर्म है कि
अपने पतिके संकट (Distress)को निवारण करे और मुना जी जाता है
कि तुम बनी ही पतिव्रत धर्मधारका हो और सदैव अपने पतिकी आज्ञामे
चलनेवाली हो तथैव गाढ प्रीति रखनेवाली हो इसलिये हे बुद्धिमते ! लो
यह डग्घपान करो और अपने प्यारे प्राणनायकों छष्ट मृत्युसे तुमालो

स्त्रीका उत्तरः—वैद्यजी ! तुम्हारा कहना यथार्थ है किन्तु जीते जीव
मरना कैसे उन सकता है देखो इस डनियाके अन्दर हजारों स्त्रियोंके पतिकाल

प्राप्त हो गये हैं इसही प्रकार मेरी जी हालत हो जायगी अर्थात् हजारों विधवाएं कोनेका आश्रय ले रही हैं इसही प्रकार एक में जी बढ़ जाऊंगी तो कुछ हर्ज नहीं मगर जार्ज वैद्यजी ! तुम्हारे कथनानुसार करनेकों में सर्वथा असमर्थ हूं.

उस वैद्यने इस प्रकार अद्भुत घटना देखकर पुनरपि समस्त कुटुम्बकों कहा कि अरे जार्जो ! कोई जी दया लाकर इस कुमारकी रक्षा करो तुम्हारा प्रेम इसही उपमावस्यामें प्रतीत होगा.

कुटुम्बका उत्तरः—कौन इस जगत्के अन्दर ऐसा है जो अपना व अपने संबंधियोंका जला न चाहता हो मगर क्या किया जाय जीवित हालतमें जान देना कठिन है और इसही कारण हम सब मजबूर हैं. विशेष क्या कहें तुम खुद बुद्धिमान हो.

इस आश्चर्यजनक लीलाको देखकर उस चन्द्रयशको विस्मय करता हुआ वह वैद्यरूप मित्र सर्व कुटुम्बके प्रति कहने लगा कि धन्य हो तुम्हकों व तुम्हारे उत्तम कुलकों, धन्य हो तुम्हारे शुद्ध व्यवहार तथा तुम्हारे गाढ़ प्रेमको किन्तु इस प्रकार कुटिल व्यवहार रखते हुवे अपना उत्तमपन समझते हो मैंने केवल तुम्ह लोगोंके स्नेहकी परीक्षाके वास्ते ही इतना प्रयत्न किया है यह संसार महान मिथ्या तथा विश्वासघातक प्रतीत होता है देखो मैं यह उद्घोषण करता हूं इससे मुझे कुछ जी नुक़शान नहीं हो सकता यह बात मुन सर्व लज्जित हुवे.

(गृहस्थाश्रमसें ग्लानी और वराग्यमें रमणता)

चन्द्रयश इस संसारकी अद्भुत लीलाको देखकर वैराग्य-ताकों प्राप्त हुआ.

इसही अवसरमें एक चतुर्ज्ञानधारी महान् आचार्यका पदार्पण हुआ, इस अपूर्व खुशखबरीकों सुनतेही सर्व लोक एकत्रित होकर पूज्य गुरुवर्यके सन्मुख

गये और महताम्बरसे नगर प्रवेश (Entry) करवाया उपाश्रयमें प्रवेश होतेही उपगारी गुरुवर्यने अपनी अलौकिक धर्मदेशनासे जन्म जनोको सुगंध किये; वह चन्द्रयज्ञ कुमार जी इस जलसे मेशरीक या

एक दिन उन धर्मावतारने संसारकी अनिष्टता (Transient) पर असाधारण व्याख्यान दिया जिससे अनेक जन्मात्मा गृहस्थाश्रमके डःखसे घृज पड़े इसमें सबसे अधिक उदासीनता उस चन्द्रयशको-प्राप्त हुई, यह कुमार अपने मातापिताकी आज्ञाको धारणकर इन विशाल ज्ञानीके पास अनेक जन्म प्राणियोंके साथ महताम्बरमे निर्मल चारित्र ग्रहण किया

क्य है ! उस अतुल वैरागीकोकि जिसने डःखके दाता गृहस्थाश्रमको तत्काल परित्याग कर जवतारक चारित्र अङ्गीकार कर लिया

इस दृष्टान्तसे आपको विदित हो गया होगा कि यह गृहस्थाश्रम किस प्रकार मिथ्या है, तथापि निर्मल चारित्रको अखितयार करना अति डरल है जो जन्मात्मा इस जवोधारक चारित्रको अखितयार करते है वे महानुभाव पञ्च महाव्रतको जली प्रकार पालन कर सकते हैं

यह पञ्च महाव्रत एक ऐसे उत्तम रत्न है कि जिसको व्यवहार निश्चयादि जेदोंद्वारा ययार्थ पालन करे तो उत्कृष्ट मोक्ष पद प्राप्त होता है उनहीं महान् पञ्चरत्नोकी व्याख्या लिख दिखते है:—

॥ पञ्च महाव्रतोंका दिग्दर्शन ॥

प्रथम अहिंसा महाव्रत.

किसी जी प्राणीको हिंजा (तकलीफ) न पहुँचाना उसे अहिंसा महाव्रत कहते है.

- व्यवहारसे:—पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, वनस्पति, वेन्डि, तेन्डि, त्रौरिन्डि, और पञ्चेन्डि, इन नौ प्रकारके जीवोंकी हिंसा करे नहीं, करावे नहीं और

करतेको अनुमोदे नहीं एवम् १७ मनसैं, वचनसैं, और कायासैं एवम् ८१ प्रकारसे सर्वथा हिंसाको परित्याग करे, अर्थात् हिंसा चतुष्कर्ममें जघन्यसे प्रथम जेद व उत्कृष्टसैं चतुर्थ जेद ग्रहण करे शेष जेद सर्वथा त्याग करे.

(हिंसाचतुष्क)

१ इव्यसैं हिंसा करता है ज्ञावसैं नहीं.

विवेचनः—जैसैं मुनिराज अहारपानीके वास्ते तथा विद्वार वगेरामे गमनागमन करते हैं उस वख्त जो कोइ हिंसा हो जावे वह इव्य हिंसा है अर्थात् स्वरूप हिंसा है बन्ध हिंसा नहीं.

२ ज्ञावसैं हिंसा करता है इव्यसैं नहीं.

विवेचनः—दिलमें ऐसा विचार होता है कि मै अमुक मनुष्यको या अमुक जानवरको प्राणरहित करदूं अथवा अमुक प्राणिको अमुक डःखसैं दग्ध करदूं इत्यादि अनेक डष्ट विचार करता है लेकिन हिंसा करनेका मौका प्राप्त नहीं होता यह ज्ञाव हिंसा जानना; अर्थात् इससे अशुभ बंध पड़ता है.

३ इव्य और ज्ञाव दोनो प्रकारसे हिंसा करता है.

विवेचनः—परिणाम जी कषायके रहते हैं तथा इव्य हिंसा जी करता है; अर्थात् दोनो प्रकारकी हिंसा करके डर्गतिका जागी होता है.

४ इव्य और ज्ञाव दोनो प्रकारसे हिंसा नहीं करता.

विवेचनः—यह शून्य जांगा है; अर्थात् असंजव है.

निश्चयसैंः—रागद्वेष करके जो अपनी आत्मा लीन हो रही है उससैं मुक्त होकर अपने निज स्वरूपको प्रकट कर निर्मलावस्थाको प्राप्त होना.

द्वितीय सत्य महाव्रत.

सर्वथा असत्यका परित्याग करना उसें सत्य महाव्रत कहते हैं.

व्यवहारसे:—क्रोध, मान, माया और लोभसे जूठ बोले नहीं, बोलावे नहीं और बोलतेको अनुमोदे नहीं एवम् ११ मनसे वचनसे और कायासे एवम् ३६ प्रकारसे सर्वथा मृषावाद परित्याग करे, अर्थात् मृषाचतुष्कर्मसे जघन्यसे प्रथम जेद व उत्कृष्टसे चतुर्थ जेद ग्रहण करे शेष जेद सर्वथा परित्याग करे

(मुषाचतुष्क)

१ इयसें जूठ बोलता है जावसें नहीं

विवेचन:—जैसे किसी एक विद्यावान जङ्गलके अन्दर एक मुनिराज विश्राम ले रहे थे उस वख्त एक सिंह पास होकर निकला उसको जली ज्ञाति जान लिया योम्नी देरके बाद क्या देखते हैं कि बहुतसे मनुष्योंके साथ अनेक शस्त्र धारण किया एक राजा आन पहुँचा पूछता क्या है कि हे मुनी-श्वर ! सिंहको श्वर निकलते आपने देखा है क्या ?

यह सुन वह मुनिराज दिलमे विचार करने लगे कि यदि मे बतलाता हूँ तो पक्षेन्धिय जीवकी घात होती है; यदि इनकार करता हूँ तो मृषावादका प्रायश्चित्त लगता है; यदि मौन रखता हूँ तो जीवन रहना मुश्किल है ऐसा विचारते हुये शीघ्रही यह ज्ञात हुवाकि जिनेश्वरका एकान्त मार्ग नहीं है धर्मके सर्व असूल सापेक्ष और निर्वाध्य है, उन सर्वज्ञ देवने इय तया जाव ऐसे दो प्रकारके मृषावाद फरमाये हैं: इय मृषावाद उसे कहते हैं कि जिसमें महत्त कारण होनेसे अधिक लाजके बास्ते यदि बोलना पने तो उससे वचन नहीं पमता है किन्तु स्वरूप मृषावाद है; ऐसा विचार कर उन मुनिराजने उत्तर दिया हे राजन् ! मुझे मालुम नहीं कि मृगराज किधर गया है अथवा अनुपयोगतासे असत्य बोला जाय वह जी इय मृषावाद समझना

५ जावसें जुंठ बोलता है ड्यसे नहीं.

विवेचनः—दिलमे ऐसा विचार करता है कि मैं अमुकके समक्ष इस इस प्रकार मनोकल्पित आरम्भवरीय वार्त्तालाप या कीसीकी यश कीर्त्ति या निन्दा-दिक अतिही खूबसूरतीके साथ कहूंगा इत्यादि विचार करता है लेकिन ऐसी वार्त्तालाप करनेका मोका नहीं पाता, वह जाव मृषावाद जानना.

ड्य और जाव दोनों प्रकारसें मृषावाद.

विवेचनः—परिणाम जी सख बोलनेमे निमग्न रहते हैं तथा इसही प्रकार बोलनेका जी अवसर प्राप्त हो जाता है; अर्थात् दोनों प्रकारका मृषावाद बोलकर डर्गतिका जागी होता है.

४ ड्य और जाव दोनों प्रकारसे मृषावाद नहीं बोलता है.

विवेचनः—यह शून्य जांगा है; अर्थात् उत्तम और ग्रहण करने योग्य है.

निश्चयसें:—पौत्रलिक पदार्थकों यह चेतन जो अपनी करके मान रहा है अर्थात् ममत्वमे लीन होकर नित्य प्रति अधिकाधिक आनन्दमें मग्न हो रहा है. उससे विमुक्त होकर निर्मल जावमें रमण करना.

तृतीय अस्तेय महाव्रत

वगैर दी हुई वस्तुकों बिलकुल अङ्गीकार नहीं करना उसे अस्तेय महाव्रत कहते हैं.

व्यवहारसें:—अल्प, विशेष, कनिष्ठ, ज्येष्ठ, सचित्त और अचित्त इन छ प्रकारसें चौरी करे नहीं, करावे नहीं और करतेको अनुमोदे नहीं एवम् १० मनसें, वचनसें और कायासें एवम् ५४ प्रकारसें सर्वथा चौरी परित्याग करे अर्थात् स्तेय चतुष्कमेसें जघन्यसें प्रथम जेद और उत्कृष्टसें चतुर्थ जेद ग्रहण करे शेष जेद सर्वथा परित्याग करे.

(स्तेयचतुष्क)

१ इन्धन चोरी करता है जावसें नहीं.

विवेचनः—जैसे किसी एक शहरमें एक धनाढ्य शेर रहता था वह एक वस्त्र सकुटुम्ब यात्रार्थ रवाना हुवा, पीठसे उसके मकानमें अचानक (Suddenly) अग्नि लग गई उस वस्त्र उसके सुयोग्य पड़ोसी (Neighbours) ने यह विचार कर सर्व सामान निकाल लिया कि जब वह आवेगा उसे वापिस दे दूंगा जब वह शेर यात्रासे लौटकर आया तब सर्व वस्तुएं उसे दे दीं. यह इन्धन अदत्ता दान जानना; अर्थात् स्वरूप चोरी है वन्ध चोरी नहीं.

२ जावसें चोरी करता है इन्धन नहीं.

विवेचनः—मनमें ऐसा विचारता है कि मैं अमुक राजाका या अमुक शेर साहूकारका खजाना तोकर बहुतसा इन्धन चुरा लाऊँ या किसी जगह माला (Dacoity) माल कर बहुत सा धन लूट लाऊँ इसादि सङ्कल्पविकल्प किया करता है किन्तु चोरी करनेका या माला मालनेका मौका प्राप्त नहीं होता है यह जाव अदत्ता दान जानना

३ इन्धन और जाव दोनों प्रकारसे अदत्ता दान.

विवेचनः—परिणाम जी अदत्ता दानमें मग्न रहते हैं तथा माल जी लूट जाता है यह दोनों प्रकारका अदत्ता दान सेवन करके आत्मा डर्गंतिका जागी होता है

४ इन्धन और जाव दोनों प्रकारसे चोरी नहीं करता है.

विवेचनः—यह शून्य जागा है—अर्थात् श्रेष्ठ और आचरण करने योग्य है

निश्चयसे—यह चेतन कृष्ण १ में जो कर्मोंकी वर्गणा तथा पञ्चेन्द्रियके

तेवीश विषय ग्रहण कर रहा है उन्हें परित्याग कर उत्तम साधनोका अनुसरण करे.

चतुर्थ ब्रह्मचर्य महाव्रत.

मैथुन [व्यभिचार]सें सर्वथा पृथक् रहना उसें ब्रह्मचर्य महाव्रत कहते हैं.

व्यवहारसें:—देवाङ्गना, स्त्री और तिर्यञ्चनी इन तीनों जातिसे मैथुन सेवन करे नहीं, सेवन करावे नहीं और सेवन करतेको अनुमोदे नहीं एवम् ए मनसे, वचनसें और कायासें एवम् ११ प्रकारसें सर्वथा कुशील परित्याग करे; अर्थात् मैथुन चतुष्कर्मसें जघन्यसें प्रथम जेद और उत्क्रष्टसें चतुर्थ जेद ग्रहण करे शेष सर्वथा परित्याग करे.

(मैथुनचतुष्क)

१ इयसें मैथुन करता है जावसें नहीं.

विवेचन:—जैसे जरत चक्रवर्ति रुद्र परिणामोंसें अपनी ६४००० स्त्रियोंको सेवन करते थे मगर रक्तता रहित थे. द्वितीय दृष्टान्त यह है कि किसी समय एक महान् पवित्र मुनिराज ग्रामानुग्राम विहार करते हुवे एक नदीके

(नोट)

दीर्घ विचारसें विमुख होकर भ्रम वश कितनेक लोग यह प्रश्न करते हैं कि स्पर्श मात्रसें मैथुनकह देना यह मिथ्या है कारणाकि ऐसे तो माता पुत्रके स्पर्शसें, पिता पुत्रीके स्पर्शसें, भाई बहिनके स्पर्शसें व्यभिचारका दोष मानना पड़ेगा और यदि ऐसा हो तो यह अन्याय है.

उत्तर:—जो ज्ञव्यात्मन् ? यदि आपनें सूक्ष्म विचार किया होता तो ऐसा सामान्य प्रश्न कभी पैदा नहीं होता देखिये गृहस्थाचार और श्रमणाचारके अन्दर बहुत अन्तर है मुनिराज दूषित कार्योंके सर्वथा सागी हैं; दीक्षा लेनेके बाद साधु जन अपने खास माता, बहिन और पुत्रीको स्पर्श नहीं करते हैं इसमें शील रक्षाका ही कारण है. विशेषेण किम.

तत्पर आन पहुँचे देखते क्या है कि एक आर्या (साखी) जलमें मूबी जा रही है निगाह गिरते ही यह विचार किया कि यदि मैं इसको निकालूँ तो क्षीयलव्रतके नियम विरुद्ध संपर्क (स्पर्श-संघटा) दोषका जागी होता हूँ यदि न निकालता हूँ तो पञ्चेन्द्रिय जीवका निरर्थक घात होता है इसके जीवनसे हजारों जन्वात्माओंका उद्धार (Deliverance) होगा ऐसा समझ इव्यसे मैथुनका दोष न विचारता हुआ प्रियुष जावोंसे शीघ्र ही हाथ पकड़कर बाहर निकाल दी

१ जावसें मैथुन करता है इव्यसें नहीं.

विवेचनः—दिलमे ऐसा विचारता है कि मैं इन्डाणीसें या अमुक राजाकी रानी या अमुक युवा स्त्रीसें विषयसुख सेवनकर अपना मनुष्य जब सफल करूँ मगर ऐसा डट्ट प्रयोग करनेका मौका प्राप्त नहीं होता यह जाव मैथुन जानना

२ इव्य और जाव दोनो प्रकारसे मैथुन.

विवेचनः—मनोजाव जी व्यभिचारमे संलग्न रहै और योग जी मिल जाय, यह दोनो प्रकारका कुशील नरकादि गतिका दाता होता है

४ इव्य और जाव दोनो प्रकारसें मैथुन नहीं.

विवेचनः—यह शून्य जागा है; अर्थात् उत्तम और सेवन करने योग्य है

निश्चयसेंः—यह चेतन निज गुणकों परित्याग करता हुआ परपुरुषमें रमणकर आनन्दित हो रहा है उससें सर्वया शृङ्ख होकर अपने अनन्त ज्ञान, दर्शन और चारित्रमें तमय हो जाय

पंचम अपरिग्रह महाव्रत.

जोगोपजोगीय अशेष पदायोंमें मूर्छा रहित होना उसें अपरिग्रह महाव्रत कहते हैं

व्यवहारसेः—अल्प, विशेष, कनिष्ठ, जेष्ठ, सचित्त और अचित्त इन ठ प्रकारके परिग्रहकों रखे नहीं, रक्तावे नहीं और रखतेको अनुमोदे नहीं एवं १८ मनसैं, वचनसैं और कायासैं एवम् ५४ प्रकारसैं सर्वथा परिग्रह त्याग करे; अर्थात् परिग्रह चतुष्कर्मसैं जघन्यसैं प्रथम जेद और उत्कृष्टसैं चतुर्य जेद ग्रहण करे शेष जेद सर्वथा त्याग करे.

(परिग्रह चतुष्क)

१ इव्यसैं परिग्रह है और ज्ञावसैं नहीं.

विवेचनः—जैसे मुनिराजके पुस्तक पत्रादि ज्ञानोपगरण तथा जिनेश्वर देव और गुरु महाराजके चित्रादि दर्शनोपगरण एवम् वस्त्र, रजोहरण, (ओधा) पात्रादि चारित्रो पगरण होते हैं; किन्तु ममत्व रहित हानेसे इव्य परिग्रह जानना यानी स्वरूप परिग्रह है बन्ध नहीं इसही प्रकार जरत चक्रवर्ति वगैराका उदाहरण जानना.

२ ज्ञावसैं परिग्रह है इव्यसैं नहीं.

विवेचनः—जैसे कोई प्राणी विचार करेकि मुझे क्रोड़ रूपेकी प्राप्ति हो जाय, शेर साहुकारपन एवम् राजा महाराजा चक्रवर्त्यादिका सिंहासन मिल जाय बहुतसे पुत्र, पौत्र, नौकर, चाकर अथवा दिव्यप्रासाद एवम् हाथी, घोड़े, बगी सिगरामादि वाहनोकी प्राप्ति हो जाय जोगोपजोगके उत्तमोत्तम पदार्थ सेवन करनेको मिलें इसही प्रकार बहु मूल्य वस्त्रानूषण प्राप्त हों इत्यादि नाना प्रकारके परिग्रहोंका चिन्तन करता है किन्तु प्राप्त नहीं होते यह ज्ञाव परिग्रह जानना अर्थात् बन्धनका हेतु है.

३ इव्य और ज्ञाव दोनो प्रकारसैं परिग्रह.

विवेचनः—दिलमें यह विचार करता है कि मुझे हाट, हवेली, ज़मीन, जायदाद, पुत्र, कलत्र, कुटुम्ब, परिवार, वस्त्रानूषणादि प्राप्त हों और

इसही माफिक सर्व मनोरथ सफल हो जाँय यह दोनो प्रकारका परिग्रहका दाता जानना

॥ इव्य और ज्ञाव दोनो प्रकारसे परिग्रह नहीं.

विवेचनः—यह शून्य ज्ञाता है; अर्थात् उत्तम और ग्रहण करने योग्य है.

निश्चयसेः—यह चेतन राग, द्वेष, ज्ञानावर्णीय प्रमुख अपृक्तों में निमग्न हो रहा है उन्हे विध्वंसकर आत्मस्वरूपमें रमण करे

यदि कोई प्राणी इन ज्ञवतारक पंच महाव्रतोंको व्यवहार और निश्चय करके अखिल स्वरूपसे प्रतिपालन करे तो निम्न लिखित पञ्च दिव्य प्राप्त होते हैं

प्रथम महाव्रतके पालन करनेसे दृष्टिगोचर जीव आपुसमें बैर ज्ञाव नहीं ले सकते; अर्थात् लड़ाई जगमा और भाण रहित नहीं कर सकते हैं यह अलौकिक प्रथम सिद्धि जानना

२ दूसरे महाव्रतके पालन करनेसे वचन सिद्धि हो जाती है; अर्थात् किसीको यह कह दे कि तेरा यह कार्य अमुक दिन सफल हो जायगा वह अवश्य ही हो जाता है, यह द्वितीयालौकिक सिद्धि जानना

३ तृतीय महाव्रतके पालन करनेसे जिस १ स्थल पर चरण रक्के उस १ स्थानपर नयनिधान प्रकट होते हैं नीतिकारका कथन है "निस्पृहे निधानानि" यह हेतु अनुजव सिद्ध है. यह अलौकिक तृतीयासिद्धि जानना

४ चौथे महाव्रतके पालन करनेसे अनन्त वीर्य प्राप्त होता है: इसहीसे कर्माँका विध्वंसकर प्राणि अचिरात् मोक्षपदकों प्राप्त होता है यह अलौकिक चतुर्थी सिद्धि जानना

५ पञ्चम महाव्रतके पालनेसे जव जगण नष्ट हो जाता है वस्तु मसर्गसे जवट्टि होती है और इस महाव्रतसे दिनप्रदिन वस्तु मसर्ग निकन्दन होता जाता है, यह अलौकिक पञ्चम सिद्धि जानना

इन कर्मध्वंसक महान् पवित्र पञ्चमहाव्रतोंका जघन्यसें रक्षिया संदश और उत्कृष्टसें रोहिणी सदृश शुद्धाचरण करना चाहिये. महानुभावों ! अब सरकों पाकर एक दृष्टान्त लिख दिखाता हूँ.

(पञ्च महावृत्तोंपर दृष्टान्त)

किसी एक अनुपम शहरमें धन्नासार्थवाह नामक एक श्रेष्ठ निवास करता था उसके उत्तमशील नामक एक सुपुत्र था इसके उत्तम कुल धारका ४ स्त्रियें थीं. नोकर, चाकर, हाट, हवेली और लक्ष्मीकरके पूरित था. जोगोपजोग पदार्थोंका आनन्द लूटता हुआ सुखपूर्वक अपना काल निर्गमन करता था.

एक दिन वह श्रेष्ठ ब्रह्म मुहूर्त्तके अन्दर उठकर यह विचार करने लगा कि देखें मैं अपने लम्बेकी चारों नार्याओंकी परीक्षा करूं कि गृह कार्य कौन उत्तम रीतसें चला सकती है, प्रातःकाल होतेही अपनी निश्च क्रियासे निवृत्त होकर अपने मुनीम तथा गुमास्ताओंको यह आज्ञा दी कि जिस १ स्थलपर अपने रिस्तहदार निवास करते हैं उस १ जगह यह सूचना दी कि यहांपर एक महत् उत्सव होनेवाला है इसलिये कृपयाशीघ्र ही पधारकर इस जलशेकों सुशोभित कीजिये गा.

श्रेष्ठकी आज्ञानुसार दिन मुकामपर करके सर्व स्थानपर प्रार्थनापत्र ज्ञेय दिये नियमित दिनपर सर्व सज्जन लोक एकत्रित हुवे उसही समय श्रेष्ठने अपने पुत्रकी चारों स्त्रियोंको उस जलसेमें निमन्त्रित की उन्होने महत् विनयसें अपने श्वसुरके चरणोंमें प्रवेश किया, अर्थात् उस जलशेमें हाजिर हुई.

श्रेष्ठने सर्व महिमानो (प्राहुओं)का यथोचित सम्मान किया तत्पश्चात् इन चारों स्त्रियोंको सर्वके समक्ष पांच १ शालिके दाने दिये और यह कहाकि जिस वस्तु मैं वापिस मांगूं उस वस्तु यही पांच दाने मुझे अर्पण करना तत्पश्चात् वह जलसा विसर्जन हुआ. उन चारों स्त्रियोंने मकान पहुँचकर पृथक् १ इस प्रकार विचार किया:—

१ प्रथमा स्त्रीने यह विचारा कि घरके अन्दर मनोबन्ध शाली रखी हुई है जिस वस्तु सुसरजी कहेंगे उस ही वस्तु इसमेंसे पांच दाने लेकर अर्पण करडंगी, उन्हें सम्मन्त्रालकर रखनेसे क्या प्रयोजन है यह सोच बाहर उकरने पर फैक दिये

२ द्वितीया स्त्रीने यह विचारा कि सुसरजीने 'अनुग्रहपूर्वक यह उत्तम वस्तु दी है उसे मैं जह्ण कर लूं तो मुझे बहुत ही लाभ होगा यह विचार वे शालिके दाने जह्ण कर गई

३ तृतीया स्त्रीने यह विचारा कि सुसरजीकी अह्वरश आका पालना मेरा मुख्य कर्त्तव्य है इसके बराबर कोई उत्कृष्ट धर्म नहीं जैन सिद्धान्तोंमें यह प्रसिद्ध है विज्ञान, दर्शन और चारित्र्य एवम् विनय, बैयारच्च और तपश्चर्या इत्यादि उत्तमोत्तम सर्व धर्म आका में ही समावेश है; यही जिनागमका सार है ऐसा दीर्घ विचार करवेशालीके दाने अपने रत्नोंकी पेटीमें रख दिये

४ चतुर्थी स्त्रीने यह विचारा कि सुसरजीने यह दाने कोई शुभ मुहूर्त्तमें दिये हैं इसलिये मेरा यह धर्म है कि उन्हें वृद्धि रूपमें शपिस अर्पण करूँ जैसे पुत्रको इव्य देता है और वह व्यापारादि प्रयोगोंसे इव्यको बढ़ाता है इसही प्रकार मेरा भी कर्त्तव्य है यह सोच वे पाचों दाने अपने जाईके पास जेज दिये और यह लिख दिया कि इनका कृपे व्यापार करके हर साल क्रमशः बढ़ाते रहना इसमें जितना खर्च होगा उतना मे अर्पण कर दूगी इस प्रकार चारों स्त्रियोंने अपनी १ मति अनुमार काररवाई की

कितनेक वर्ष व्यतीत होने पर श्रेष्ठको एकवार स्मरण हुआ कि मैंने जो परीक्षा की है उसका क्या नतीजा हुआ उसमें प्रसङ्ग अनुभव करना चाहिये यह विचार पूर्वानुसार सर्व रिस्तहदारोंको एकत्रित किये और उसही प्रकार उन चारों स्त्रियोंको अपनी दी हुई वस्तुको लेकर हाजिर होनेकी निमन्त्रणा की

प्रथमा स्त्री अपने कोठार (धान्यगृह) मेंमे पांचे दाने लेकर खाना हुई, द्वितीयाने भी इसही प्रकार किया, तृतीयाने अपने जवाहिरातका दिव्या लेकर प्रस्थान किया, चतुर्थीने कितनेक दिन प्रथमसे ही अपने पांच दानेकी परपरा

तुंगत पैदावारीके पांचसौ शालिकी गाम्भियें मंगवा रखी थीं और यह हुकम दे दियाथा कि अमुक दिनकी अमुक टाइम पर अमुक स्थान पर हाजिर हो जाना; इस प्रकार सर्व स्त्रियें अपनी ९ तैयारी कर सुसराजीके चरणसरोजमें प्रवेश हुईं.

शेठजीने उन चारों स्त्रियोंको यह आज्ञा दी कि वेशालीके दाने वापिस अर्पण करो; आज्ञा पातेही वे चारों क्रमशः प्रवृत्त हुईं.

प्रथमा स्त्रीने जब वेशालीके दाने अर्पण किये तब शेठजीने कहा कि ये वे खास दाने नहीं हैं कि किन्तु अन्य हैं? सच बतलाऊ! वे कहाँ गये? इसही प्रकार द्वितीया स्त्रीका जी सम्बन्ध जानना. उन्होंने अपनी ९ कारवाई प्रकट रूपसे निवेदन कर दीं.

तृतीया स्त्रीने जवाहिरातके मिब्बेमेंसे वे दाने निकाल कर नजर (जेट) किये और अपना पूर्व कृत विचार निवेदन किया, सुनते ही शेठजी प्रसन्न हुवे. चतुर्थी स्त्रीने वेशाली की पांचसे गाड़ियें समर्पण की और अपना पूर्व कृत सर्व प्रकट किया. यह सुन शेठजी अगाध प्रसन्न हुवे और उसही समय इन चारों स्त्रियोंको पृथक् पृथक् पदसे नियुक्त कीं.

प्रथमा स्त्रीको फूस (काजा) निकालने का काम सिपुर्द किया और यह कहा कि तूने जैसे शालीके दानेकी परवाह नहीं की इस प्रकार डब्ब को जी बरवाद कर देगी इस लिये तुझे यही कार्य योग्य है यह कहकर "उज्झिया" नाम वहीस किया.

द्वितीया स्त्रीको जोजन बनानेका कार्य वहीस किया और यह कहा कि जैसे तूने शालीके दाने जड़ण कर लिये तेसे ही हरेक चीज खानेमे तेरी अधिक प्रीति है इसलिये तुझे जोजन बनानेका तथा प्राहुणे आदि जिमानेका कार्य सौंपा जाता है यह कहकर "ज्रिकिया" नाम प्रदान किया.

तृतीया स्त्रीको जेमारका कार्य सिपुर्द किया और यह आज्ञा दी कि जिस

प्रकार दूने शालीके दाने संजाल कर रक्के ये उसही प्रकार घरकी सर्व वस्तुएँ सावधानीसे रखना यह कहकर “रत्निका” ऐसा नाम बद्धीश किया

चतुर्था स्त्रीकों स्वामिनी पद बद्धीश किया और अति प्रसन्न होकर यह कहा कि तू बड़ी बुद्धिमती है, लेंछुं वयमें इतने चातुर्य और साहसिकादि गुणों से अलङ्कृत है इसलिये गृह सबधि सर्व कार्य तेरे सिपुर्द किये जाते हैं तेरी आज्ञा के बगैर कोई कार्य नहीं हो सकेगा इत्यादि कहकर “रोहिणी” ऐसा नाम प्रदान किया

कहनेका तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार रोहिणीने शालीकी वृद्धि की इस ही प्रकार मुनिराजकों पञ्च महाव्रत उज्ज्वल रूपसे पालन करनेमें कटिबद्ध होना चाहिये रुदाचित वृद्धि करनेकी सामर्थ्य न हो तां मूलकी अवश्य ही रक्षा करना चाहिये इस प्रकार संयमका प्राप्त होना अति डङ्कर है; यदि संयम प्राप्त हो गया और वीर्य (शक्ति) प्रकट न हुवा तो जी ययेष्टा प्राप्त नहीं हो सकती कारण की वीर्यका पाना जी अति डुर्लभ है देखिये:—

॥ प्रार्थनारूप उपदेश ॥

कई महानुभाव श्रमण पद प्राप्त होनेके पश्चात् सामर्थ्य होनेपर जी नियम, बैयावच, तप, जप, ध्यान, पठनपाठनादि क्रियाओंमें अपनी शक्तिका यथोचित उपयोग नहीं करते हैं वे आराम तलरी लोग शारीरिक सुखमें निमग्न हो कर सदाचारोंमें पणित हो जाते हैं यहा तककि आपगुदका जी अन्यपर निर्भर रहता है वे महानुभाव इनना जी नहीं सोच सकने कि पगली आज्ञा अवश्य धोका देनेवाली है मझनो ? किसी इजानी गुग्ने ठीक रुदा है:—

(गाथा)

पगकी आज्ञा सदा निराशा । ये जग जनका फाँसा ॥

य काटनकाकरो अन्धासा । लदो सदा सुखवासा ॥ आप स्वज्ञाव ॥१॥

सज्जन शुजेहकों ! ये कायर लोग अपने शिष्यसमुदायमें ग्रस्त होकर सूरवीरतामें विमुख हो जाते हैं, जो महानुभाव अपने जुजा बलसें सर्व कार्य करते हैं अथवा करनेकों समर्थ हैं वे ज्ञव्यात्मा अपनी यथेष्टाकों प्राप्त कर सकते हैं.

दीक्षा लेनेके समय बुद्धि जन यह विचार करते हैं कि अपने समस्त कार्य के अतिरिक्त गुरु महाराज तथा अन्य रत्नादि मुनिवरोंकी सेवा करना हमारा मुख्य धर्म होगा इस जब और परजबमें सच्चा साहाय्यकारी हमारे जुजा बलसे किये हुवे कार्य ही हो सकेंगे अन्य सर्वाश्रय व्यावहारिक लहरोंमें वह जाँयगे इस प्रकार उत्तम विचारोंसें जो ज्ञव्यात्मा निर्मल चारित्रको ग्रहण करता है वह सूरवीरता पूर्वक इस विषम संसारमें विजयका भंडूक बना सकता है अपनी आत्मा और परमात्माका उद्धार करनेको समर्थ हो सकता है किन्तु ऐसा शुज कर्म उदय आना अति डल्लज है. इस प्रकार धर्म देशना होनेके बाद जय ३ शब्दोंसें दशों दिशाओं पूरित की गई.

ये महानुभाव कितनेक दिन तक इस शहरमें ठहरे और धर्मकी अत्युन्नतिकी चातुर्मास संपूर्ण होनेके पश्चात् ग्रामानुग्राम विहार करते हुवे मरुस्थल देशके सुप्रसिद्ध शहर योधपुरमें प्रवेश किया वहाँपर आत्म कल्याण तथा ज्ञव्यात्माओंका उद्धार करते हुवे सानन्द निवास करते रहै.

॥ चारित्र रक्षा तथा ज्ञव्योपकार ॥

इस स्थलपर कितनेक दिन निवास करनेके बाद ग्रामानु ग्राम विहार करके ज्ञव्यात्माओंका उद्धार करते रहै. डषम कालके महात्म्यसें डष्ट कर्मोंने गुरुवर्य श्री राजसागरजी, रुहिसागरजीको आनघेरा जिससे आपको चारित्रसें शिथिल होना पड़ा* इस अवस्थाको देख परम बैरागी पूज्यपाद श्रीमान् सुख-

* ॥ विधिरहो बलवानिति मेमतिः ॥

अहाहा ! कर्मकी गति विचित्र हैं इसने बड़े २ तीर्थकर, गणधर और महानाचार्य एवम् चक्रवर्त्ति, वासुदेव प्रतिवासुदेव और बलदेव तथा बड़े २ राजा महाराजा और श्रेष्ठ साहूकारोंको अपनी फौसमें दबा लिय.

सागरजी महाराजकी तबियत उन लोगोंसे दिन बदिन हठती रही अन्तमें आपको निर्मल चारित्रकी रक्षा करनेके हेतुसिरोही (गोमवाड) राज्यमें वीर संवत् १३८७ विक्रम संवत् १९१८ में पृथक् हो ना पन्ना इस समय मुनिराजश्री पद्मसागरजी और गुणवन्तसागरजी आप महानुजाव के सहचारी हुवे.

सर्वज्ञ जत्तों ! आपको यह ज्ञात हो गया होगा कि यह महानुजाव कैसी निर्मल बुद्धिको धारण करनेवाले तथा किस प्रकार उत्तम चारित्र पालन करने वाले थे; मैं उस व्रातको दावेके साथ कह सकता हूँ कि जिन ज्ञव्यात्माओंने इन जब तारकके दर्शन किये हैं उन्होंने अपनी पवित्र जिह्वा द्वारा मुक्त कण्ठसे प्रशंसा की है तथा करते हैं अन्य हो, मुनि रत्न हों तो ऐसे ही हों

आप महानुजावने अपने निर्मल चारित्रकी आराधना करते हुवे उपरोक्त दोनो मुनिराजोंके साथ सिद्धके सट्टश मारवान, मेवान, गुजरात, काठियावान,

आपको यह बखूबी रोशन होगा कि इस ही दुष्टने कइ एक श्रुतकेवलियों (चतुर्दश पूर्वधारी) को नरक निगोटमें पकड़ोरे क्या यह कम आश्चर्य है ? इमही प्रकार बड़े २ योगीश्वर, ध्यानी महात्मा और ऋषीश्वरोंको चतुराष्ट लक्ष जीवा योनीके सन्मुख कर दिये सज्जनो ! क्रोडो उपाय क्यों न किये जाय किन्तु निदत्त और निराचित बगैर भोगे हरागिज नहीं छूट सकने देसिये किसी ज्ञानी महात्माका कथन है —

(श्लोक)

कृतः कर्महयोनास्ति । कल्पकोटी शतैरपि ।

अवश्य मेव जोगतव्य । कृतः कर्म शुभाशुभम् ॥ १ ॥

जावार्थः—कोटाऽनुकोटी कल्प पर्यन्त ज्यों न उपाय किया जाय किन्तु बधन किया हुवा कर्म कदापि नष्ट नहीं हो सकना, शुभाशुभ जो कुछ कि कर्म बधन कर चुके हैं उसे अवश्य ही भोगना पड़ेगा यह निर्विवाद विषय है

आपको उपरोक्त व्याख्यासे यह विज्ञान हो गया होगा कि दुर्जय कर्मराज किनना बलीष्ट है वम इसहीके प्रचण्ड प्रकोपसे आपको भी गस (मूर्छा) खाना पडा,

कच्चादि देशोंमें विचरकर सराहनीय धर्मोद्धार किया. एवम् परम पवित्र श्री शङ्ख-जय तीर्थराजकी जियारत (यात्रा) कर अपना मानव जन्म सफल किया तत्पश्चात् ग्रामानुग्राम विहाहकर क्रमशः फलवाँहि (फलोदी) जिला योधपुर-महस्थलमें पदार्पण किया. वहाँके श्री संघपर अगाध उपगार कर कृतकृत्य किये; जहां तक मेरा खयाल है मैं कह सकता हूं कि सबसे अधिक उपगार आपका इस ही क्षेत्रमें हुवा है मगर तदपि कितनेक कृतज्ञ लोग आपके उपगारकों विस्मृत हो रहे हैं तथा बहुतसे महानुभाव उनके पवित्र नामको बारंबार स्मरण कर अपनी आत्माका कल्याण करते हैं. गत वर्षमें मैंने जी उस स्थलपर चातुर्मास किया है मैं अपने अनुभवसे कह सकता हूं कि कइएक जन्वात्मा उनके नामों फुरते हुवे अपनी अलौकिक जक्तिका दृश्य दिखलाते थे.

इधरसे रूपश्रीजीकी शिष्या उद्योतश्रीजी अपने अखण्ड चरित्र प्रतिपालनके हेतु अपनी शिथिल संप्रदायसे पृथक् होकर वीर संवत् १३९१ विक्रम संवत् १९११ में फलोदी आयें और पूज्यपाद गुरुवर्य श्रीमान् मुखसागरजी महाराज से वासङ्केप लेकर अपना जन्मपवित्र किया; यद्यपिराजसागरजी महाराजकों गुरु मान चुके थे तदपि उनसे पृथक् होनेसे तथा उन्हकी शिथिलावस्था ममत्त्वकर तरणतारण गुरु इनही महानुभावोंको माने इसही लिये पुनरपि शुद्ध वा सङ्केप ग्रहण किया.

पूज्यपाद गुरुवर्यने तीन वर्षोंके बाद यानी वीर संवत् १३९४ विक्रम संवत् १९१४ में जगवन्दासकों दीक्षा देकर अपने निज शिष्य बनाये नाम जगवान् सागरजी रखवा गया. उधर उद्योतश्रीजीने दो वर्ष रहनेके बाद वीर संवत् १३९३ विक्रम संवत् १९१४ में श्राविका लक्ष्मीवाईकों दीक्षा देकर अपनी निज शिष्या बनाई. नाम लक्ष्मीश्रीजी रखवा गया. उस वख्त इस समुदायमें केवल तीन मुनिराज व तीन साध्वियोंजी निवास करते थे.

(नोट)

गुरुवर्यके फलोदी पदार्पणके पहिले ही पद्मसागरजी पृथक् हो गए थे तथा वीकानेर निवासिनी आप साहबकी हस्त दीक्षिता धनश्रीजी उद्योश्रीजीसे मिल गए लिहाजान मुनिराजवन साध्वियोंजी विद्यमान थे.

उमही समयसे श्रीमान् “सुखसागरजी महाराजके नामसे सिंघाम्ना” मशहूर हुवा उसके पेस्तर श्रीमान् कृमाकल्याणजीणी महाराजका सिंघाम्ना इस नामसे जाहिरया बीचमें कितनेक लोग राजसागरजी महाराजका जी सिंघाम्ना कहा करते थे मगर जबसे यह महानुजाव सिधिलावस्थाको पहुँचे और जबतक पूज्य गुरुवर्य श्रीमान् सुखसागरजी महाराजने पृथक् होकर अपना व गुणवन्तसागरजी बगेराका स्वप्न उद्योतश्रीजी आदिका उच्चार किया तबसे कृमाकल्याणजी महाराजके नामसे वासहेपन्नाला जाता है और सुखसागरजी महाराजके नामसे सिंघाम्ना कहा जाता है

अहाहा ! धन्य हो ऐसे नररत्नकों कि जिसने मूर्खता हुई जहाजको तिरा दी मैं इस बातको प्रकट रूपमें कह सकता हूँ कि हमारे समुदायमें इनके बराबर अबतक इस प्रकार कोई अतुल उपगारी नहीं हुवा नहीं ! नहीं !! इतनाही नहीं !!! किन्तु सर्व जैन समुदायमें निरुद्ध वसोंमें आसपास इन महानुजावके तुल्य इस प्रकार अवर्ण्य उपगार करनेवाला नहीं हुवा होगा यद्यपि उपगारी कइएक प्रकारके होते हैं मगर तदपि अवमर उपगारी सबसे बढा होता है और आप महानुजावने इसही बृहत् उपगारको किया है

मोक्ष! अजिलापियों ! आपके अन्दर ऐसे ही अलौकिक गुण जरे हुवे थे कि जिसका पार पाना मुश्किल है आप अपनी आत्माको सुखरूपी सागरमें निमग्न करते हुवे अनेक जन्य जीवोंको सुखी करते थे देखिये:—

॥ यथा नामस्तथा गुणाः ॥

सुखयतिजनान्तुत्तं सुखं-सुखानासागरः इति सुखसागरः इस पट्टीतत्पुरुष समाससे आपको विदित हो गया होगा कि वे महानुजाव कैसे गुण करके सुशोभित थे, सुख एक ऐसी चीज़ है कि जिसमें सर्वोत्तम पदार्थोंका समावेश हो जाता है

सज्जन पाठकवरों ! संपूर्ण नामके अंदर गुण होना कुछ आश्चर्य नहीं है किन्तु आपका एक १ अक्षर अगण्य दिव्य गुणोंसे इस प्रकार जरा हुवा है

कि जिसका लिखना हमारी लेखनीसे बाहिर रहे तदपि अपनी अल्प बुद्ध्या-
नुसार किञ्चित् लिख दिखाते हैः--

॥ गुरु जक्तिपर दोहरे ॥

सुखसागर गुरुरायके ॥ गुण गाऊं चित लाय ॥

अक्षर अक्षरके प्रति ॥ बहु गुण रह्या समाय ॥ १ ॥

सुः- सुमति सदा गुरु चितवसे ॥ कुमति जगे अति दूर ॥

त्रिकरण शुद्धि करते ॥ दिव्य ज्ञान ज्ञरपूर ॥ १ ॥

खः- खलके मित्र गुरुथे सदा ॥ करुणारस जंमार ॥

पर उपगारमें मग्नथे ॥ दर्शन निर्मल धार ॥ २ ॥

साः- सायरसम गंज्नीरगुरु ॥ चारित्र रत्न जंमार ॥

ब्रह्मचर्य गुरु धारते ॥ महिमा अपरंपार ॥ ३ ॥

गः- गगनसमा गुरु निर्मला ॥ रवि सम तेज प्रताप ॥

शशिसमान थी सौम्यता ॥ मणि सम शोभे आप ॥ ४ ॥

रः- रहस्य रङ्गमे जीलते ॥ आत्मध्यानमें लीन ॥

कर्म वृन्दोंको तोड़ते ॥ होके मोक्षाधीन ॥ ५ ॥

जीः- जीवाजीव विचारमें ॥ निपुण रहे गुरु राज ॥

षट् डव्यमें लीनथे ॥ बुद्धिवन्त महाराज ॥ ६ ॥

मः- महा डष्ट रिपु कामकों ॥ गिनमे दिया इटाय ॥

रतिकी मती बिगारु दी ॥ सूरवीर महाराय ॥ ७ ॥

हा:- हानीकारक कार्यकों ॥ नष्ट किये तत्काल ॥
दूर हटाया छुटकों ॥ मोह महा विकराल ॥ ८ ॥

रा - रागरहित वैराग्यमें ॥ रमण कियाथा नाथ ॥
मनवच काया दमन करी ॥ सुमति सखीके साथ ॥ ९ ॥

ज:- जस कीर्ति गुरु राजकी ॥ सकल विश्व विख्यात ॥
बाल शिष्य आनन्दको ॥ दर्शन दो साक्षात् ॥ १० ॥

आप वेही महानुभाव है कि जो बृहत्खरतर गङ्गाधिपति महा-महोपा-
ध्याय श्रीमान् कृमाकल्याणकृती महाराजके पंचम पद (पीढ़ी) पर होते हैं
जिसका कि किञ्चित् विवरण ग्रन्थके अन्तिम जागमें लिखेंगे

मैं इस बातकों अति खेदके साथ प्रकट करता हू कि आप महानुभावका
फोटो (तसवीर-ठगो-चित्र) मौजूद नहीं है वरना हम अपने ग्यासे नेत्रोंको
तृप्त कर अपनी आत्म प्रियुषि करते मगर सच्च है! जाग्य हीनोको ऐमे सत्पु-
रुषोंके दर्शनोंका सौजाग्य कैसे प्राप्त हो सकता है सज्जनो! इस अवसरमेंउनकी
मौम्य मूर्तिकों -यानमें लानेके लिये आपके शान्त स्वरूपके कितनेक चिन्ह
लिख दिखाता हू:-

॥ शान्तमुद्रा ॥

आप महानुभाव गन्दूमीरुद्र, गोल चहरा और मज्जोलेकदसें तथा माध्य-
स्थ शारीरिक स्थिति करके मुशोजित थे; एवम् ललाटाकृति अनुला पुण्याईसें
ऊलकती हुई अपनी अजीब शोभाकों प्रकट करती थी; शान्त रससे जरी हुई
आपके मुखकमलकी ठवी भव्य जनोंके चिचोंको मोहित करती थी आपके
दर्शनोंका यहा तक प्रभाव था कि जो प्राणी एक वस्तुकर लेता था वह वहासें
अलग होनेकी इत्ता ही नहीं करता कहां तक कहा जाय आपके अवर्णीय
गुण अपरम्पार है

॥ अपूर्व गुणोंका दिग्दर्शन ॥

सुद्ध जनो ! आपने ३६ वर्ष पर्यन्त अखण्ड चारित्र्य पालन कर शासनकी सेवा की. इस अवसरमें आप महोदधिने अनेकानेक उत्तम कार्य किये जिसकी कि व्याख्या हमारी बुद्धिसे बहार है तदपि यत्किञ्चित् उद्धृत कर पाठकोंकी सेवामें लिख दिखाते हैं:—

(सम्यग् ज्ञानकी महिना,)

(श्लोक)

यथाऽवस्थित तत्त्वानां । संक्षेपादि विस्तरेणवा ॥
योऽवबोधस्तमत्राहुः । सम्यग्ज्ञान मनोपिणः ॥ १ ॥

जावार्थः—संक्षेपसे या विस्तार पूर्वक तत्त्वोंका यथार्थ बोध होना उसमें विद्वान्लोग सम्यग् ज्ञान कहते हैं.

विवेचनः—यद्यपि ज्ञान शब्दका अर्थ जानना मात्र होता है तदपि सामान्य जानने और तात्त्विक जाननेमें जमीन आसमानका अन्तर है यह प्रकटतः विख्यात हैं—जहाँ तक प्राणी तात्त्विक विषयोंसे वञ्चित हैं वहाँ तक आत्माका उद्धार हरगिज नहीं हो सकता इस ही लिये तात्त्विक बोधके यथार्थ जानपनेको सम्यग् ज्ञान कहते हैं.

आप महानुभाव ज्ञानके ऐसे उत्तम रसिक थे कि प्रायः हमेशां सूत्र सिद्धान्त अवलोकन किया करते थे और उनके क्लिष्ट विषयोंको मनन कर अपनी आत्माको ज्ञान रसमें मग्न किया करते थे. निर्मल ज्ञानके यहांतक उत्प्लुत थे कि यदि कोई विषय समझमें नहीं आता तो इतना अगाध प्रयत्न करते कि जो प्रायः अवश्य सफलीभूत होता, देखिये:—

(दिव्य पुरुषार्थ.)

एक दिनका जिक्र है कि आप पञ्चमाङ्ग “श्री जगवती सूत्र” पढ़ रहे थे उसमें गाङ्गेय मुनिके क्लिष्ट जांगे समझमें नहीं आये तब आपने फलो-

धीमें रहे हुवे यतिवर्य रावत सुन्दरजी (जो कि आपके गाढ़ परिचित थे) को दरियाफत् किया किन्तु बहुत प्रयत्न करने पर जी उत्त समय उन्हें ययार्य समझमें नहीं आ सके इस अवस्थाको देख गुरुवर्यको गहरी चिन्तामें निमग्न होना पड़ा तदपि प्रयत्नसे पराब्मुख नहीं हुवे सच है ! उत्तम जनोका यही धर्म है देखिये नीतिकारने ठीक कहा हैः—

(श्लोक)

प्रारब्धतेन खलुविघ्नज्ञेयेन नीचैः ।

प्रारब्ध विघ्नविद्वता विरमतिमध्याः ॥

विघ्नैपुन. पुनरपि प्रतिहन्यमानाः ।

प्रारब्ध मुत्तमजना. न परित्यजन्ति ॥१॥

ज्ञानार्थः—अधम पुरुष विघ्नके जयमें कोई कार्य आरंभ नहीं करते तथा मध्यम पुरुष प्रारब्ध करने पर यदि कोई विघ्न उपस्थित हो तो उसे परित्याग कर देते हैं, किन्तु उत्तम पुरुष प्रारब्ध करनेके बाद बार १ उपमर्गसे डःखित होने पर जी कजी नहीं ठोमते

अब आपको रातदिन इस विषय कि चिन्ता होने लगी अखीर किननेक दिनके पश्चात् एक दिन आप शान्तता पूर्वक भर्मशालामें विराजमान थे उस समय अचानक उन हिष्ट जामोंकी श्रेणी आपके खयालमें प्राप्त हो गई फिर क्या पृथिवी चिन्ता देवीने प्रस्थान किया आप आनन्द रममें जीलने लग गये उसही वरत उपरोक्त यतिवर्यको बुलाकर अपने विचार प्रकृत किये आपके भंयोगके पहिले ही यतिवर्यको कुछ १ समयमें आ चुके थे किन्तु इस अवसरमें दोनोंकी एक सम्पत्ति होकर विजयको प्राप्त हुये कहनेका तात्पर्य यह है कि आप तत्त्वज्ञानमें असाधारण प्रयत्नशील पुरुष थे सद्गुरु ! आपने इस उत्तम अनुभवसे जन्म जीर्णोत्पन्नारके हेतु अनेक गोलचालादि सिद्धान्तोंमें उद्भूत किये देखियेः—

पद्मवणा सूत्रके प्रथम पदसे जीवाजीव राशीका विस्तार उद्धृत किया जो कि “श्री ज्ञानवर्धक जैन मित्र मण्डल” सैलाना-मालवाकी तर्फसे “जीवाजीव राशि प्रकाश” नामक ग्रन्थ वीर संवत् १४३७ विक्रम संवत् १८६७ ईस्वीसन् १९१० में प्रकाशित हो चुका है. जापाके कल्पसूत्रमे नवकार वगेराकी कथाओंका समावेश कर सरस ग्रन्थ बनाया. मुनिराजोंके लाजकारी अनेक सूत्रोंमेंसे उद्धृतकर १०० बोलोंकी रचना की. ६१ मार्गणाओंका जीवोंके ५६३ जेदोंके साथ वासठिया यन्त्र एवम् गुणस्थान, गत्यागति, समुच्चय, मूल हेतु, अल्प बहुत्व इत्यादि बहुतसे यन्त्रोंकी रचना की. एवम् अनेक दशक, अष्टक, सतक इत्यादि नाना प्रकारके गहन बोलाचालादि उद्धृत किये. इतना ही नहीं किन्तु ज्ञव्यात्माओंके आप यहां तक दितेन्तु ये कि शास्त्रमें अति आवश्यकीय पदार्थ जो देखते उनका शीघ्र ही नोट कर लेते थे. आपके हस्त-लिखित कई एक ठोटे १ अमूल्य परचे इस वरत जी दृष्टिगोचर होते हैं. मैं कह सकना हूं कि आपके समुदायमें रहे हुवे कई एक साधु बहुतसे गहन बोलचालादिसें परिचित हैं. यह आप महानुभावका ही विशाल प्रभाव है. कहाँ तक कहा जाय इस विषयमें आपका अकथनीय उपगार श्लाघनीय है.

(पाठन शैली)

आप महानुभाव ज्ञव्यात्माको पढ़ानेके अन्दर जी अगाध प्रयत्न करते थे, इस समुदायमें रहे हुवे कितनेक साधु, साध्वी जो कि आपके पढ़ाए हुवे हैं जैन शासनका निम्न विजय कर रहे हैं; तथा कई एक श्रावक, श्राविकाओंको उत्तम धर्म शिक्षा प्रदान की. आप हरएक चीज़को समझानेके वास्ते असाधारण प्रयत्न करते थे, यदि किसीको एकवार कहनेसे समझमें नहीं आता तो दो बार, चार बार, दश बार समझाते किन्तु दिल पर कच्ची ग्लानी नहीं लाते थे. जिन १ महानुभावोंने आपके चरणों की सेवा की है वे वेशक किसी कदर तत्त्वज्ञानसे परिचित हुवे हैं; आपकी पाठन शैली जगज्जनको मोहित करती थी हरएक चीज़ इस क्रमसे पढ़ाते थे कि बहुत दिन आवृत्ति न करने पर जी यकायक मनोमन्दिरसे पृथक् नहीं हो सकती थी. आप अनेक ज्ञव्यात्माओंको

उत्तम ज्ञान देकर रत्नचिन्तामणि अपने मानव जवको सफल कर गये कहीं तक कहा जाय आपका असाधारण उपगार जगत प्रशंनीय है.

(अमृत रसका आस्वादन)

आप जिस वख्त व्याख्यान देते थे उस वख्त वचनामृतसे श्रोतागणोंके चित्तोंमें ऐसा ज्ञान पड़ता था कि मानो साक्षात् बृहस्पति ही व्याख्यान देते हों; जिस वख्त आदिमें नमस्कार मन्त्रका उच्चारण करते थे उस वख्त सिंहरूप नादमें व्याख्यानगृहगूंज उठता था और समस्त श्रोता जन शान्तरसमें निमग्न हो जाते थे गाया या श्लोक इस प्रकार स्पष्ट फरमाते थे कि साधारण पुरुषको जी बहुतसा अर्थ प्रतीत हो जाता था आप जिस वख्त किसी विषयकी व्याख्या फरमाते उसमें ऐसे अपूर्व सरस शब्दोंकी लतामें ग्रंथित करते थे कि श्रोता जन एकाग्र चित्त होकर श्रवण करते; तथा अपनी अनिमेष दृष्टिसे गुरुवर्य के मुखकमलको अवलोकन करते थे आपका सुस्वर नामक कर्म अपनी अपूर्व शोजाको प्रकाशित करता था व्याख्यानमें प्रायः विशेषतः वैराग्यरस, शान्तरस और करुणारस अपनी अजीव शोजाका अलौकिक दृश्य दिखलाते थे; शेष रस जी आवश्यकता पर अपनी योग्य स्थिति प्रदर्शित करते थे आपकी अमृतमय देशनासे जव्यात्माओंके हृदय कमल इस प्रकार प्रफुल्लित हो जाते थे कि जैसे सूर्यके दिव्य प्रकाशसे कथल विकसित हो जाते हैं आपकी अमृतमय देशनाका पान कर जव्यात्मा आनन्द समुद्रमें गोता लगाने लग जाते थे; कहा तक कहा जाय आपकी व्याख्यान शैली जगज्जन प्रिय थी

आप महानुजाम निर्मल ज्ञानकी उत्तम उपासना कर उष्ट्र ज्ञानावर्णोंप कर्मकों निरुन्दन करते थे और ज्ञानी पुरुषके प्रति बने ही पूज्यज्ञावसे अवलोकन कर उत्तम मत्कार करते थे, कोई जी प्राणी शत्रुता या ईर्ष्या यश होकर यदि किसी ज्ञानी पुरुषको निन्दा करते तो वे शूल शदृश शस्त्र आपको असह्य दुःखसे दग्ध करते थे सच है ! उत्तम पुरुषोंका ऐसा ही स्वभाव होता है

सज्जनों ! ज्ञान बराबर जगत्रयमें कोई पदार्थ नहीं है ज्ञान कहो चाहे विद्या कहो एक ही अर्थ होता है जैमें धनको पाकर प्राणी खानपानादिके

सुखोंमें आनंदित होता है तैसें ही इस विद्याका विषय समझ लेना. मगर इतना अवश्य अन्तर है कि धनवाला तो इस ही जन्ममें साधारण सुखोंको प्राप्त करता है, जिसमें जी अनेक मुसीबतें उपस्थित रहती हैं; मगर ज्ञानवान्की तो विचित्र ही लीला है. यह धन जोधन जितना है सब विद्या रत्नके बगैर निस्सार है. अन्य प्राणीके विद्या समान कोई उत्तम अलंकार नहीं है. जोगोपजोगका सरस पन जी इस हीसे प्राप्त होता है. किसी नीतिकारने ठीक कहा है:—

(श्लोक)

विद्यानाम नरस्यरूपमधिकं पृच्छन्न गुप्तं धनं ।

विद्याजोग करीयशः सुखकरी विद्यागुरुणां गुरुः ॥

विद्याबंधुजनो विदेशगमने विद्यापरं देवतं ।

विद्याराजसु पूज्यते न तु धनं विद्याविहिनः पशुः ॥ १ ॥

जावार्थः—मनुष्योंका विशेष सुरूप एक विद्या ही है जो कि अन्तरात्मामें रहा हुवा गुप्त धन है. यह महा गुरुरूप विद्या, जोग, यश और सुखकों करनेवाली होती है. यही विद्या विदेश गमनमें चातृवत् साह्यकारी होती है और यही विद्या उत्कृष्ट देवपनेकों धारण की हुई है; अन्य धन राजा, महाराजा और चक्रवर्त्तिसें उसें विनय, बहु मानसें नहीं पूजे जाते कि जितनी विद्या महाराणी पूजी जाती है. और इस ही लिये विद्याके बगर प्राणी पशु तुल्य समझा जाता है. इस प्रकार इस जन्ममें साधारण सुखोंके अतिरिक्त परजन्ममें अचिरात् मोक्षपदकों प्राप्त कर सकता है देखिये कितने ९ गुण प्राप्त होते हैं:—

॥ दोहरे ॥

जगके सबहो धननमें । विद्या धन शिर मोर ॥

यह तो व्यय कीने बढे । घटत जात धन ओर ॥ १ ॥

याते तुमकों उचित है । मानो गुरुकी शीख ॥

गुणीजननपै माँगिये । विद्या धनकी जोख ॥ २ ॥

विनय बढाई देत है । जगमें आदरमान ॥

विद्या ही परलोकमें । देत मुक्तिको स्थान ॥ ३ ॥

केवल नीतिकार ही उसकी प्रशंसा करते हों ऐसा नहीं समझियेगा किन्तु तीर्थंकर, गणधर, श्रुत केरली और माहन आचार्योंने इसकी मुक्त कण्ठसे प्रशंसा की है देखिये महा महोपाध्याय श्रीमद्यशोविजयजी महाराज अपने नव पद पृजाके सप्तम ज्ञानपद पृजामें इस प्रकार फरमाते हैं:—

॥ गाथा ॥

प्रथम ज्ञानने पीठे अहिंसा । ओ सिद्धते जाख्यु ॥

ज्ञानने बढो ज्ञान मनिन्दो ज्ञानोपे शिव सुख चारख्युं. ज०सि०॥३१॥

सकल क्रियानुं मूल जे अरु तेहनं मूल जे कहिये ॥

तेह ज्ञान नित २ वन्दिजे॥ते विण कहो केम रहिये. ज०सि०॥३२॥

इससे आपको विज्ञात हो गया होगा कि ज्ञान एक केसी उत्तम पदार्थ है वे महानुभाव हम मोक्षदाता सम्यक् ज्ञानकी असाधारण आराधना करते थे तथा इसही प्रकार प्रयत्न कर अनेक जन्मात्माओंको आराधन करवाते थे तथा अनुमोदन तो एक अद्वितीय गुणोंसे ही विजृपित थी आपको उस निर्मल ज्ञानका ऐसा सुदृढ व्यसन था कि जैमें मनुष्योंको जोजनका व्यसन होता है कहा कत कहा जाय आप ज्ञानके एक अपूर्व जन्तु थे आपकी अवर्ण्य महिमा विश्व प्रशंसनीय है पाठकवरों! अरु मैं आपके दर्शन पदकी कुछ महिमा लिख दिखाता हूँ:—

॥ सम्यग् दर्शनका विवेचन ॥

रुचिर्जनोक्त तत्त्वेषु । सम्यक् श्रद्धान् मुच्यते ॥

जायतेतन्निर्गुण । गुरोरधि गमेनया ॥ १ ॥

जायार्थ —स्वाभाविक यानी स्वरीय मतीमें अथवा गुरु मन्त्रशास्त्र यानी परमोप-

कारी गुरु महाराजकी अतुल कृपासें जिन भगवान् प्रणीत तत्वों पर सुदृढ़ रुचि होना उसे सम्यक् श्रद्धा (दर्शन) कहते हैं.

विवेचनः—हमें ऋषभदेव प्रणीत या महावीर कथित शत्रों पर आग्रह हो ऐसा नहीं किन्तु जिन भगवान् के फरमानका ही हमारा मन्त्रव्य है. आपको यह भलीव प्रकार विज्ञात होगा की जिन किसे कहते हैं. देखियेः—

यः रागद्वेषादि शत्रुन् जयतिसजिनः—जिस महानुभावने रागद्वेषादि अशेष शत्रुओंको विजय कर डाला है उसे जिन कहते हैं—जो केवलज्ञान, केवलदर्शन और यथा ग्यात चारित्र गुण करके सुशोभित हैं तथा अनेक लब्धियों करके विभूषित हैं जो एक समय (कालका सबसे छोटा हिस्सा) में लोकालोकों हस्त रेखावन् देखते हैं. देखिये किसी महा-
ऽनुभावका कथन हैः—

“त्रैलोक्यं युगपत्कराम्बुज भुवन्मुक्तावदा लोकने” यानीवे जिन भगवान् करकमलमें लुटते हुवे मोतीके सदृश ऊर्ध्व, अधो और तिर्यग इन तीनों लोकोंको एक काला वच्छिन्न से अवलोकन करते हैं.

चाहे वे किसी नामसें मशहूर हो किन्तु एतावन, गुण विपिष्ट जो जिन भगवान् हैं उनहीके प्रणीत तत्वोंपर रुचीका होना उसे सम्यक् दर्शन कहते हैं.

आप महानुभाव सम्यक् दर्शन (श्रद्धा) में ऐसे सुदृढ़ थे कि यदि इन्द्र जी आकर क्षोजित करता तो आप किञ्चिदपि चलायमान नहीं हो सकते थे. कदाचित् सूर्य अपनी पूर्व दिशाकों ठोम दैव प्रयोगसें पश्चिम दिशामें उदय होने लग जाय, मेरु पर्वत कोई उपसर्गसें कम्पायमान हो जाय, समुद्र वायु प्रकोपसें अपनी मर्यादाकों परित्याग कर दे, पृथ्वी किसी कारणसें अपनी सह-
नशीलताकों ठोम रसातलमें चली जाय, अग्नि शीतलता धारण कर ले, जल उष्ण प्रकृति स्वीकृत कर ले, आकाशमें पुष्प खिलने लग जाय, खर सिंगकों धारण करने लग जाय, बन्ध्याके पुत्र प्रसूत हो जाय, महिला ढाढी, मूँठसे सुशोजित हो जाय, करतल पर बाल पैदा होने लग जाय, ऊसर जूमिमें नाज उत्पन्न हो जाय, सर्प अमृततरस देने लग जाय, जहर जीवन दशाको प्राप्त करा दे, स्त्री तीर्थकर गौत्र बांधने लग जाय. किन्तु वे महानुभाव अपने निर्मल दर्शनसें कच्ची चलायमान नहीं हो सकते थे. कहनेका तात्पर्य यह है कि उपरोक्त

बन्तुएँ विपरीत दशार्थें प्रवृत्त नहीं हो सकती हैं किन्तु कदाचित् देव प्रयोग या अन्य किसी कारणसे ऐसा हो जाय तदपि वे महानुभाव मनागपि चलायमान नहीं हो सकते थे; अर्थात् ऐसे सुदृढ थे कि जिसका विवरण हमारी लेखनीसे बहार है

श्रद्धा एक ऐसी पदार्थ है कि जिसमें मनुष्य अवश्य अपनी इष्टताओं प्राप्त करता है यावत्प्राणी सम्यग् दर्शन प्राप्त न कर ले तावत् अन्य धार्मिक क्रियाओंसे केवल निरस पुण्य प्रकृतिका उत्पन्न कर दृष्टिक सुख प्राप्त करता है किन्तु मोक्ष मार्गसे मदैव विमुक्त रहता है देखिये अज्ञान्य जीव अनेक कष्ट क्रिया कर यावत् नवग्रैविक देवलोकमें पहुचता है; किन्तु सम्यग् दर्शन न होनेसे चतुराष्ट लक्ष जीवा योनीके पाशसे पृथक् नहीं हो सकता, अर्थात् शिव-सुखसे हमेशा पराङ्मुख रहता है दर्शनसे भ्रष्ट हुआ मनुष्य मोक्षकों कर्त्ता प्राप्त नहीं कर सकता देखिये पूर्वाचार्य श्रीमान् रत्नशेखर सूरेश्वर अपनी बनाई हुई सम्बोध सचरीके ११ वे गायें में फरमाते हैं

॥ गाथा ॥

दंसणज्जठो ज्जठो दसण ज्जस्स नञ्चिनिव्वाण ॥

सिक्कन्ति चरणरहिआ दंसणरहिआ न सिक्कन्ति ॥१॥

भावार्थ.--दर्शन (सम्यक्त) से जष्ट हुआ प्राणी जष्ट समझा जाता है इसही लिये दर्शन भ्रष्टकों निर्वाण (मोक्ष) प्राप्त नहीं हो सकता चारित्र रहित प्राणी तो सिद्ध पदकों प्राप्त कर जी सकता है किन्तु दर्शन रहित प्राणी कर्त्ता शिव पद नहीं पासकता

उपरोक्त गाथासे आपको विज्ञात हो गया होगा कि दर्शन एक कैसी उत्तम पदार्थ है और इस ही पवित्र पदको आप शुश्रूष्य असाधारण रूपसे आराधन करने थे बात सम्यक्त ग्रहण करनेके हेतु शुद्ध देव, शुद्धगुरु और शुद्ध धर्मकी उपासना करने थे तथा निश्चय सम्यक्तत्त्वके हेतु कर्म चैतन्यके स्वरूपको जानकर आन्यन्तर तप, जप, ध्यान तथा योगाभ्यास एवम् शुद्ध

ज्ञानाद्वारा कर्म मलको पृथक् कर आत्मीय अनन्त ज्ञान, दर्शन, चारित्र और वीर्यको प्रकट (उज्ज्वल) करनेका अगाध प्रयत्न करने थे. जिस प्रकार आप इस सम्यग्-दर्शनकी आराधना करते थे उसही प्रकार ज्ञान्यात्माओंको जी उपदेश देकर आराधन करवाते थे तथा जो प्राणी कि सम्यग्दर्शनको धारण करनेवाले थे उनकी तर्फ पूज्य दृष्टि रखते हुवे असन्त प्रशंसा करते थे. कहाँ तक कहा जाय सम्यग् दर्शन पर आपका श्लाघनीय प्रेम था. प्रिय धर्माऽन्जि-लाषियों ! अब मैं आपको चारित्रकी कुछ महिमा लिख दिखाता हूँ:—

॥ सम्यग् चारित्रका विवरण ॥

(श्लोक)

सर्व सावद्य योगानां । सागश्चारित्र मिष्यते ।

कीर्तितं तदाहिं सादि । वृत्तजेदेन पञ्चधाः ॥ १ ॥

ज्ञावार्थः—समस्त पापोत्पादक योगोंके परित्यागको सम्यग् चारित्र कहते हैं वह अहिंसादि वृत्त भेद करके पांच प्रकारका फरमाया है.

विवेचनः—किसी मर्यादामें रहना या किसी क्रियामें गमन करना उसे चारित्र कहते हैं किन्तु मन, वचन और काया जितने ही सावद्य व्योपार हैं उन्हें सर्वथा त्याग-कर अहिंसादि पञ्च महा व्रत जिन्हकी व्याख्या हम पूर्वमें कर चुके हैं उसमें रमण करना उसे सम्यक् चारित्र कहते हैं.

आप महानुभाव ऐसे उत्तम प्रकारसे चारित्र पालन करते थे कि उनके मुआँफिक वर्त्तमानमें साधारण मुनिसँ पलना अति दुष्कर है.

शिष्य समुदाय होनेके पहिले आप जिस वस्त्र वस्त्रादिकोंकी प्रति लेहना करते थे, अपने उपयोगको स्थिरकर प्रत्येक वस्त्रोंको जलीजांति अवलोकन करते थे. वर्त्तमानमें कई एक साधु, साध्वी बिखरे हुवे वस्त्रको साफ कर जमा लेना ही प्रति लेहनकर्त्तव्य करते हैं; किन्तु महाशयो ! यदि वास्तविक विचारा

जाय तो जीव दयाके हेतु ही प्रतिलेहनाका फरमान है देखिय इस ही प्रतिलेहनासे एक मुनिराजको अवधि ज्ञान पैदा हो गया था:—

एक किसी नगरके अन्दर एक विद्वान आचार्य महाराज अपने बहुतसे मुनिराजकी संप्रदायसे विराजमान थे उनमेंसे एक सङ्गयोगी महात्मा जिनेश्वर कथित नियमानुसार जयणा पूर्वक प्रतिलेहना कर रहे थे; वाद जिस वस्तुकी काजे (कचरा) को यत्नापूर्वक ले रहे थे उस वस्तु कंयुवे वगेरा कइ एक ठोटे १ जानवर दृष्टिगोचर हुवे, देखते ही यह विचार किया कि अहा धन्य है ! जिनेश्वरके धर्मको और धन्य है उनके दिव्य ज्ञानको तथा धन्य है उनकी पवित्र वाणीको और धन्य है उनकी असाधारण उपगार बुद्धिको ! कि जिसने हम अथम जनोके वास्ते ऐसे उत्तम नियम बनाये वगेरा नाना प्रकारसे अनुमोदना करते हुवे दृढ़ श्रद्धासक्त हुये इस अवसरमें अवधि ज्ञानावर्णोपपटल दूर होकर आत्मोद्धारक अबाधिज्ञान प्राप्त हो गया इससे आपको मयम देव लोक की 'वजातक जलीजात' विज्ञात होता था; नाना प्रकारकी चित्र विचित्र लीलाको देखते थे कहनेका तात्पर्य यह है कि जयणा युक्त प्रतिलेहनाका इस प्रकार फल होता है

आप महानुभाव हरएक ठोटे वस्ते जन्तुओंकी यथार्थ जयणा करते हुवे दोनो दाइम नियमानुकूल दृष्टि प्रमार्जन तथा पूजन, प्रमार्जन उत्तम प्रकारसे कर जिनेश्वरकी शुद्ध आज्ञाको शिरोधार करते थे इसही प्रकार चारित्र्यकी रक्षा करनेवाली अष्ट प्रवचन माताको अत्युत्तम प्रकारसे पालन करते थे देखिये:—

(अष्ट प्रवचन माताका स्वरूप)

१ ईर्यामिति:—आप जिस वस्तु विहार करते थे या अन्य गमनागमनकी आवश्यकता होती थी उस वस्तु अन्य सर्व शान्तिक और मानसिक विषयोंको परित्यागकर ३। हाय अर्थात् गरीब प्रमाण जमीनको एकाग्र दृष्टि द्वारा अश्लोकन का गमन करते थे मज्जनो ! नीचे देखकर चलनेके अन्दर धार्मिक फलके अतिरिक्त बहुतमें शारीरिकादि गुण जी प्राप्त होते हैं देखिये किसी कविने ठीक कहा है:—

(दोहरा)

नीचे देखया गुण घणा । जीव जंतु टल जाय ॥

ठोकर की लागे नहीं । पत्नी वस्तु दिख जाय ॥ १ ॥

इसके सिवाय कङ्कूर, पत्थर, कांटे, शूल, जुरुट, गझो, सर्प, विच्छु. आदि जो की शरीरको वधा पहुंचानेवाले हैं उन सबसें रक्षा हो जाती है.

१ ज्ञापासमिति:—आप महानुभाव क्रोधसें, मानसें, मायासें, लोभसें, रागसें, द्वेषसें, भयसें और हास्यमें इन आठ कारणोंसें कर्कश, कठोर, ठेद-कारी, जेदकारी, मर्मकारी, मोषाकारी, सावध, और निश्चय इन आठ प्रकारकी ज्ञापाओंको अर्थात् पापकर्मोत्पादक सर्व अशुभ ज्ञापाओंको परित्यागकर प्रियकारी, हितकारी, आझाकारी सब वचन बोलते थे.

बुद्धि विचक्षुणों ! जिस वखन आप किसी ज्ञव्यात्मासें संज्ञापण करते थे ऐसी सुकोमल मधुर वाणी फरमाते थे कि जिससे संन्मुखी अमृतरस पानकर आनन्दित हो जाताथा. बोली एक ऐसी अमूल्य वस्तु है कि जिससें प्राणीके जातिकी, कुलकी, पटुताकी, गुणकी और स्वज्ञावकी परीक्षा करवा देती है इस लिये जो कुछ बोलना हो बहुत ही विचार कर बोलना चाहिये देखिये किसी बुद्धिवान्ने ठीक कहा है:—

(दोहरा)

वचन मौल अमोल है जो कबु बोले बोल ॥

पहिले हृदय विचार कर । पीठे बाहिर खोल ॥ १ ॥

ज्ञव्यज्ञान रसिकों ! सद्बचन एक ऐसी उत्तम पदार्थ है कि डःखसें दग्धित हुवे प्राणीको शान्तरसमें निमग्न कर देता है और कटुक शब्द सुखी

प्राणीकों भी वज्रके घाव सदृश डःखकों प्राप्त कर देता है देखिये किसी महा-
त्माका कथन हैः—

(दोहरा)

वचन वचनके आंतरे । वचनके हाथ न पांव ॥

वही वचन है औपधी । वही वचन है घाव ॥ १ ॥

पाठकवरों ! उसही जिह्वामें अमृत और उसही जिह्वामें जहर है जगज्जन
उसही जिह्वासे ईश्वर जजनकर अपनी आत्माका कल्याण करते हैं और उसही
जिह्वासे बंदूकलाम बोलकर दुर्गतिका बन्धन करते हैं; तब तो यह वही नजीर
समझना चाहिये कि जिस जिह्वासे पदरस जोजन किया जाता है उसही
जिह्वासे गोयाजिष्टा म्वाना है

मर्मचुस्त सज्जनो ! आपको योमे में ही विज्ञात हो गया होगा कि ज्ञापा-
समिति एक कैसी दिव्य गुणधारी माता है उसही लिये वे महानुज्ञाय इसकी
आज्ञा गिरोधारकर तनमनसे सेवा करते थे

१ = पर्वणासमितिः—आप ४१ दोष टालकर अरसविरस आहारपानी किया
करते थे रसनेंडियको डम प्रकार कञ्जमें कर रक्की थी कि वह अपनी लोलुप्य
दशाको कच्ची प्रकट नहीं कर सकती थी शरीरकी पुष्टिके हेतु तो सरस जोज-
नका जह् सर्वयाही असंजव या किन्तु व्याधि वगेरा अन्य अवश्यकीय अव-
स्थामें जी जट्वातक उन सकृत् इस मद्रोत्पादक शत्रुसे पृथक् रहते थे आप
वैमे ही मतोपी मुनि थे कि जैसे दशर्वकालिकके प्रथम अययनकी मझायमें
फगमाया है, तथयाः—

(गाथा)

मुनिवर मधुकर समकह्या । नहीं हैं राग नहीं छेप ॥

लाघो ज्ञानो देवे देहने । अणलाघे संतोष ॥ धर्म ॥ १ ॥

४ आदानजंमत्त निक्षेपणासमितिः—आप महानुज्ञाव किसी जांडोप-
गरणकों जब ग्रहण करते थे अथवा रखते थे तब वडेही उपयोगके साथ तथा
जयणा पूर्वक काममें लाते थे. दिनको दृष्टि प्रमार्जन व रातको पूंजन प्रमार्जन
कर हरएक पदार्थ उपयोगमें लाते थे अपनी समस्त उपधी जिस धर्मशालामें
निवास करते उसही स्थानमें रखते थे किन्तु अन्य स्थानपर कुछ ज़ी नर
रखते थे; अर्थात् हरएक कार्य सनुपयोग व मजयणा करते थे.

५ पारिष्ठापनिकासमितिः—कोई ज़ी पदार्थ जो कि परठने योग्य होती
उसमें शास्त्रोक्त रीतिसमें निर्वच स्थानमें परठते थे.

॥ घोर शत्रु मनकी दुर्जयता ॥

६ मनोगुप्तिः—सम, समारंज और आरंज करके मनकों स्वाधीन करते
थे. सज्जनो ! मन एक बगेर लगामका ऐसा अश्व है कि जिसका वेग पवनसें
ज़ी बहुत तेज है. देखियेः—क्षणमें मनुष्य, क्षणमें तिर्यच, क्षणमें नरक, क्षणमें
स्वर्ग, क्षणमें मोक्षादि चौ तर्फ घूमा करता है किन्तु किसी जगह स्थिररहकर
आत्म कल्याण नहीं करता. वरु १ ज्ञानी ध्यानी, तपस्वी, चारित्र्यी योगीश्वर
और महर्षियोंको अपने आचरणोंसे पतित कर क्षणमें नरक निगोदके सन्मुख
कर देता है. देखिये योगिराज श्री आनन्दघनजी महाराज अपने बनाये हुवे
चतुर्विंशति जिन स्तवन संग्रहके सत्तरवें स्तवनमें फरमाने हैं किः—

(गाथा)

मुगति तणा अज्जिलापी तपिया । ज्ञानने ध्यान अज्यासे ॥
वयरीमुकाइ एहवुं चिते । नाखे अवले पासे हो ॥ कुं० ॥३॥

जावार्थः—यह मन महा डष्ट शत्रु है कारण कि मोक्षाज्जिलापी तपस्वी
जो कि इसको साधन करनेके हेतु निज गुण जाननेके वास्ते ज्ञानाज्यास कर
रहे हैं तथा निज गुण प्रकट कर उसमें रमण करनेके वास्ते ध्यानाज्यास कर

रहे हैं उन महान् मुनिराजोंको कर्मरूपी फासमें गेर देता है देखिये प्रश्नचन्द् राजर्षिको कृष्णजरमें सप्तम नरकके दलियोंका संग्रह करवा दिया और थोड़ी ही देर बाद जब सीधो गतिको अवधारण किया तब शीघ्र ही केवल ज्ञान प्राप्त करवा दिया उस लिये वीर पुत्रों ! उस डष्ट शत्रुको किसी प्रकार शनैः शनैः अपने कब्जमें करनेका प्रयास करना चाहिये; जब तक यह मन पराजय न होगा सर्व क्रियाएँ केवल निरस पुण्य प्रकृतिये (जो कि कृष्णिक सुखको देनेवाली हैं) का संग्रह करवाती हैं : उस एकको साधनेके वास्ते हजारों उपचार करने पड़ते हैं देखिये:—

ज्ञान, दर्शन और चारित्र्याशयन, दान, श्रियल, तप, जावना, योगाज्यास और ध्यान क्रिया वगैरा जो कि अनेक कष्ट सहनकर साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका करते हैं वे केवल एक इसही घोर शत्रुको वशमें करनेका हेतु है एक इस मनके ही न सधनेसे ठार परलीपनरूप सर्व निष्फल हैं और यदि यह स्वाधीन कर लिया जाय तो सर्व क्रियाएँ समुद्रके जलके मुआफिक सार्यक हैं देखिये वेही पूर्वोक्त महानुभाव अपने उसही स्तवनके आठवें गायकके अन्दर फरमाते हैं:—

॥ गाथा ॥

मन साध्यु तेषां सघलुं साध्युं । एह वात नहीं खोटी ॥
 एम कहे साध्युं ते नवी मानु । एकही वात ठे मोटी हो ॥ कृष्ण॥७॥

जावार्थ:—हे जिनेश्वर देव ! चंचलताको परित्याग करके एकाग्रतासे जिस मनुष्यने मनको वशीकृत किया है उसने तप, जप, ध्यान, संयमादि सर्व कार्य साधन कर लिये कारण कि साधनका अन्तिम ज्ञान नहीं है इस लिये जिसने मन वशमें कर लिया उसने आत्मिक ठगुराईका मल सिद्ध कर लिया है यह बात सर्वथा सत्य है कदाचित्त कोई निरर्थक अपनी जिह्वासे कह देवे कि मेने मनको साधन कर लिया तो यह बात विलकुल अमान्य है क्योंकि मन एक अति ही दुर्जय शत्रु है ।

मान्यवरों ! आपको उपरोक्त महानुज्ञावके दो गाथाओंसे प्रतीत हो गया होगा कि मन एक कैसा डर्जय शत्रु है इसको साधन करनेके वास्ते अनेक प्रयोग हैं। उनमेंसे एक सहज प्रयोग यह जी है कि जिस वख्त आदमी कोई जी कार्य करे उस वख्त यह अवश्य शोचे कि “ Whether it is right or wrong ” अर्थात् क्या यह सही है या गलत ! ऐसा विचारनेसे अवश्य बहुतसे हानिकारक कार्य दूर हो जाते हैं प्रत्येक कार्यका यह धर्म है कि विचारनेसे अति शीघ्र, सहज और निराबाध पूर्वक हो जाता है और बगैरे विचारनेसे “ घरहाण जगत हाँसी ” होती है। देखिये कहाः—

॥ दोहरा ॥

विना विचारे जो करे । सो पीठे पठताय ॥

काम विगारे आपनो ॥ जगमें होत हँसाय ॥ १ ॥

द्वितीय यौगिक क्रियानुसार यह जी प्रयोग है कि जिस प्रकार एक साहू-कारने बन्दरको वशीभूत कियाथा उसही प्रकार मनको स्वाधीन करना चाहिये, जानवरोंमें सबसे अधिक चंचल वशेतान बन्दर ही माना जाता है उसमें जी यदि वह सुरा पानकर ले तो फिर चंचलताका क्या ठिकाना और इस अवस्थामें यदि उसको विच्छु काट खाय तब तो एक अद्वितीय ही चंचलता प्रकट हो जाती है कहनेका तात्पर्य यह है कि मदिराका पान किया हुवा और विच्छु काटा हुवा जिस प्रकार बन्दर चंचल होता है इसही प्रकार इससे कई गुने अधिक मनरूपी मर्कट चंचल व शेतान होता हैः देखिये उस सेठने इस प्रकार वानरको स्वाधीन किया थाः—

॥ अमृत दृष्टान्त ॥

किसी एक ग्रामके अन्दर एक गरीब ब्राह्मण रहता था। उसके एक स्त्री व एक पुत्री थी वह इस प्रकार निर्धन था कि सुबहको मांगकर लाता और सुबह अपगा गुजरान करता एवम् शामको मांगकर लाता और शामका गुजरान करता; इस प्रकार अपना काल निर्गमन करता था।

उसने एक ऐसा बतीरा अखितयार कर रक्का था कि जिस बख्त स्य-
 णिमल जूमि जाता उम बख्त अपनी शौच क्रिया करनेके पश्चात् जलपात्रमें
 जो कुच्छ जल शेष रह जाता वह हमेशा एक बटवृद्धमें गेर दिया करता था
 इस प्रकार कितनाक काल निर्गमन हुवा अब उसकी लम्बी युवावस्याकों
 प्राप्त हुई, इस हालतमें उस ब्राह्मणको उसके विवाहकी चिन्ता होने लगी
 किन्तु निर्धन होनेसे शिवाय दिलगिरीके कुच्छ जी नही मूझता था ऐसे डाख
 की हालतमें एक दिन उस दरख्तमें पानी डालना जूल गया उसही बख्त
 उसमेंसे एक पिशाच प्रकट हुवा और उस ब्राह्मणपर क्रोधित होकर कहने
 लगा कि अरे डष्ट ब्रह्मण ! तूने मुझको आज जल क्यों न पिलाया ? मैं आज
 तुझे मारे बगेरे हर्गिज नही ठोमूंगा यह जयकर शब्द सुन वह ब्राह्मण बोला
 रे अधम ! कृतघ्न !! डराचारी !!! तू बड़ाही डष्ट है कि अपनेही स्वार्थमें
 समझता है किन्तु मेरी लडकीके विवाह संवधि असीम डाखका कुञ्ज जी
 विचार नही करता

यह सुन वह भेत अपने डष्ट शब्दोंका पश्चात्ताप कर उस ब्राह्मण पर
 अत्यन्त प्रसन्न हुवा और कहने लगा कि हे जड़ ! तू किसी प्रकारकी चिन्ता
 मत कर मैं तेरे सभे कार्यकों उत्तम प्रकारसे कर दूंगा तथा तेरे दरिद्रताकों
 दूर कर श्रीमन्त बना दूंगा देख मैं बानर रूप हो जाता हूं मेरे गलेमें यह सु-
 वर्ण जजीर माल किसी एक बड़े शहरमें ले चल वहा पर किसी धनवान्को
 सवालह रूपे में मुझको बेच देना, यह सुन वह ब्राह्मण हर्षित होकर उस
 बानर रूप पिशाचको लेकर मकानपर पहुँचा और अपनी स्त्रीको सर्व विषय
 समझाकर वहासे रवाना हुवा; दरकूचदर मुकाम करता हुवा क्रमशः फलकत्ते
 सदृश एक विशाल शहरमें पहुँचा, वहा पर धूमता एक किसी क्रोमपतिके
 यहापर जा पहुँचा वहा पर श्रेष्ठी, ब्राह्मण और बानर के इस प्रकार प्रशो-
 चर हुवेः—

ब्राह्मणः—हे श्रेष्ठीवर्य ! मैं उस कपिकों बेचना चाहता हूँ दया कर योग्य
 मूल्य प्रदान कीजियेगा

श्रेष्ठीः—जाई ब्राह्मण ! इसका क्या मूल्य लेगा ?

ब्राह्मणः—दयानिधे ! सवालक मुझिका लेऊंगा.

श्रेष्ठीः—सद्गुणी ब्राह्मण ! इसमें ऐसा क्या अद्भुत गुण है कि जिससे इतनी अधिक किम्मत लेना चाहता है ?

ब्राह्मणः—हे परोपकारी ! तुम अपनी डकानका जो कुछ काम बतलाओगे उससे तार (Telegraph) से जी अति शीघ्र कर देगा तुमारे सैकड़ों नोकरोंका खर्च बचा देगा; अर्थात् सालानामें लाखों रुपोंका काम करेगा.

श्रेष्ठीः—चिठी देकर-अठा तो जाऊ खजानेसे रुपये लेलो और वानरको यहां बांध दो.

वानरः—अजी शेर साहब ! जरा मेरी जी प्रार्थना सुनियेः—

श्रेष्ठीः—जाई कपि सानन्द कह सुनाऊ.

वानरः—श्रेष्ठी शिरोमणे ! इसमें शर्त यह है कि मैं एक मिनिट जी बेकार नहीं रहूंगा अगर मुझे कोई कार्य न बतलाऊगे तो उसही वख्त तुमें ज़ह्ण कर जाऊंगा.

श्रेष्ठीः—दिलमें सोचकर “ अपने सैकड़ों डकाने हैं एक कपि कितनाक काम कर सकेगा.” जाई वानर ! मुझको तेरा कयन सहर्ष स्वीकार है.

इस प्रकार वार्त्तालाप हुई और उस वानरको सवालाख रुपयेमें खरीद कर अनेकानेक काम करवात हैं. उधर वह ब्राह्मण खजानचीसे रुपये लेकर सहर्ष अपने मकान पर पहुंचा और अपनी कन्याकी खूब जलुशसे शादी कर सानन्द निवास करने लगा.

उधर वह कपि हजारों कोसोंका काम मिएटोंके अन्दर करने लगा करीब एक वर्षमें लाखों रुपयेका नफा कर दिया. वह श्रेष्ठी इस प्रकार वानरको कार्य करते हुवे देखकर दिलमें विचार करने लगाकि यह तो वर्षोंके कार्यको

मिएटोके अन्दर कर देता है न मालूम कोई देव है या राक्षस है या विद्या-
घर है या अन्य कोई लब्धीवन्त है कि जिससे इस प्रकार कार्य करता है, अब
मैं इसको क्या कार्य बतलाऊंगा और किस प्रकार यह जीवन पूरा होगा ऐसी
चिन्ता करही रहा था कि इतनेमें वह बानर आकर बोला कि शेर साहब !
मैं सर्व कार्य कर चुका हूं अब कोई नूतन कार्य मुझे बतलाइयेगा वरना मैं
आपको अवश्य जकण कर जाऊंगा ।

यह सुन वह श्रेष्ठी अधिक डःखी हो गया और नाना प्रकारसे सकृष्य
विकृष्य करता हुआ उपाय मोधता है किन्तु कुछ जी योग्य व्यवस्था न वि-
चार सका, अर्ध दिनवटिन शारीरिक अवस्था बिगड़ती जाती है जोजन जी
सम्यक् प्रकारसे नहीं करता, इस उपमावस्याको देखकर उसकी सुखशीला
पुत्रीने पूछा कि हे पिताजी ! आज कल आपकी व्यवस्था इस प्रकार क्यों
कर हो रही है यह सुन पिता बोला कि पुत्रि मैं कुछ जी नहीं कह सकता हूं
मेरा किया हुआ सुझको ही जुगतना पड़ेगा इस समय पिताके गदग नेन जर
आये अश्रुपात बहने लगे खेदरसमें जरा हुआ यह कहता है:-

(दोहरा)

कौन सुने किसको कहूं । सुने तो समझे नाँय ॥

कहेवो सुनवो नमऊवो । मनहीको मनमोँय ॥१॥

ऐसे टिलगिरीके शब्द सुनकर वह लम्की पुनरपि मार्यना करने लगी
कि हे तात ! आप अपने डःखको स्पष्टतया कथन कीजियेगा मैं अवश्य
उसका उपाय बतलाऊंगी ऐसे साहसिक शब्द सुन उस पिताने अपना सर्व
वृत्तान्त कह सुनाया तनुजाने यह सुन ७४ घण्टेके बाद उत्तर देनेकी मार्यना
की अब वह शेर महर्षि खानपान करने लगा फिर वह लडकी अपने षट्-
देवके स्मरणमें तल्लीन हुई म्प्रमं षट्देव और लम्कीके आपुममें उस प्रकार
मश्रोत्तर दूये:-

षट्देवः—हे सुपुत्रि ! मोती है या जगती है ?

पुत्रीः—हे स्वामिन ! जगतमें कौन ऐसा है कि जो दुःखमें निष्ठावश होता हो.

शृदेवः—अच्छा तो कह तूने मुझे क्यों स्मरण किया है ?

पुत्रीः—क्या नाथ ! आपसें जी ठीपी हुई बात है ? आप अपने पवित्र अवधि ज्ञानसें जान सकते हैं.

शृदेवः—उस वानरका संपूर्ण वृत्तान्त सुनाकर कहा ले सुता ! इसका यही उपाय है कि जिस वख्त कोई कार्य हो उसमें करवा लेना और शेष टाइममें ऐसा करना कि मैदानमें एक लम्बा स्तम्भ आरोपण कर उसपर उसे चढ़ने उतरनेका कार्य बतला देना.

जब कि दूसरा दिन हुआ उस लम्बीने अपने पिताको सादर नमस्कार कर गत रात्रिके स्वप्नकी सर्व व्याख्या कह मुनाई और शृदेवका बतलाया हुआ वह उत्तम प्रयत्न जी निवेदन किया. यह सुन उसका पिता अति हर्षित होकर नाना प्रकारकी उत्तमोत्तम आशिर्वादे देने लगा और उसही दिन अपनी डकान पर जाकर उस स्थंजकी व्यवस्था करवाई इसही अवसरमें वह वानर आकर शेरसें बोला कि रे असखवादी ! तूने मुझसें क्या वायदा किया था आज दो दिवस हुवे हैं जिसमें मुझको बिलकुल बराबर काम नहीं बतलाया जाता है तू मुझको अति शीघ्र कोई कार्य बतला वरना तूझे इसही वख्त जेद्दण कर जाऊंगा.

यह सुन वह श्रेष्ठी पराक्रम पूर्वक बोला रे डष्ट वानर ! क्या तू कोई प्रकारका मगरूर करता होगा. जान उस सन्मुखी स्तम्भके ऊपर चढ़कर उतरो वानर इस कर्त्तव्यों कर पुनरपि कहने लगा कि अब मैं क्या काम करूं ? तब शेरने वही कार्य करनेका हुकुम दिया इस प्रकार कई एकवार चढ़ने उतरनेका कार्य किया अखीरमें शेरने य हुकुम दिया कि जब हम कोई कार्य बतलावें उसे करना चाहिये और शेष टाइममें इस स्थंभ पर चढ़ने उतरनेका काम हमेशा करते रहना इस प्रकार कितनेक दिन तक यह कार्य किया

अन्तिममें हेराने होकर उसे वानरने अपना निज स्वरूप प्रकटकर शेरोंको सर्व वृत्तान्त कह सुनाया शेरने अति प्रसन्न होकर उसे विमुक्त किया ।

तत्त्वाऽजिलापियों ! आपको इस दृष्टान्तमें विदित हो गया होगा कि उस बुद्धिमती लकड़ीके प्रजावसे सेठने उस छष्ट वानरको किस प्रकार बशी-भूत किया कहनेका तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार उस मर्कटसे बख्त जख्खत कार्य लेते थे बाद हमेशा चढ़ने उतरनेकाही कार्य करवाते थे उसही प्रकार इस मनरूपी मर्कटसे उत्तम व्यावहारिक कार्य तथा धार्मिक क्रियाओं करवाना चाहिये और शेष टाईमें आसोआसके नियमानुसूल समान्यतया “अरिहन्त” के जापमें तथा विशेषतया “मोऽहम् ” पदके जापमें संलग्न करना चाहिये विशेष स्वरूप गुरु गम्यतासे जानना सक्कनो ! वे मदानुजाव इस प्रकार मनो-गुप्तिमें रमण करते थे ।

(मौनानन्द)

१ वचनगुप्तिः—आपत्री सभ, समारम्भ और आरम्भ करके वचनको स्वाधीन करते थे; हमेशा मौनत्रतको अग्नितयार करते थे मौनसे केवल यह मत समझियेगा कि जापा वर्गणाको सर्वथा रोकते थे किन्तु “मुनेर्जाव कर्मवा इति मौनम्” ऐसा अर्थ समझियेगा आप जिस बख्त वाग्विलास करते थे वही ही गम्भीरतासे तथा सदाचारपूर्वक क्रिया करते थे और आवश्यकीय अवसरपर सर्वथा मौन जो रखते थे

अनुजवी महाशयों ! मौन एक ऐसी उत्तम पदार्थ है कि जो हमारे आत्मस्वरूपको प्रकट कर देती है देखिये तप, जप, ध्यान और योगिक क्रियाओंमें जो इसको परिपूर्ण मत्कार मिला है इसको स्वीकार किये विद्वान् मोक्ष मार्ग उमाध्य है नीतिकारने भी लिखा है कि “मौनसर्वार्थ माधनम्” इस अमृत्य पदमें यह स्पष्टतया प्रकट है कि उच्च शिखरपर पहुचानेवाला मौन एक उन्कष्ट माधन है

मदानुजावों ! जगद्गुरु श्रीगुरुदेव जी दीक्षा लेनेके बाद यह अजि-

ग्रह धारण करते हैं कि जब तक मुझे केवलज्ञान न हो मौनमें रहकर ध्यानादि उत्तम क्रियाओंका आचारण करूंगा. इतनाही नहीं किन्तु केवलज्ञान प्राप्त होनेके पश्चात् भी मौनके बगैर परमपद (मोक्ष) को प्राप्त नहीं कर सकते देखिये मोक्षगामी चौदह वै गुणस्थानपर जाकर शैलेसीकरण करते हैं; अर्थात् मन, वचन और कायाको मेरु पर्वतके सदृश अचल करते हैं पश्चात् शिवपुरमें प्राप्त हो जाते हैं.

कई एक ज्ञव्यात्मा ऐसी मौन रखते हैं कि सावद्य ज्ञाषाको परित्याग कर निर्वच्य वचन बोलते हैं यह जघन्य मौन कही जाती है तथा कई एक लोग वचन कलापको रोककर हूँकारादि शब्दोंसे तथा हस्त, चरण, मुख, नेत्र और मस्तक वगैरासे अङ्ग चेष्टा करते हैं एवम् पत्रादिकों पर लिखकर अपने अग्नि-प्रायको सूचित करते हैं यह मध्यम मौन कही जाती है और कई एक आत्मार्या ज्ञव्यात्मा उपरोक्त समस्त कर्त्तव्योंको परित्याग कर आत्मीय गुणोंमें निमग्न हो जाते हैं. यह उत्कृष्ट मौन कही जाती है.

पाठकवरों ! वे पूज्य गुरुवर्य जघन्य मौन तो प्रायः हमेशाही पालन करते थे और उत्कृष्ट मौन समयानुसार ध्यानावस्थामें किया करते थे. इस प्रकार वचन गुप्तिकी सादर सेवा कर अपने मानव जवकों सफल करते थे.

(कायोत्सर्गकी सनिष्टता)

१ कायगुप्तिः—सम, समारम्भ और आरम्भ करके कायाको वशीभूत करते थे; अर्थात् कायोत्सर्ग ऐसी उत्तम रीतिसे करते थे कि कैसा भी उपसर्ग क्यों न हो जाय किन्तु विलकुल चलायमान नहीं हो सकते थे. जिस वस्तु आप पर्यङ्कासन (पद्मासन) करते थे उस समय दोनों हाथोंको योग्य स्थितिसे रख ठुड्डीको वक्षस्थलपर लगा देते थे तथा जिह्वाको तालु स्थान पर लगाकर दृष्टिको नासिकाके अग्र जाग पर स्थिर करके ध्यानारूढ़ हो जाते थे और कायासे इस प्रकार विमुक्त होते थे कि उस नासिकाके अग्र जाग पर सर्व शरीरको ध्यानमें लाकर प्रथम ही प्रथम चरणोंकी तर्फसे तत्पश्चात्

जानुसैं, जह्वासैं, कटिसैं, करकमलसैं, जुजाओसैं, हृदयसैं, 'वहस्यलसैं,' क-
एठमे, मुखसैं, नेत्रोंमें, ललाटसैं, मस्तकसैं और शिखासैं इस प्रकार अङ्गे
प्रत्येक अवयवसे क्रमशः दृष्टि हटाते हुवे अन्तमें मैं अशरीरी हूँ ऐसा विचार
आत्मध्यानमें लीन हो जाते थे उस समय कितनाही जयद्वार उपसर्ग क्यों न
आक्रमण करता हो किन्तु आप महानुभाव विलकुल होजित नहीं होते थे

वर्त्तमानमें कितनेक आत्मध्यानियोंको ठोमकर काउसग ध्यानकी एक
विलक्षण ही दशा प्रतीत होती है कऽ एक परोको हिलाते हैं, कऽ एक अपने
हाथोंको चंचलता पग कर देते हैं, कऽ एक दृष्टि विपर्यास करते हुवे नजर
आते हैं, कऽ एक मन्त्रकों हस्तिकी घूमत चालपर घुमाते हैं, कऽ एक
ओष्ठ फुराते हुवे विज्ञात होते हैं और कऽ एक जोरसे नमस्कार मन्त्रका
जाप करते हुवे निकट वारि ज्योत्स्नाओंको बाधा पहुंचाते हैं; यहा तक कि
शरीरके प्रत्येक अवयवका नियम चष्ट कर क्रियामें प्रवृत्त होते हैं सज्जनों !
इस हास्यावस्थामें उपसर्ग सहनका तां विचार ही क्या ? किन्तु वे बेतरुप
क्रियाको करनेवाले लोग एक साधारण जन्तु मञ्जरसैं जी चलायमान हो जाते
हैं, मगर ज्यो आत्मार्या लोग प्राणान्त कष्ट होनेपर जी काउसग ध्यानसैं
रुदापि चलायमान नहीं होते थे देखिये:-

परम परमात्मा श्री पार्श्वनाथ स्वामी जिस वरत काउसग ध्यानमें तब
थे उस समय कबठ तापसका जीव मेघमाजी देवताने घोर अन्धकार कर मू-
मलपार दृष्टि की यहा तककी राहश कोश पर्यन्त सर्व अटवी जलमय कर
दी और उन तीर्थकर देवके नासिका पर्यन्त जल पहुंच गया था मगर तो
जी वे मनागपि होजित न हुवे इपर शासनाधीश्वर श्रीमन्महावीर परमात्मा
कों कायोन्मर्गमें शय्यापालक के जीवने कर्णों में लोहके तीक्ष्ण कीलेपिरो
दिये, गवालियेने पेरों पर खीर पकाई, चाण्डकोशिया नागने अपने फणका
ऊपट मारा और जी मगमाटि देवोंने नाना प्रकारके जयद्वार उपसर्ग किये
लेकिन वे जगद्गुरु किञ्चित्पि चलायमान न हुवे इस प्रकार अनेक तीर्थकर
गणपर, आचार्य, उपाध्याय और माधुनोने कायोन्मर्गमें स्थित रहकर
अपनी आत्माका रक्षायण किया मिय सज्जनों ! उपरोक्त गीयानुसार वे पुरुष

गुरुवर्य जी यथाशक्ति पूर्वाचार्योंका अनुकरण करते हुवे इस प्रकार काय-
गुप्ति मातेश्वरीकी यथार्थ सेवा बजाकर स्वकीय आत्माकों निर्मल करते थे.

आत्माऽजिलाषियों ! चारित्र एक ऐसी उत्तम पदार्थ है कि जिसके स-
मान अन्य साध्यकारी कोई वस्तु प्रतीत नहीं होती; सर्व रत्नोंमें यह शिरो-
मणि रत्न है; इसें ग्रहण करनेसे जव्यात्मा अपनी मनोकामनाकी साफल्यता
करता है; देखिये किसी कवीश्वरने ठीक कहा है:—

(श्लोक)

चारित्र रत्नान्न परं हि रत्नं । चारित्रवित्तान्न परं हिवित्तम् ॥
चारित्र लाजान्नपरोहि लाज—श्चारित्र योगान्नपरोहियोगः ॥१॥

जावार्थ:—इस जगत्में चारित्रके बराबर कोई अन्य रत्न नहीं है. चा-
रित्रके बराबर कोई इव्य नहीं है तथा चारित्रके समान कोई अन्य लाज नहीं
है एवम् चारित्रके तुल्य कोई योग नहीं है. यह वही चारित्र है कि जो यदि
एक जी दिन उदयमें आजाय तो इस प्रकार उत्तम फल प्राप्त करा देता है:

(श्लोक)

दीक्षा गृहीता दिनमेकमेव । येनोग्रचित्तेन शिवं सयाति ॥
नतत्कदाचिदवश्यमेव । वैमानिकः स्यान्निदशः प्रधान ॥ १ ॥

जावार्थ:—यदि प्राणी एक दिन ही दीक्षा ग्रहण कर ले और उग्र
चित्तसे उसें पालन करे तो अचिरात् मोक्षपदकों प्राप्त करता है. कदाचित्
वैसा उत्कृष्ट आचरण न कर सके तो जी साधारण क्रियाओंसे अवश्य
वैमानिक देवलोकमें प्रधान पद प्राप्त करता है.

नहीं इतनाही नहीं किन्तु यह चारित्र रत्न सम्यग्ज्ञान, दर्शनकों
सफल करता है. आप यह खूब समझ सकते हैं कि मर्यादा बगैर जितने क-

र्त्तव्य हैं वे सर्व निष्फल हैं और इसही लिये ज्ञान, दर्शनका सारज्ञत चारित्र वतलाया है देखिये खरतरगव गगनाम्बरमणि नवाङ्गी टीकाकार श्रीअज्ञयदेव सूरेश्वर अपनी बनाई हुई आगम अष्टोत्तरीके ८९ वें गायमें इस प्रकार फरमाते हैं:—

(गाथा)

नाणं नरस्तसारं । सार नाणस्त शुद्ध सम्मत्तं ॥

सम्मत्तसार चरण । सारं चरणस्त निष्वाणं ॥८९॥

जावार्थः—मनुष्य जबका सार ज्ञान है और ज्ञानका सार शुद्ध सम्यक्त है तथा शुद्ध सम्यक्तका सार चारित्र है एव चारित्रका सार मोक्ष समझना इन उपरोक्त गाथाओंमें आपको बिज्ञात होगया होगा कि चारित्र रत्न एक कैसी उच्च पदार्थ है

सज्जनों ! आप लोगोंको ज्ञान, दर्शन और चारित्रकी महिमा पढ़कर यह सदेह पेदा होता होगा कि ज्ञानकी व्याख्यामें दर्शन और चारित्रसे ज्ञान को मुख्य वतलाया और दर्शनके विवेचनमें सबसे बड़ा दर्शन पद वतलाया तथा चारित्रके विवरणमें ज्ञान और दर्शनसे चारित्रको अधिक वतलाया इसका क्या कारण है ? उत्तरमें निवेदन है कि जहा तक सोचा जाता है मायः यही ज्ञात होता है कि जिसका विषय कथन किया जाय उसकी महिमा अधिक वतलाई जाती है लेकिन यदि वस्तुतः देखा जाय तो ये तीनोंही अनुपम रत्न समान हैं पूर्वाचार्योंका जी यही कथन है कि : “सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः” बुद्धिजनेषु किं विशेषम्

वर्त्तमानमें कइ एक साधुसाध्वी सपमी नाम धराते हुवे जी अपने आचारोंसे अनेक विपरीत कर्त्तव्य करते हुवे दृष्टिगोचर हो रहे हैं, इन्हीं चारित्र जी जब यथार्थ पालन नहीं कर सकते तो जावचारित्रकी आशाही क्या ? पूर्वोक्त अष्टप्रवचन माताका पालना अति डङ्कर दिख पड़ता है वे चारित्रकी

सत्तांका मौलर रखनेवाले चारित्र रत्नक एक जी मातेश्वरीकी जब ययार्थ सेवा नहीं बजा संकते तो आत्मोद्धारका तो कथनही क्या ? मालुम नहीं होताकि वे महानुभाव इस प्रकार संयमकों अखितयार कर दिलमें क्या हर्ष मनाते होंगे ? जोकि गृहस्थके तथा अन्य सामुदायिक प्रपञ्चोंके गाढ वन्दनसें जखड़े हुवे हैं. साथका साथ यह जी कह देना समुचित समझता हूँ कि जगके समस्त साधु साध्वी इस ढङ्गके हों ऐसा न समझियेगा किन्तु कइ एक आत्मार्थी पूज्य मुनिराज अपने चारित्रमें कुशल होकर उच्च श्रेणीमें पहुँचनेका दृढ प्रयत्न करते हैं इसही प्रकार वे पूज्य गुरुवर्य जी चारित्र क्रियामें ऐसे निपुण थे कि जिसकी व्याख्या हमारी लेखनीसे बाहर है. धन्य है ! आपकी चारित्र महिमा जगज्जन प्रिय थी. सज्जनो ! अब मैं आपकी दान महिमाका किञ्चिद् विवेचन लिख दिखाता हूँ.

(दानगुणपर व्याख्या)

किसी वस्तुकों कृपापूर्वक सहर्ष देना उसे दान कहते हैं ये दान पांच प्रकारके होते हैं तद्यथा:—

(गाथा)

अन्नयं सुपत्तदाणं । अणुकम्पा उचिय कित्तिदाणाइं ॥

डुन्निहिं सुस्को जणिउ । तिन्निउ जोगाइयं दिंति ॥१॥

अर्थ:—अन्नय, सुपात्र, अनुकम्पा, उचित और कीर्ति इन पांच दानोंमेंसे आदिके दो दानमोक्षके दाता हैं तथा शेष ३ सम्यग् जोगकी प्राप्तिके हेतु हैं इन्हही पाँच दानोंकी किञ्चित व्याख्या लिख दिखाता हूँ:—

(१) अन्नयदान:—प्राणीमात्रकों जय रहित करना उसे अन्नयदान कहते हैं. इसके दो जेद हैं:—प्रथम इव्य अन्नयदान द्वितीयभाव अन्नयदान.

इव्य अन्नयदान—उसे कहते हैं कि किसी जीवकी हिंसा होतीहो तो

उसे, तन, मन और धन करके रक्षा करे-तनसे-रक्षा उसे कहते हैं-कि उप-
देश देकर अथवा शारीरिक बलद्वारा किसी प्राणीके प्राणोंकी रक्षा करे म-
नसे रक्षा उसे कहना चाहिये कि दिलमें यह जावना जावे कि हे प्रजो !
किमी प्रकार यह प्राणी बच जाय तो उत्तम हो धनसे रक्षा वह कही जाती
है कि इन्ध देकर उसे बचा लेना

कऽ एक महानुभाव यहाँपर यह प्रश्न करते हैं कि अगर किसी एक
हिंसकको दश रूपे देकर एक बकरेको या अन्य-किमी जानवरको बचाया तो
वह प्राणघातक उन रूपेके दो चार जानवर लाकर बध करेगा तो ऐसे अज्ञ-
यदानसे क्या नतीजा हुवा इससे तो बेहतर है कि ऐसी अवस्थाओंमें मौन
अवलम्बन करना समुचित है

प्रश्नकर्त्ताका प्रश्न अवश्य विचारणीय है किन्तु वे महानुभाव यदि तद-
स्य होकर स्थिर बुद्धिद्वारा विचार करते तो ऐसे महद्दान गुणसे पराङ्मुख
न रहते देखिये जिनेश्वर देवका यह फरमान है किः—परिणामें बंध, क्रियाए
कर्म, और उपयोगे धर्म ये तीनों पक्ष प्रायः सचही जैन धर्मावलधियोंको मा-
ननीय है तो अब खयाल कीजिये कि उस प्राणी रक्षकका मानसिक विचार
क्या था ? विचारशील सज्जनों !—अगर आप बुद्धि विवर्कण जिज्ञासु है तो
अवश्यही यह स्वीकार करेंगे कि उसके ज्ञाव केवल जीव दया करना मात्रही
थे तो क्यों साहेब ! शुन विचारोंसे शुन बध-व अशुनसे अशुन बध तो
क्यों कर वह नियम विपरीत समझा जावे देखिये करुणालय महानुभावोंका
कथन हैः—

(श्लोक)

योदद्यात्काश्चनमेव । कृत्स्नामपि सुन्धराम् ॥

। एकस्यजीवनंदधा न्नास्ति तुल्यंतयो. फलम् ॥१॥

भावार्थः—जो प्राणी सुवर्णमय मेरु पर्वत तथा समस्त पृथ्वीका दान

दे देवे तो जी जीवितदान (अन्नदान) देनेवालेके बराबर इष्ट फल प्राप्त नहीं कर सकता. दुष्पिजनेषु किंविशेषम्

जाव अन्नदान—उसमें कहते हैं कि कोई प्राणी किसी दुर्व्यसनमें, किसी अशुभ प्रवृत्तिमें या कुदेव, कुगुरु और कुधर्मकी मान्यतामें ग्रस्त हो रहा हो तो उसमें उपदेशादि प्रयोगोंसे सुमार्गवाधक प्रवृत्तियोंको पराजय करवाकर सद्मार्गमें प्रवृत्त कर अथवा गृहस्थाश्रमके अनेक दुःखोंसे विमुक्त कराकर जवतारक चारित्र्य अङ्गीकार करवाता हुआ उसके मानवजन्मको कृतार्थ करे यह सर्वसे शिरोमणी व आत्मिक अनुभव सुखको देनेवाला है.

(१) सुपात्रदानः—सम्यक् प्राणीको दान देना उसमें सुपात्र दान कहते हैं. यह प्रायः सर्व त्यागी मुनिराजके वास्तेही संघटित है और किसी तौरपर देशविरती शुद्ध श्रावकमें भी घटित हो सकता है. देखिये पवित्र-मुनिराजोंको दान देनेसे इस प्रकार लाभ होते हैं:—

(श्लोक)

दारिद्र्यं न तमीकृते न जजते दौर्गत्य मालम्बते ।

नाकीर्तिर्न पराजयोऽज्जिह्वते न व्याधिरास्कन्दति ॥

दैव्यं नाप्नोति न दुःखं नोति न दरः क्लिश्नन्ति नैवा पदः ॥

पात्रे यो वितरत्यनर्थं दत्तं दानं निदानं श्रियाम् ॥१॥

जावार्थः—जो जन्मात्मा अनर्थोंको दान करनेवाले कल्याणकोष रूप सुपात्र दान देते हैं उन्हें दरिद्रता गिरफ्तार करनेकी इच्छा नहीं कर सकती अर्थात् सदैव लक्ष्मीवन्त होते हैं तथा दुर्गतिके सेवामें पृथक् रहते हैं यानी सदैव सन्नति प्राप्त करते हैं एवम् अपकीर्ति उन्हें आश्रयण नहीं कर सकती यानी सदैव यशस्वी होते हैं और क्लिप्तो उन्हें स्वाधीन करनेकी अजिलाषा नहीं कर सकती है अर्थात् सदैव अलज्ज्य लाभकी प्राप्ति होती है तथा व्याधि उन्हें बाधित नहीं कर सकती यानी सदैव कुशलतासे निवास करते हैं एवम्

दीनता उन्हें पकड़ नहीं सकती अर्थात् सदैव अमीरात जोगते हैं और रोग उन्हें पीड़ित नहीं कर सकता यानी हमेशा निरोगाऽवस्थाकों धारण करते हैं तथा आपदा उन्हें छेपित नहीं कर सकती अर्थात् हमेशा निराबाध आनंद करते हैं; यहाँ तक वे दानेश्वरी सुखी होते हैं कि अन्तमें क्रमशः अचिरात् परमपद (मोक्ष) को प्राप्त होते हैं

इस विश्वजरमें अगर निष्पयोजन उपगारी हो तो प्रायः आधिक्यतासे एक पवित्र जैमुनिराजही हो सकने है इन्हे वस्त्र, पात्र, आहार उपाश्रय और जेपजादि दान देनेसे इतना तात्र पुण्य सचय होता है कि जिससे शीघ्रही निर्जराकी संज्ञावना है

३ अनुकम्पादानः—किसी जीवपर करुणा लाना उसे अनुकम्पादान कहते हैं—यथाः—किसी अतिथी, निराश्रय गरीबको आहारपानी देकर उसकी आत्माको सतोष करना अथवा वस्त्रादि देकर धूप, ठण्ठसे वचाना एवम् अन्य जीवकों दुःखी देखकर दिलमें दिलगिरी लाना कि हे भ्रजो ! किसी प्रकार यह जी सुखी हो जाय तो उत्तम है

४ उचितदानः—डनियावी नियमाऽनुकूल देना उसे उचित दान कहते हैं यथा.—बहिन, पुत्री, जन्नीजी, जानेजी वगैराकों देना

५ कीर्तिदानः—अपने यश निमित्त देना उसे कीर्तिदान कहते हैं यथाः सदा नत खोलना जहाँ चाहे गरीब चाहे अमीर कोई आँच मिलती हुई वस्तुकों निराबाध ले जा सकता है अथवा चारण जाटकों दान देना एवं अपनी नामवरीके लिये टीप वगैरामें बहुतसा डण्य देदेना वगैराऽ सर्व कीर्तिदानमें समावेश है

उन उपरोक्त पाँच दानोंमेंसे आप पूज्य गुरुवर्य अजयदानमें असाधारण प्रयत्नशील थे आप परमोपकारी अपने अतुल उपदेशद्वारा जिन्हाके लोलुपी मासहारियोंका मास खाना ठुम्बाकर जीर्णोकी रक्षा करवाते थे तथा बर होते हुवे प्राणीकी रक्षाके हेतु बनता हुआ उत्तम उपचार करते थे तथा जाव अजय दानमें तो आपका एक अलौकिकही दृश्य था; किसीको डण्य-

सनोसैं अलग हटाकर सद्मार्गमें प्रवृत्त करनेके लिये तथा गृहस्थाश्रमके असह्य डःस्वसैं बुझा लेनेके वास्ते आपत्रीका प्रशंसनीय प्रेम थाः—

वर्तमानमें कइ एक साधु, साध्वी मौल लेकर अथवां इर्षाद्वारा अपनी समुदायकों बनानेके हेतु एवम् अपनी सेवा करवानेके खातिर वा जगतमें नाम वरीविस्तीर्ण करनेके लिये शिष्य समुदायका संग्रह करते हुवे प्रतीत होते हैं। वे हमारे महाऽनुज्ञाव इतनाजी नहीं सोच सकते कि ऐसी कर्तूतोंसैं क्या हमारा या शिष्य समुदायका वा शासनका जला हो सकता है ? किन्तु सच है ! अबोध जङ्गलका स्वज्ञावही ऐसा होता है।

हमारे वे पूज्य दयानिधि किसी प्राणीके परमोपकारके निमित्तही गृहस्थाश्रमके गहरे डःस्वसैं मुक्त कर अपने पवित्र चरणांऽबुजोंका शरण देते थे अर्थात् पवित्र संयम प्रदान करते थे और उसकी उम्र पर्यन्त मात पितासैं जी अधिक लालना पालना करते थे और सम्यग् ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य का आराधन करवा कर कृत कृत्य कर देते थे।

प्यारे ज्ञान रसिकों ! आपको यह बखुबी रोशन होगा कि ज्ञान दानसैं बढ़कर इस जगत्रयम कोई दान नहीं है चूँके इस दानसे सब दानोकी साफल्यता होती है।

आप पूज्य गुरुवर्य इस विषयसैं जलीब प्रकार सुपरिचित थे कि ज्ञानके बगेर सर्व शून्य है इसलिये प्राथमिकाऽवस्था ज्ञान दानसैंही विज्ञूषित करना चाहिये ताके अन्तिमाऽवस्था पर्यन्त निराबाध अलज्ज्य दानकों हांसिल कर सके।

आप सामान्य ज्ञान दानसैं सत्क्रियामें प्रवृत्त कराकर शुद्ध, देव, गुरु और धर्मके निर्मल स्वरूपकों उसके हृदयाऽङ्कित करते थे पश्चात् विशेष ज्ञान दानसैं आगम रसपान कराकर ध्याता, ध्येय और ध्यान इन तीन वस्तुओंका पवित्र स्वरूप बतलाते थे उसका किञ्चिद् विवरण इस स्थल पर पाठकोंके अग्निमुख करता हूँ।

(१) ध्याताः—ध्याने वाले (ध्यान करने वाले) महानुभावों को ध्याता कहते हैं

ध्याताओं मुख्य तीन विषयोंमें सदैव प्रयत्न होना चाहिये जिसमें कि ऊर्जय में चल विचल होकर निगमबन्धके फाँसमें गेर देता है वे ये हैंः—१ दृष्ट २ श्रुत ३ अनुजुत ये प्रायः वगैरे चिन्तने कियेही स्मृति पथमें आ जाते हैं यथाः—

कोई एक प्राणी हवा खोरी करता हुआ जा रहा था उसने नगराधिप-
तिकों वड़ेही जुलुशके साथ शहरके बीचो बीच किसी गुलजार बाजारमें नि-
कलते हुये देखे आगे बढ़कर क्या देखता है कि उसका एक असीम प्रेमी
सम्भके किनारे पर खड़ा हुआ राह देखे रहा है यह तत्काल स्यानाऽऽपन्न
हुवा दोनोंकी चो नज़र होतेही डार्ले नेत्र गद १ ज़र आए और स्नेहलतासें
गुंथी हुई शब्द श्रेणी खिल उठी इस प्रकार वार्त्तालापसें दोनोंके हृदय प्रेम
रससें आपूरित (यथाथव) होगये अथ वे दोनों बाजारसें अनेक जोगोपजो-
गीय पदार्थ खरीद कर एक मनोहर वाटिकाके अन्दर जा पहुँचे वहापर अ-
नेक सुन्दर पुष्पाश्रित टुक़ अपनी अजीब शोभाको झलका रहे थे वे दोनों
प्रेमी एक पवित्र स्थानपर विश्रामित हुवे और उन जोगोपजोगीय पदार्थोंको
उत्कट इच्छा द्वारा सेवनकर आनन्द रममें निमग्न हुवे थोड़ेही समय पश्चात् वे
दोनों महानुभाव अपने १ मकानपर सानद पहुँच गए

अब वह महानुभाव (जिसका किजिक हम ऊपर कर चुके हैं) ध्यानाऽ
वस्यामें संलग्न हुआ इस समय वगैरे विचारेही बड़े राजाकी सवारी (वरघोषा)
और मित्रकी मनमोहन वाणी एव इन्डियोंको सुखेदाई खाद्य पदार्थादि स्मरण
हुये, मनको बहुत दवाता है किन्तु बारंबार वे विषय सन्मुख होते हैं इस प्रकार
कई बार हटाने पर जी वे अपनी कटिबद्धतासें पराजय न हुवे और अन्तमें
उसे ध्यान चष्ट कर दिया इस लिये मेरे प्यारे ध्यान रमिकों ! इन प्रबल
बाधक निमित्तोंसें सदैव पराङ्मुख होना चाहिये

(२) ध्येयः—जिसका ध्यान किया जाय उसे ध्येय कहते हैं

हमको वैसेही ध्येयकी आवश्यकता है कि जिससे बढ़कर जगत्रयमें नहो। राग द्वेषके फाससे जख्मे हुवे ध्येयके ध्यानेसे आत्मिक अनुभव निरंतर दूर रहता है चूँके जो खुद अनेक प्रपञ्चोंमें ग्रसित हो रहा है और अपना जला करनेकी वाज्झा कर रहा है वह हमारा जला हरमीज नहीं कर सकता। हमें ऐसे ध्येयका ध्यान करना चाहिये कि जो अक्रोधी, अमानी, आमायी और अलोत्री हो तथा अरागी, अद्वेषी, अकामी और अशरीर हो एवम् अकमी, अहय, अविनाशी और अगोचर हो तथेव अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र्य और अनंत वीर्यकाही जोक्ता हो अर्थात् निरंजन, निराकार और ज्योति स्वरूप हो ऐसे सिद्ध जगवान् जोकि अनंत गुणगणाऽलङ्कृत हैं वेही उत्तम ध्येय होना चाहिये।

३ ध्यानः—सम्यक् विचार या सम्यक् चिन्तनको ध्यान कहते हैं। जैसे:—

हे नाथ ! आप इस प्रकार समस्त डःखोको निरासेन (नष्ट) कर अनंत सुखोंमें लील रहे हो मैं अनादि कालसे चतुराष्ट लक्ष जीवा योनीमें ज़मण करता हुवा अनेक डःखोंसे डःखित हो रहा हूँ मैंने अनेक वरुत सुपात्रादि दान दिये, शील व्रतमें सर्वथा निमग्न रहा, उग्रतपस्याकी, शुद्ध जावनाजी जाइ किन्तु वे सर्व क्रियाएं अनुपयोग द्वारा अज्ञान कष्ट क्रियाकी श्रेणी प्र-तिपन्न हुई प्रतीत होती हैं।

हे प्रजो ! किसी दिन तुमजी ऐसी दशामें थे तो क्या बज़ह है कि मैं यहीं रखरू रहा हूँ और आप शिवपद (मोक्ष) को प्राप्त होगए इस तरह नाना प्रकारकी आशङ्काए करता हुवा विचारता है कि हे जगदाधार ! आप उन अष्ट कर्मोंके व चेतनके निज स्वरूपों से जलीव प्रकार परिचित होगए थे जिससे शीघ्रही उन घोर अष्ट डष्टोंको दूर हटाकर आत्मीय स्वरूपमें लीन हुवे।

मुझकोजी इसही प्रकार इन विषयोंसे ज्ञात होना चाहिये कि कर्म और चेतनका संयोग कबसे है इन्होंने इस आत्माको कैसे गिरफ्तार किया, कर्म-बंधनके क्या १ निमित्त हैं। उन्हें रोकनेमें कौन १सी सम्यक् क्रियाओंको सेवन करना चाहिये यानी आश्रवकों निरुद्ध कर संवर किस प्रकार करना चाहिये संवर होनेके पश्चात् सत्ता (खजाना) में रहे हुवे कर्मोंकी किस प्रकार निर्जरा

(नष्ट) करना चाहिये इतमें विषयोंको जब तक सम्यक् प्रकारसे न जाने, न श्रद्धे और आचरण न करें तब तक आत्माका निज स्वरूप प्रकट होना संव्या डःसाध्य है यह निर्विवाद पक्ष विद्वयोंकी बुद्धिमें प्रकट सिद्ध है इस प्रकार उत्तमोत्तम ध्यान करना चाहिये ।

गुणानुरागियों ! उपरोक्त ध्याता, ध्येय और ध्यान स्वरूपसे आपको स्वतः सिद्ध हो गया होगा कि वे कैसे दानवीर मुनिराज थे

इतनाही नहीं किन्तु कालाञ्जुसार निरालंबन ध्यानकी जी सम्यग् विधि बतलाते थे इतने विवरणसे आपको यह निराशय विज्ञात हो गया होगा कि वे किस प्रकार विनाल ज्ञानी व दानेश्वरी महात्मा थे मैं इस बातको जाहिरा कह सकता हूँ कि जो तटस्थ अनुजयी महात्मा है वे इस विषयको श्रवण कर अपने मुक्त कण्ठसे प्रशंसा किये वगेर हरगिज न रह सकेंगे अहाहा धन्यहो ! आपकी दान महिमा जगदाधार है सज्जनो ! अब मैं आपके शील प्रभावका किंचिद्वरणन पाठकोंकी सेवामें पेश करता हूँ

॥ शीलका महा प्रभाव ॥

स्त्रीके समस्त विकारी अद्रोपादीय सेवनके त्याग स्वभावको शील कहते हैं

आप पूज्य गुरुवर्य आवाल ब्रह्मचारी थे यानी बाल्यावस्थासेही सम्यक् प्रकारसे शील व्रत पालन करते थे वृद्धा स्त्रीको अपने माता तुल्य, युवाको बहिन सदृश और बालिकाको अपनी पुत्रीवत् शान्त दृष्टिसे अवलोकन करते थे काम रससे पूरित स्त्रीकृत्यासे तो आपको स्वाभाविक ही घृणा थी चाहे अप्सरा जी अपने विकारी अवयवोंको हाव जाव पूर्वक दिखलाकर वशीकृत करनेका क्यों न सहासरखती हो किन्तु वे हरगिज चलायमान नहीं होसकते ये काम विकारके जितनेही निमित्त हैं उनसे आप सदैव सततः

स्य रहते थे. आप पूज्य ब्रह्मचारी निम्न लिखित नव वामों (किला-नियम)
कों वमही पवित्रतासें पालन करते थे.

॥ पवित्र नववडोका विचार ॥

(गाथा)

वसही कहानिसिद्धि दिय । कुम्भितर पुव्व कीलिए पणिए ॥
अइ मायाहार विज्जुपणाई ॥ नववञ्जचेर गुत्तिओ ॥ १ ॥

अर्थः—१ वस्ती २ कथा ३ निसिद्धा ४ दृष्टि ५ कुम्भितर ६ पूर्व कीर्णित
७ परिणती ८ अतिमात्राऽहार ९ विज्जुपणा. ब्रह्मचर्यकी इन नौ वामोंको गोप
कर रखना अर्थात् इन नौ विषयोंको सर्वथा त्याग करना.

१ वस्तीः—वे पूज्य ब्रह्मचारी ऐसे स्थानपर मुकाम नहीं करते थे कि
जहाँ पशु, पंक्त (नपुंसक) और स्त्री निवास करती हो, कारणकी “मार्जर
मूपकवत्” दोषकी प्राप्ति होनेका अनुमान है. देखिये जैसे मार्जार (बिल्ली)
मूपक (चूहा) को देखते ही शीघ्र उसे ग्रहण करनेको ऊपटती है तैसे ही
तिर्यचोंको संजोग करते हुवे देख मनोवृत्ति कामवश हो जाती है—इसही प्रकार
स्त्रीके विकारी अवयव देखनेसे प्राणी कामातुर हो जाता है तथैव पुरुष, स्त्रीसे
प्रबल कामाग्निको धारण करनेवाले नपुंसकके आचरणोंसे दिल चलविचल हो-
जाता है; लिहाजा ऐसे कामोत्पादक स्थानको वे महानुज्ञाव सर्वथा त्याग करते थे.

२ कथाः—वे अविकारी ऋषीश्वर स्त्रीके प्रति हास्य कथा व काम कथा
कजी नहीं करते अथवा अन्यके साथजी ऐसी कथाओंको सर्वथा निवारण
कर रक्की थी, चूँके ऐसी प्रवृत्तिमें “नीवूवदनवत्” दोषकी संज्ञावना हैः—जैसे
प्राणीको नीवू देखते ही वदन (मुख) में आम्ल रस व्याप्त हो जाता है. य-
द्यपि उसे देखा मात्र ही है खाया नहीं है तदपि उसकी स्वाभाविक प्रकृती
ऐसी ही है तैसे ही स्त्रीको सेवन नहीं की है किन्तु कथा मात्रसे ही उसके

हृदयमें विकार व्याप्त हो जाता है इस ही लिये वे बढजागी इस विकारी विषयसे हमेशा घृथक् रहते थे

३ निसिद्धाः—वे मुनीश्वर जिस स्थलपर स्त्री बैठी होती उस स्थान पर दो घटिका (अमृतालीश मिनिटस्) पर्यन्त नहीं विराजते क्यों की वहाँ पर “अग्नि घृतवत्” दोषका अनुमान है जैसे अग्नि पर घी रखनेसे तत्काल पिघल जाता है वैसे ही स्त्रीके स्थानकी उष्णता लगनेसे रुका हुआ कामज्वर विकसित हो जाता है अर्थात् जिस स्थान पर स्त्री बैठी हो वह स्थल उसके शरीरकी गर्मीसे तप्त हो जाता है वह आतप लगनेसे मनुष्यों खयाल होता है की यहाँ पर अमुक स्त्री बैठी थी इस तरह श्रृंगारोंसे अलङ्कृत थी, इस प्रकार शारीरिक मनोह्र अवयवोंसे मुशोन्नित थी इसादि चिन्तनसे कामाग्नि उठल पडती है कारण वे सौजागी ऐसे स्थानका कदापी आश्रय नहीं करते थे

४ दृष्टिः—वे योगीश्वर स्त्रीके प्रति कभी चो नज़र (विकार दृष्टि) नहीं करते थे मतलब की ऐसा करने पर “सूर्य नयनवत्” दोषकी प्राप्तिकी सजायना है जैसे सूर्यकों देखनेमें शीघ्र ही नेत्रोंसे जल उहने लग जाता है इसही तरह स्त्रीसे चो नज़र करने पर वह अपने कटाक्ष वाणोंसे ऐसा बिन्दल करती है कि काम रस उसके हृदयमें बढने लग जाता है इस वास्ते वे सागी आत्माथी ऐसे डट्टाचरणसे निरंतर जुदा रहने थे

५ कुट्यन्तरः—वे दृढ व्रत गारा वैसे स्थानपर निवास नहीं करते कि जहा स्त्री पुरुषके शयनगृहमें केवल एक टट्टी (कच्ची जीत वा घास बगेरासे बुनी हुई टाटी) का ही व्याघात हो; कारण की ऐसी व्यवस्थामे “मेघ मयूरवत्” दोष का धोका है जैसे मेघकी गर्जाहट्ट सुनकर मयूर अति आनन्दित होता हुआ उत्साह पूर्वक वचन कलाप करता है तैसे ही उस शयन गृहमें रहे हुवे स्त्री पुरुषके काम क्रिमा विषयिक वार्त्तालाप श्रवण कर काम रसमें ऊलने लग जाता है और अपनी तीव्राऽज्जलापाद्वारा वैसे अनर्थोंमें मशगूल हो जाता है ५म वजहसे वे आत्माऽनुयाई ऐसे आवास का ससर्ग तक नहीं करते थे

६ पूर्वक्रान्तः—उन निर्बल धर्माऽतारकों उस विषयके विचारमानकी

आवश्यकता नथी. कारणी की आप स्त्री संसर्गसें सर्वथा तटस्थ थे. तदपि इस वारुका खुलाशा करना जरूरी है:—ब्रह्मचारी पुरुष पूर्वकृत स्त्रीकी संज्ञोग क्रीडाकों स्मरण नहीं करे यानी ऐसा न विचारे कि अहाहा ! मैं पहिले स्त्रीके अमुक अवयव से इस प्रकार आनंदित होता था, अमुक अवयवसें इस तरह रसाऽऽस्वादन करता था और अमुक अङ्गसे गारु सुखमें लीन हो जाता था वगैरा १ गरजकी जितने ही अङ्गनाके साथ विकारी जाव हैं उन्हें स्मृतिपथसें सर्वथा निकन्दन कर दे; कारण की ऐसा न करनेसे “पंथी तक्रवत्” दोषका संदेह है. जैसे:—

दो मुसाफिर अपने रोजगार निमित्त देशान्तर जा रहे थे रास्तेमें किसी एक ग्राममें एक वृक्षाके मकान पर ठहर गए, गृष्म ऋतुके हेतु मार्गश्रमसें पीड़ित हो गए थे उन दोनोने शितलोपचारके निमित्त तक्र (ठाच) पान करली कुछ टाइम ठहर कर अपने इष्ट शहरकों चले गए पीठेसें मोकरी क्या देखती है कि उस तक्रमें सर्प का गरल पड़ा हुआ था यह व्यवस्था देख उसके दिल में संदेह हुआ कि अवश्य वे दोनो वटान मर गए होंगे.

कितनाक काल बीत जानेपर वे मुसाफिर लौटते हुवे उसही के यहाँ ठहरे मोकरीने देखकर कहा अरे मेरे वीराओं ! क्या तुम अब तक जिन्दे हो ? यह अद्भुत वचन सुन उन दोनोने निज हकीकत जाननेकी विज्ञप्ति की उसने नाग गरलके सर्व हाल सुनाए सुनने ही वे मुसाफिर हिचकने लगे और बार १ यह कहने लगे कि अरे बापरे ! इसमें क्या विषधरका गरल था हमारे रोम १ में जहर व्याप्त हो जाता अरे प्रजो ! हम अवश्य मर जाते इस प्रकार असह्य डःखके शब्द कहते १ धडाकसें दोनोके दम निकल पड़े, तैसे ही पूर्वके काम-जोग याद करनेसे कामाग्नि तत्काल प्रज्वलित हो जाती है. लिहाजा शीलवान्कों ऐसे विकारी विषयोंको देश निकाला दे देना चाहिये.

१ परिणती—रसविकार:—वे शान्त गुणधारी अकारण कत्री ग्लिष्ट ज्ञोजन नहीं करते थे; क्योंकि ऐसे स्वाद्यमें “घृत ज्वरवत्” दोषका जय है. जैसे किसीकों बुखार चढ़ा हो उस समय यदि सरस-ज्ञोजन दिया जाय तो ज्वर

दृक्छिन्न हो जाता है डमरी तरह मिष्टानादि, ग्लिष्ट आहार करनेसे कामज्वर
देहिष्य हो जाता है इस लिये ये धैर्यवन्त ऐसे विकारी जोगनसे, सर्वथा
पृथक् रहते थे

सहजो ! यहा पर कोई मन्त्र करता है कि यदि अहारमें ही यह सामर्थ्य
है तो क्योंकर श्री स्थूलिजः स्वामीको चलविचल न किये क्यों की वैश्यागृह
के चातुर्मासमें आप दयेशा पदरम जोगन करते थे

उत्तरमें विज्ञात हो कि नियम सार्वजनिक होता है किसी एक व्यक्तिके
वास्ते नहीं हो सकता ये महानुज्जाय दिव्य ज्ञानको धारणा करनेवाले एक नि-
तेन्दीय बीर पुरुष थे जहाँतक माणी उच्च श्रेणीको प्राप्त न हो तहाँ तक मन
को स्थिरकरनेके हेतु उन नयों धामोको पानन करना चाहिये; इसमें यह न
समझियेगा कि मन तशमें होनेके पश्चात् विकारी निमित्त सेवन कर सकता है;
किन्तु वैराग्य रसमें मनोवृत्ती स्थिर होनेके बाद कदाचित् कारणवश या स्वा-
भाविक विकारी निमित्त समाप्त हो जी जाँय तो वे सर्व वैराग्याऽऽस्यामें ही
गमिलित हो जाँयगे. भावः तो वैराग्य रसमें झीलने पर विकारी निमित्तों की
माप्ति ही असंजनि है

८ अति मायाऽहारः—ये संगोपी धर्मात्मा कबिसँ अधिक अहार नहीं
करते थे किन्तु भावः उणादरी की लिया करते थे जिसका कि खुजाशा हम
तब प्रकरणमें करेंगे वजह कि “जाजन अमनरत्” दोषकी देगत है जैसेमेर
तरफे तरतनमें सरामेर अमन (नाह) माल दिया जायतो उम्में नहीं ठहर
सकता, जैसेही छापांवर अहार करनेवाला यदि पौन मेर का लेतो उनप-
चाता अपने मरज स्वरूपको प्रकट कर देती है जिसमे कामादि लजलने लग
जाती है इसही लिये ये दयालु मामुनी आहार करने थे अर्थात् अधिक अ-
हारमें मर्दन आपकी गुणा भी

१० विजृम्भण.—ये पाम वैगामी आत्मा अनुसरी शारीरिक शोभा कदापि
नहीं करते थे हासन की “मृगिता मन्तरत्” दोषकी संज्ञारना है जैसे रज
जब तक मिट्टीमें लिखा हुआ रहता है तबतक नुमे द्रवण करनेकी कोई इच्छा

नहीं करता और जब वह मसाले द्वारा स्वच्छ कर दिया जाता है तब हर एक उससे लेनेकी दिली इच्छा करते हैं तथैव जबतक शरीर व वस्त्रादि साधारण स्थितिमें रहे हुवे हैं तब तक कोई बुरी निगाह नहीं माल सकता नखुदकी इच्छा विकारी होनेकी संज्ञावना है और यदि शरीर चकाचक है, अतर फुले-लसें मर्दित है, वफ़िया वस्त्राद्यलङ्कारोंसे अलंकृत है तो उस हालतमें अन्य स्त्री वगैरा जी कटाक्ष बाण विक्रेष करती है और खुदका जी दिल चलायमान हो जानेका खोफ है इस लिये उन मोक्षाऽजिलाषी धर्म धुरंधरने इस उष्ट्र विषय को नासिका मलवत् परित्याग कर दिया था.

उपरोक्त नववाग़ोंसे आप समझ गए होंगे कि ब्रह्मचर्यके रक्षा निमित्त कैसे उत्तम मार्ग हैं, शील व्रत खण्डन होनेके अनेक निमित्त है किन्तु इन नव प्रबल निमित्तोंको जो नष्ट कर देता है वह प्रायः अवश्य दृढ़ शीलवन्त होसकता है. यह स्वतः सिद्ध है कि कारण के विनाशाऽवस्थामें कार्योत्पन्न नहीं हो-सकता. देखिये कहा जी है:—“निमित्ताज्ञावे नैमित्तिकस्याप्यज्ञावः” कारण के अज्ञावमें कार्यका जी अज्ञाव होता है. यहाँपर वस्त्रादि नौ विषयोंको सेवन करना यह निमित्त है और मैथुन सेवन नैमित्तिक है वास्ते उन्हके दूर करनेसे मैथुन स्वतः नष्ट हो जायगा.

हां अलवत्ता ! इतना अवश्य है कि कामदेवको जीतना कुछ सहज नहीं है जिस वख्त वह खींचकर बाण मारता है बड़े शूझानी, ध्यानी और महा-त्मा नाम धरनेवाले थर शूझने लग जाते हैं. देखिये उसके बाणोंके अन्दर किस प्रकार शक्ति है

(श्लोक)

उन्मादनस्तापनश्च । शोषणः स्तंभनस्तथा ॥

संमोहनश्चकामस्य पञ्चबाणाः प्रकीर्तिताः ॥ १ ॥

जावार्थः—उन्मत्तता, आतपता, शुष्कता, सन्धता और मोहित दशा; इस प्रकार कामदेवके पञ्च बाणोंसे प्राणी बिब्हल दशाको प्राप्त हो जाता है.

व्याख्या:—(१) उन्मत्तता:—जिस वरुत कामदेव अपने बाणकों तान कर मारता है उस वरुत प्राणी मद्गेन्मत्त हो जाता है उस वरुत माता, बहिन, पुत्री, स्व स्त्री, पर स्त्री और वैश्या बगेराका कुठ जी ज्ञान नहीं रहता है जाति मर्यादा, कुल मर्यादा और अपनी अमूल्य इज्जत आव-रुमें भ्रष्ट हो जाता है अपने पवित्र गुरुवर्योंकी और लौकिक लज्जासे बिलकुल नही मरता जिसने अधोवस्त्र मस्तक पर पहन लिया वे वेशरम कजी नही शर-माते कहा है:—

(शैर)

शरमको जी यहाँपर । शरम आय है ॥

जो वेशरम हो । वे न शरमाय हैं ॥ १ ॥

(२) आतपता:—जिस समय प्रद्युम्न अपना बाण खींचकर मारता है उस समय आदमीके हृदयमें ज्वाला लग जाती है जिस प्रकार एकसो पाँच मिश्रीके बुलार वाला डःखी होता है उससे कितने ही गुणा प्राणी कामज्वरसे पीडित हो जाता है

(३) शुष्कता:—जिस वरुत मदन अपने बाणकों खींच कर मारता है उस वरुत मानवका शरीर सूक जाता है क्योंकि चिन्ता माफिनी कलेजेमें बैठ-कर रक्त पीती है यानी उससे रात दिन कामिनीकी प्रबल इच्छा पनी रहती है किन्तु जाग्य हीनतासे स्त्री ससर्ग नहीं होता—अथवा कामदेवसे पीडित होनेके हेतु प्रियतमाकों बारंबार सेवन करनेसे शरीर पिंजर हो जाता है जिस प्रकार जलमें जरी हुई पुष्ट मंसक पानीके निर्गमन होनेसे सूकरु जाती है इसही प्र-कार वीर्य क्षयमें शरीर पिंजर हो जाता है

(४) स्तब्धता:—जिस आसुरमें मन्मथ अपने बाणकों तार कर मारता है उस वरुत उसका शरीर घुम्प हो जाता है जैसे किसीको अचानक ड म्ब आ गिरे और वह डिग्मूट हो जाता है इसही प्रकार उसको कुठ जी कार्य नहीं मूऊ पन्ना एक स्त्री विलासकी राधा में ही मलग रहता है.

(५) मोहित दशाः—जिस वख्त अनङ्ग अपने बाणों झपटकर मारता है उस वख्त प्राणी मोहसे विह्वल हो जाता है जैसे मदिरा (Wine) पान किया हुआ आदमी पागल हो जाता है इसही तरह बिलासिनीमें गाढ मोहित हो जाता है और इस अवस्थामें स्त्री जिस तौर नाच नचावे उसही तरह नाचता है—धन्य हो ! पुरुषार्थ धारी हों तो ऐसे ही हो.

उपरोक्त व्याख्यासे आपको अच्छी तरह रोशन हो गया होगा कि कामदेवके कैसे तीक्ष्ण बाण हैं. अन्य बाणके लग जानेसे तो जीवित रहनेका ज़रोसा है व शीघ्र आराम होनेका ज़ी सम्भव है किन्तु इस असह्य डरार् बाणके लगनेसे आदमी मूर्छित हो जाता है और प्रायः इसके वशोज्ञात होकर इसकी आङ्गामें चलना पड़ता है अर्थात् डट्टाचारकों आचरण करना पड़ता है. इन बाणोंके घाव सहन करते हुवे ज़ी युद्धसे न हटनेवाले बहुत ही कम प्रतीत होते हैं. इस डनियामें कइ एक अतुल पराक्रमी विद्यमान हैं किन्तु इस जगह आते ही सबके हाथ पर ठामे पड़ जाते हैं. सज्जनों ! कामदेवके अजिमानकों गलन करनेवाले विरले ही वीर रत्न हैं. देखिये किसी अनुजवी महात्माका कथन है.

(श्लोक)

जत्तेजकुम्भ दलने नुविसन्तिशूराः ।

केचित्प्रचण्म मृगराजवधेऽपि दक्षाः ॥

किन्तु ब्रवीन्निबलिनां पुरतः प्रसह्य ।

कंदर्पदर्प दलने विरला मनुष्याः ॥ १ ॥

भावार्थः—हे शूरावीरों ! इस विश्वमें कइ एक ऐसे बाहादुर (brave) हैं कि मदोन्मत्त हस्तिके कुंज स्थलकों विदारणकर डालते हैं तथा कइ एक ऐसे पराक्रमी हैं कि प्रचण्म सिंहकों टंगड़ी पकड़ कर चीर मालते हैं किन्तु हम यह दावेके साथ कह सकते हैं कि डर्जय कामदेवके मदकों दलन करनेवाले विरले ही पुरुष होंगे.

वस्तुतः कामदेव ऐसा ही घोर शत्रु है जब तक प्राणी इसके फाँसों में पड़-
 यक्त न हो पवीत्र शील व्रतकों हासिल नहीं कर सकता और इस महाव्रतके
 न होने पर प्राणी तप, जप, ज्ञान, ध्यानादि कुछ भी सम्यक् प्रकारसे करनेको
 समर्थ नहीं हो सकता देखिये:—

जिस प्रकार बगैर राजाकी रईयत नष्ट भ्रष्ट होजाती है और कोई जी
 यथावत् कार्य करनेको समर्थ नहीं हो सकती इसही प्रकार वीर्य राजाके न
 होने से देह प्रजा बरबाद हो जाती है और कोई कार्य करनेका हौसिला नहीं
 कर सकती शरीरमें प्रधान वस्तु वीर्य ही है इसहीके प्रभावसे यह मनुष्य
 पुष्ट, दिव्य कान्तिवान् और निरोग रहता है और इसही के अतुल्य कृपासे
 स्मरण शक्ति (Memory) विचक्षण बुद्धि और दिव्य ज्ञान प्राप्त होता है
 तथा इसहीके परम महरसे प्राणी अनन्त शक्तिवान् होता है एवम् इसही के
 आधारसे जन्मात्मा अष्ट कर्मको विभ्रंश कर सिद्धि पदको प्राप्त करता है एक
 इसके न होनेसे सर्व आशाएँ निष्फल हो जाती हैं

इस स्थल पर कोई प्रश्न करता है कि अगर वीर्यमें क्षिती होनेसे ही
 शरीर बिकार हो जाता हो तो ध्याम गृहस्थों की यह दशा होना चाहिये क्योंकि
 अधिकांश गृहस्थ (व्याहे हुए) लोग स्त्रीको नित्य सेवन करते हैं फिर
 क्योंकर सर्वका शरीर जर्जरिज्जत नहीं दिखाई देता? लिहाजा यह उद्देश
 खिलाफ है

उत्तरमें विदित हो कि अनियावी यह कहावत है कि “पहिलेके बुढ़े
 अबके जवान अब होंगे सो और नराम” यानी पूर्वके वृद्धोंके सुतात्रिक जी
 अबके युवानोंमें सामर्थ्य नहीं है और आश्चर्य होंगे वह इससे जी शक्ति
 विहीन होंगे इसका यही मतलब है कि पूर्वकालके लोग मथम तो यथोचित वय
 में शास्त्री करते थे द्वितीय योग्य अवसरपर स्त्रीसेवन करते थे जिसकी सत्तान
 प्राप्ती और ज्ञानवान् होती थी इस वस्तु अधिकांश गलत लगनेसे अप-
 रिपञ्च वीर्यको ठम्क दिया जाता है उससे यही नुकसान है कि जैसे कच्चे
 सुखारको सतानेसे होता है आपको वैद्यक नियम विज्ञात होगा कि कितनीक

व्याधियोंको ठोकर प्रत्येक बीमारीका यह नियम है कि यावत् वह परिपक्वावस्थामें न होजाय तावत् उसका माकुल इलाज नहीं किया जाता तत्वावस्थावस्थामें स्त्री संसर्गका फल होता है. तिसरी यह ज्ञी है कि इस जमानेमें प्रायः नित्य जोग करते हैं, इन लोलुपियोंके वनिस्पत तो विचारे कुत्ते और कव्वे ही ठीक समझे जा सकते हैं कि जो अपनी मौसिम पर मैथुन सेवन करते हैं. इसही लिये इस वस्तु ऐसे कामी पुरुषों की संतानें बहुत कमजोर प्रतीत हो रही है तात्पर्य यह है कि अधिकांश नित्यजोगी गृहस्थ बलवान् होते हैं यह बात उपेक्षणीय है. अब रहा यह की कितने लोग नित्य जोगी होने पर ज्ञी रुष्ट पुष्ट दिख पड़ते हैं उसका कारण यह प्रतीत होता है कि वे मैथुन सेवनके पश्चात् ही कुछ ताकतवर वस्तुएँ सेवन करते हैं अथवा अपने खानपानका पूर्णतः साह्य रखते हैं. इस लिये वे कुछ श्रम काम कर सकते हैं ऐसा होने पर ज्ञी यह अवश्य है कि नित्यजोगी जो रुष्ट पुष्ट दिख पड़ते हैं उनमेंसे अधिकतर बाह्य शक्ति मात्र ही धारण किये हुवे हैं अर्थात् अन्तर शक्तिसँवेशक वे वञ्चित हैं यह अनुभव सिद्ध है. सारांश यह है कि ब्रह्मचर्य न पालनेसे अवश्य ही हीन दशाको प्राप्त होते हैं.

प्रस्तुत प्रकरणमें कोई प्रश्न करता है कि यदि शीलपर ही सर्वाधार है तो क्योंकर मुनि जनोमें पृथक् श्रम कृष्यता, उपाकान्ति, व्याधि, अस्मृति, बुद्धिहीनतादि दिख पड़ते हैं? चूँके मुनिराज तो सदैव अरवण्ड शील व्रतको पालन करते हैं.

जवाबमें मालुम हो कि कितनेक मुनिराजमें जो उपरोक्त आपत्तियें गिरती हैं उसका उपचरित कारण यह प्रतीत होता है कि उनके पथ्यका साधन योग्य नहीं रह सकता और ज्ञी अनेक परीसह सहन करना पड़ते हैं इससे उनका वीर्य विगड़कर मल, मूत्र, खकार और श्लेष्मादिके जरिये क्षय हो जाता है इससे उपरोक्त व्यवस्थाएँ प्रतीत होती हैं; तदपि विशेषतः इतनी जोरदार आपत्तियें नहीं आती कि जितनी गृहस्थों होती हैं.

हम इस डिनियामें प्रायः देखते हैं कि कामी पुरुषका शरीर शीघ्र ही जर्ज-

रीजत हो कर बेकार हो जाता है और अखण्ड शील व्रत धारी अपने इन्ति कार्यकों निराबाध कर सकता है। इस वस्तु में सेन्मा (राममूर्ति) जो कि एक अद्भुत पराक्रमी समझा जाता है वह शील व्रतका ही महा प्रभाव है

कह एक कामी पुरुष यह कहते हैं कि समारमें आकर जिसने स्त्री विलास न किया उसने अपना जन्म व्यर्थ गुमा दिया इस डुनियामें कामिनेसें बन्कर कोई सुख नहीं है देखिये वह गजगामिनी; चन्द्रमुखी, कमलनयनी, स्वर्ण कलशोपमित पयोधरधारिणी गजशृंगारत् जह्वा मुगोजित आदि अनेक अलङ्कारोंसें अलङ्कृत है ऐसी सुन्दरीकों भुजालताओंसें गाढ़ आलिङ्गन कर कौन ऐसा होगा कि जा अपूर्व सुखका अनुभव न करे अर्थात् आनन्द रसमें जीलनेकी बाँझा न करे। जिसकी युवाऽस्याका यौवन ऊर रहा है वह अपने शरीरकों यदि अन्य तपादि क्रियाओंमें शोषण करे तो स्या उसमें बन्कर कोई मूर्ख शिरोमणि हो सकता है ? इत्यादि अनेक आक्षेप कर वैराग्य जट्ट करनेकी चेष्टा करते हैं

मेरे प्यारे वैरागियों ! स्या उपरोक्त कथन सत्य है ? यदि ऐसा ही हो तो अन्योंसे वचन। प्राणियों कों सर्वथा असम्भव हो जायगा मैं यह हर-गीज़ क्यास नहीं कर सकता कि मेरे प्यारे निरागी महाशय इसें स्वीकार करें लीजिये जरा उन कामान्ध पुरुषों के लिये नेत्राञ्जन देखिये:—

मुमुक्षु ! स्त्रीके समस्त शरीरमें तीन अद्भुत विशेष विकारी है:—१ मुख २ स्तन ३ जह्वा स्यान् इन तीनोंसें आदमी पागल होकर इसही में मोक्षसा सुख मानता है, इन तीन अद्भुतोंके अन्दर किस प्रकार दुर्गन्धिन मल जरा हुवा है यह सुन युक्तिजन तत्काल तटस्थ हो जाते हैं देखिये किसी वैरागी महा-त्मा का कथन है:—

(श्लोक)

स्तनौमास ग्रन्थीकनक कलशावित्युपमितौ ॥

मुखंश्लेष्मागारं तदपि च शशाङ्केन तुलितम् ॥

स्वन्मूत्रं क्लिन्नं करिवर करस्पर्धिजघन ॥

महोनिद्यं रूपं कविजन विशेषैर्गुरु कृतम् ॥ १ ॥

जावार्थः—स्त्रियों के स्तन मांस के लोंदे हैं उन्हें सुवर्ण कलशकी उपमा से उपमित करते हैं; मुख थूक और खकारादिका गूढ़ है उसे चन्द्रमाके सदृश बतलाते हैं और टपकते हुवे मूत्रसे जीगी जङ्घाओंको श्रेष्ठ गजके गुण्मा समान कहते हैं. देखिये स्त्रियोंका पुनः १ निन्दनीय स्वरूप होनेपर जी कवियोंने कैसा ब्रूया है क्या कवि कुशल तुम्हें इस प्रकार अघटित उपमा देते लज्जा प्राप्त नहीं होती ?

व्याख्याः—स्तन जो कि पुष्ट और उत्तंग दिख पड़ते हैं उनमें केवलमा सजरा हुवा है. यदि किसी प्राणीको मांसके मले हाथोंमें देकर उन्हें मथन करनेके वास्ते कहा जाय तो क्या वह स्वीकार करेगा ? नहीं १ स्वीकार करना तो दूर रहो किन्तु स्पर्श तक न करेगा वस इसही तरह विवेकी पुरुष सङ्गे हुवे डर्गधित मांसके लोंदे सदृश स्तनोंको मर्दन करनेकी कदापी इत्ता नहीं करते.

मुख जो कि गोरी चमकीसें मड़ा हुवा दिव्य कान्तिकों झलकाता हुवा दिग्मुक्तों फिदा कर लेता है वह केवल पीक और खकारसें जरा हुवा है. अर्थात् सङ्गे हुवे वीर्य और जिष्टाके जागोंसे जरा हुवा है यदि किसी पुरुषको इस प्रकार सङ्गे हुवे वीर्य और जिष्टाके जागोंसे जरे हुवे पात्रको ओष्ठों द्वारा प्रेम पूर्वक आश्वादन करनेका कहा जाय तो क्या वह अङ्गीकार करेगा ? अङ्गीकार करना तो दूर ही रहो किन्तु ऐसा सुनने मात्रसें ही जीमें घबराहट होकर तत्काल वमन हो जाती है. वस तो इसही प्रकार ज्ञानवान् पुरुष घृणोत्पादक (कमकमी दिलानेवाला) डर्गधित खकारादिसे जरे हुवे मुखको कदापि चुंबन करनेकी बाँछा नहीं करते.

जङ्घा स्थान जो कि गज गुण्मावत् प्रतीत होता है वह केवल मूत्र और लोहसें जरा हुवा है. किसी व्यक्तिको यदि कहा जाय कि मूत्र, लोह और

वीर्यादिसे जरा हुवा कीमे जिस्मे बिलबिला रहे हैं ऐसे कुण्डलमें स्नान करके अपने शरीरकों पवित्र करेंगे क्या ? नहीं १ स्नान करना तो दूर रहे किन्तु ऐसी डर्गवनीय बात तक मुननेकी इत्ता नहीं करते, बस इस ही तरह बुद्धि-वान मल मूत्रादिसें जरे हुवे (जिसकों देखने मात्रसे कमरुमी बूटती है) जहा स्थानकों मेवन करनेकी कदापि अनिलापा नहीं करते ।

उपरोक्त व्याख्यामें आपको मालुम हो गया होगा कि स्त्रीके कैसे १ डर्ग-नित स्थान है तो जी हाय हाय ! ठी ठी !! मूर्ख लोग जिष्टामें मुह देनेमे नहीं शर्माते इन्डियजीन पुरुषोंके तो डर्गय कामदेव सदैव किकर रहता है देखिये:—

एक समयका जिक है कि परम परमात्मा श्री पार्श्वनाथ स्वामी किमी स्थान पर अपने कायोत्तमर्गमें सन्निष्ट थे इधरसे कामदेव और रति पर्यटन कर रहे हुवे आ निकले—उनके आपुसमें इस प्रकार प्रश्नोत्तर हुवे:—

(श्लोक)

कोऽयं नाथ जिनोऽनवेत्तववशी हूँहूँ प्रतापप्रिये ॥
 हूँहूँतर्हि विमुञ्च कातरमते गौर्या बलेपक्रियाम् ॥
 मोहोनेन विनिर्जितः प्रचुरसोऽतत्किङ्कराः केवयं ॥
 इत्येव रतिकामजडप त्रिपयेपार्श्वप्रचुरः पातुनः ॥ १ ॥

इस अप्रति श्लोकका जाचार्य प्रश्नोत्तरमें ही दिग्विज्ञाना समुचित मम ऊत है:—

रति:—हे नाथ ! यह मन्मुग यह हुवे कौन है ?

कामदेव:—प्रिये ! ये भिन जगवान् हैं

रतिः—क्या ये आपके वशीकृत हैं ?

कामदेवः—हे प्रतापशालीप्रिये ! हूँ. हूँ.

रतिः—हे कायर पुरुष ! यदि हूँ हूँ करता है तो अपना शक्ति वाण्डियों नहीं ठोफ़ता.

कामदेवः—हे प्राणवल्लभे ! इन महात्माने विषरूप मोहकों सर्वथा त्याग कर दिया है इसलिये अपन तो इनके सदैव किङ्कर हैं. महानुभावों ! इस प्रकार रति और कामदेवकी वार्त्तालाप विषय वाले श्री पार्श्व प्रभु सदैव हमारी रक्षा करो.

इस श्लोकसे आपको सुविदित होगया होगा कि जिन महात्माओंने पुनः १ निन्दनीय स्त्री संसर्गकों सर्वथा परित्याग कर अखण्ड शील व्रत धारण किया है उनके सेवाकी इन्द्र, चन्द्र, नागेन्द्र जी निरंतर वाँछा करते हैं. एक इस शील व्रतसे अनेकशः गुण प्रकट होते हैं जिसका वक्तव्य मेरी सामान्य लेखनीसे बाहर है तदपि यत्किञ्चिद् उद्धृत करता हूँ:—

(श्लोक)

हरतिकुलकलङ्कुलुम्पतेपापपङ्कः।सुकृतमुपचिनोतिश्लाघ्यतामातनोति।
नमयतिसुरवर्गहन्तिदुर्गोपसर्गस्त्वयतिशुचिशीलंस्वर्गमोक्षौसलीलम्

जावार्थः—यह शीलव्रत कुलके समस्त कलङ्गोंको हरण कर लेता है तथा पापरूपी कोचरुकों विनाश कर देता है और सत् कृत्योंको वर्धित करता है तथा प्रशंसा विश्व विस्तरित करता है एवं महा ऋद्धिवन्त देवताओं (इन्द्रादि समस्त) को नमन करा देता है तथा घोर उपसर्गोंको मार जगाता है और अन्तिममें जघन्यसें स्वर्गवास और उत्कृष्टसें अपवर्ग (मोक्ष) की विचित्र लीलाओं रचता है अर्थात् अनन्त सुखकारी सिद्धि पदकों प्राप्त करवाता है.

उपरोक्त समस्त व्याख्यासें आपको सम्यक् प्रकारेण विज्ञात हो गया होगा कि शीलव्रत एक कैसा उत्तम रत्न है इस व्रत रत्नको आप परमवैरागी पूज्यगणाऽधीश्वर अकथनीय कटिवद्धता पूर्वक पालन करते थे धन्य हो ! आपके अखण्ड, शीलव्रतका महा प्रभाव, विश्व प्रशशनीय है प्यारे, गुण ग्रहियों ! अब मैं आपके दिव्य तपश्चर्याका पाठकोंको, श्लाघनीय-परिचय-दिलाता हूँ—

॥ दिव्य तपस्या ॥

जिसके जरिये अष्ट कर्मों को तपाना यानी निर्जरना अर्थात् विनाश करना उसें तपस्या कहते हैं जैसे काष्ठके अन्दर अग्नी, डालनेसे जलबल कर खाक हो जाते हैं; इसही तरह तपस्यारूप अग्नीसें काष्ठरूप कर्म नष्टताको प्राप्त होते हैं अर्थात् निर्मूल हो जाते हैं अथवा इच्छारोधन करना उसें तप कहते हैं

आप पूज्यगणाऽधीश निम्न लिखित द्वादश तपका सम्यग् आचरण करते थे:—

(गाथा युग्मम्)

अणसणमुणो अरिआ । वित्तीसंखेवणं रसच्चाओ ।

कायकिलेसोसंलीणं । आयवज्जो तवोहोई ॥ १ ॥

पायच्चित विणए । वेयावच्चं तहेवसज्जाओ ॥

जाणं उसग्गोविअ । अग्नितरो तवोहोई ॥ २ ॥

अर्थ:—१ अनसन २ उणोदरी ३ वृत्ति-संक्षेप ४ रसत्याग ५ कायलेश ६ सलीनता ये ठ बाह्य तप होते हैं तथा १ प्रायश्चित् २ त्रिनय ३ वेयावच्च ४ सजाय ५ ध्यान ६ उत्सर्ग ये ठ अन्त्यन्तर तप होते हैं

इन वारह प्रकारके उग्र तपका आप पूज्य गुरुवर्य किस १ प्रकार आचरण करते थे उनका किञ्चित् खुलाशा पाठकोंके अजिमुख करता हूँ:—

(१) अनशन:—अहारका त्यागकना उसे अनशन तप कहते हैं. आप महा तपस्वीने उपवास, बेला, तेला, अछाई, पकड़मण, मास दमणादि पर्यन्त बहुतसी तपस्या कर पुजलको निर्विकारी बनाया. जिस वख्त आप उपवासादि व्रत करते थे वड़े ही संतोष पूर्वक अपने कालकों निर्गमन करते थे.

वर्तमानमें कइ एक महानुभाव उपवासादि व्रत कर खानपानकी चेष्टा किया करते हैं यानी बाहरसे तो उपवासादि के प्रत्याख्यान (नियम) कर लेते हैं औ मन उनके बाज़ारमें हलवाईयों की डकानों पर घूमा करते हैं और यह विचार किया करते हैं कि हे ईश्वर ! आजका दिन बड़ा लम्बा हो गया आज तो सूर्य जी ऊँघता १ चलता है इस प्रकार रात्रिमें जी घुन-घुना हट्ट करते हैं कि कब दिन ऊगे और रूठ जोजन महाराणाकों मनावें. साथकी साथ उपवासके दिने यह जी चेष्टा करते हैं कि कल पारणके लिये अमुक १ रसवती जोजनकी तैयारीके लिये आजही सर्व बन्दोबस्त कर लेना चाहिये नहीं तो पारणमें विलम्ब हो जायगा इसादि अनेक विकल्प कर उपवासके फलकों नष्ट कर देते हैं.

सच्च है ! ऐसे उपवामादि व्रतसें कुछ जी फल नहीं हो सकता. इधर जरा जैनेतर लोगोंकी तरफ़ फ़ुक कर देखते हैं तो एक विलक्षण ही गम्मत नज़र आती है. कहावत मशहूर है कि “जैनियोंका वास और कायाका नाश वैष्णवका वास और पैसोंका नाश.”

विरले पुरुषोंकों ठोफ़कर जैनेतर लोग जब एकादशी वग़ैरा का उपवास करते हैं तब लड्डु, पेड़े, कलाकन्द, पेठे और सिंघाडेका हलवा वग़ैरा अनेक मिष्ठान पदार्थोंका सेवन करते हैं तथा आम, केले, सन्तरा, अनार, जामन, तरबूज, खरबूज, ककड़ी वग़ैरा रसाल खाकर मौज उठाते हैं एवम्

।कसमिस, पिस्ते, काजु, नेजे और वादाभादि वस्तुओंको सेवन कर उग्र तपके फलकी आशा रखते हैं तथैव मलाईका वर्फ, रुचा वर्फ और अमनिया ठण्डा (कच्चा) जल पानकर आनन्द मानते हैं कइ एक लोग दिनभर जूखे मरकर रात्रीको जोजन करते हैं और कइ एक ऐसा जी कयन करते हैं कि यदि फल-हार (अन्नको ठोकर शेष मिष्टान, मेवा, फलादि) न करें तो वह उपवास गिनतीमें नहीं हो सकता अर्थात् उसमें हमारे मनोवाठित नहीं मिल सकते हैं

बहावहा क्या खूब ! एकादशीकी टादी द्वादशी सदृश मौज उठाने पर जी यथेष्टा फलकी अजिलापा करते हैं उफ ! मैं जूला उपवासमें जो वे फल-हार करते हैं वह ठिक है उस दिनके जोजनका नाम वेशक गुण निष्पन्न है मुनिये भरा ध्यान पूर्वक "फलहीयते इतिफलहारः" जिस जोजनसे सम्पन्न इष्टता हरण हो अर्थात् नष्ट हो उसे फलहार कहते हैं अस्तु कुठ जी हो किसी पर कटाक्ष करना उचित नहीं मैं तो सीर्फ मेरे प्यारे गुणग्राही तटस्थ पाठकोंको इतना ही ध्यान दिलाना चाहता हूँ कि ऐसे त्रतसे अपनी इष्टता हरगीज नहीं हो सकती उनका त्रत करना गोया दिलकोंबहलाना है मुझे पूर्ण आशा है कि विद्वान् पाठक वर्ग अवश्य इस पर लक्ष् देकर वास्तविक नियमकों विचारेंगे

कइ एक प्राणी अपने यशकीर्तिके निमित्त, उपवाम, बेला, तेला, अ-ठाई, पकड़मण, मामकमणादि करते हैं कि जिससे लोग मुझे खूब, पूजें, मानें, मेरी सेवा, सत्कार करें और मेरी कीर्ति जिनियामें चो तर्फ फैल जाय यह जी प्रायः निष्फलरूप ही है

हमारे वे पूज्य महा तपस्वी उपवासादि त्रतके दिन कैमी १ शुभ जावनाए जाते थे जिसे मुनकर प्राणी वैराग्य रसमें जीलने लग जाते हैं मुनिये उस दिलचम्ब अपूर्व जावनाका एक अमृत बिन्ड आपको जी आस्वादन कराते हैं:-

हे चेतन ! आजका दिन अहोजाग्य है आज तेरे अनन्त पुण्याइका उदय है की उपवासादि त्रत उदय आया अनादि कालसे तेने अनेक योनियोमें अनेक शरीर धारण किये और नाना प्रकारके जोजनादि जोगकर उदर पूर-

णाकी, यदि उसकी गिनती करने लगे तो कई मणोंसे कणोंसे तक जी नहीं ठहरती. पानीका यदि हिसाब लगाया जाय तो समुद्रके समुद्र तक खाली कर दिये होंगे मगर तुझे अबतक संतोष न हुआ; जवान्तरकों ठोकर यदि इसही जवका हिसाब लगाना चाहें तो कुठ यथावत् पता नहीं लगता देख यह उदर कितना गहरा है मुबुह खाया शांमको फिर खाली, शांमको खाया मुबुह फिर खाली उपासका नाम मात्र सुनने से दशः कोश दर जागता है तू अन्नका की-मू सदैव अन्नमें ही प्रसन्न रहता है जिस प्रकार जिष्टाका कीमू जिष्टामें ही खुश रहता है कच्ची उसकों उच्च स्थान पर पहुँचनेका कहो तो कच्ची नहीं मानता इसही प्रकार तुझे कच्ची व्रतका कहते हैं तो हृदय वज्रसा घाव पड़ता है हे आत्मा! तूझे इतना जी खयाल नहीं होता कि ऋषजदेवादि तीर्थंकर, पुण्डरीकादि गणधर श्रुत केवली, दिग्विजय आचार्य और अनेक मुनि महात्माओंने कइ एकप्रकार तपाराधन कर अपनी देहका कल्याण किया है और अन्त में यावत् उन्नत अनशन कर परम पदकों हाँसिल किया है तुझे आज उपवासादिमें इतना कष्ट प्रतीत होता है यह केवल तेरी ढिठाई है तू इस वख्त संतोष कों अवलम्बन कर पूर्वजोंकी अनुमोदन करके आनंद रसमें जील, तुझकों वारः यह सौजाग्य प्राप्त नहीं हो सकेगा. देख अखीर तूझे इन पौत्रलिक पदार्थोंसे जुदा हुए बगेर सिद्धि पद कच्ची नहीं मिल सकता तो क्योंकिर अज्याससे वंचित रहता है यह मानव जव, पुनः १ तुझकों हरगीज प्राप्त नहीं हो सकता. यह पौत्रलिक पदार्थ तेरी नहीं है क्योंकिर इसमें रक्त हो रहा है अब तू इनसे तवियत हटा और संतोष समुद्रमें निमग्न हो. इत्यादि नाना प्रकारसे जावना जाते हुवे अपने अमूल्य टाड्मकों निर्गमन करते थे.

(१) उणोदरी:—हुदा, पिपासाऽऽपूरित जोजनसे न्यूत करना उसे उणोदरी कहते हैं. वे धर्मावतार प्रायः कइ बार इच्छित जोजनसे खास तौर पर (Specially) कम कर आहार, पानीसे तवियत हटाते थे और उत्तमः जावना जाकर अपने मानवजवकों सफल करते थे.

(३) वृत्ति संक्षेपः—इव्य, क्षेत्र, काल और जावसे रही हुई व्यवस्था कों कम करना उसे वृत्ति संक्षेप कहते हैं.

आप जवोद्धारक १ इन्धन तो जौगिक यानी खानपानकी वस्तुओंको संक्षेप करते तथैव औप जौगिक यानी उपधी, (उपगरण-बस्त्रादि) वगैराका नियम करते थे १ क्षेत्रसे आज इतने घरसे ही आहार पानी लाना और न मिलने पर उपवास व्रतकर जाना तथा गमना गमन इतने क्षेत्र प्रमाणसे अधिक नहीं करना २ कालसे अमुक समय पर ही गौचर्यादि लाना न मिलने पर क्षेत्रवत् ४ जावसे उठलते हुवे क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेषादिकों उपशान्त कर शनैः १ निरावाध कृपादेना इस प्रकार वृत्तिका संक्षेप करते हुवे यह जावना जाते थे किः—

हे चेतन ! इस डनियाके अन्दर मुख्य दो शत्रु है प्रथम राग द्वितीय द्वेष जिसमें जी राग बड़ा ही ऊर्ध्व है हम ही घोर शत्रुने तुझे अनन्त जब रुलाया गृहस्थाश्रमके अन्दर किसी समय पितासे, कजी मातासे, कजी चाई, बहिनसे, कजी चापासे कजी पुत्र, पुत्रीसे और कजी स्नेही मित्रादि अनेक सम्बन्धोंमें मोहित कराकर आसक्त किया उसही लिये तूने उत्कृष्ट सुख उसही मे स्वीकार किया और दिन बदिन प्रबलताको साक्ष देनेमें कटिबद्ध रहा इधर श्रमणपदमें स्वार्या होकर गुरुसे प्रेम वक्तानेमें उत्कृष्ट इच्छुक हुवा तथा गुरु चाई, शिष्य, शिष्याओंकी व्यावहारिक सेवा जम्मित देख गाढ स्नेहमें चरुचूर हुवा और मोक्षके सुखका अनुभवन यही मानने लगा अशनादि चतुर्विध जोजनके आस्वादनमें लिप्त रहा, कोमल स्पर्शांय वस्त्रादिकोंका सुख अपूर्व रूपसे मानने लगा, मरानादिकी उबिर्यों पर वेचेनीसे वियोग किया अथात् प्रेमानन्द मानने लगा इत्यादि अनेक जोगोपजोगीय पदार्थोंपर पेसा गाढ ममत्व रहा कि जो वक्तव्यसे बाहार है हे अवधु ! तुझे यह आर्य क्षेत्र, उत्तम कुल, जैनधर्म और श्रमणपदादि उत्तमोत्तम योगवाइयें वार १ नहीं मिल सकेगी जरा अपने हृदय पर हाथ धरकर विचार कर की तू कौन है और वे पदार्थ क्या हैं ! हे आत्मा ! तू अनन्त ज्ञान, दर्शन, चारित्र और वीर्यमय, अक्षय, अविनाशी, अव्याबाध, निर्विकार, निराकृगदि समस्त उत्कृष्ट गुणोपेत है और ये जितनी पौनलिक पदार्थें है वे सर्व जन्मात्मक है क्या कोई ज्ञानी किसी मूर्खकी सगतीसे खुश होता है ? नहीं १ कदापि नहीं खुस होना तो दूर रहे किन्तु शठ मात्र ही कणोंमें शूल सदृश डःखदाई होते है

तो हे चेतन ! ये जितनी ही जोगोपजोगीय पदार्थें हैं उससें राग प्रणती दूर कर चिदानंदमय हो जा. तेरे इस जववृद्धि रागके निकंदन होनेसे वेष स्वतः ही नष्ट हो जायगा जैमें जड़के काट देनेसें वृक्ष स्तम्भ, शाखाएं, पत्र, फूल, फलादि स्वयं विनाश हो जाते हैं. इसादि शुद्ध जावना द्वारा रागवेषके आश्रवको निरोधकर संचितरसकों पतला करते थे. धन्य हों ! मुनि रत्न आप कृत पुण्य हो !

(४) रस त्यागः—रसवती पदार्थोंको परित्याग करना उसे रस त्याग कहते हैं.

आप निर्विकारी महानुभाव दूध, दही, घृत, तैल, मिष्ठान और पक्वान्न इन षट् विगयकों कश्वार त्याग कर देते थे और निरंतर एक दो विगयसें प्रायः विशेष सेवन नहीं करते थे. किन्तु षट् विगय हमेशां ठोढ़नेकी उत्कृष्ट खप (कोशीस) करते थे.

(५) काय क्लेशः—किसी तरह शरीरकों कष्ट देकर सहनशीलताकों बनाना उसे काय क्लेश कहते हैं.

आप पृथ्वीसम सहनशील नियमित समयपर लोच (बाललुंचन) करवा कर मनके चंचल वेगकों स्थिरीभूत करते थे. आप जवतारकने ३६ वर्ष ४ माह और १४ दिवश अखण्ड चारित्र पाला इसमें रोगादि कष्टावस्थाओं में जी आपने मुष्मन् (रासादि प्रयोगसें बाल निकलवाना) कभी न करवाया यह एक उत्कृष्ट चारित्रका परिचय है.

आपके आतापना तपका अपूर्व गुण मुन प्राणी आश्चर्य समुझमें गोता मारने लग जाते हैं. अथीर न होईयेगा लीजिये उस उत्तम गुणकों सुनकर अपने उत्तम कर्ण युगलोंको आनंदित कीजिये औ मुक्त कण्ठसें अनुमोदन कर अपनी कर्म राशीकों क्षय कीजिये.

सर्व परिसहोंमें उष्ण परिमह बड़ा तेज है जिसका उपचार जी दुःसाध्य है

वैशाख जेष्ठमें सूर्य अपने प्रबल कोप द्वारा ऐसा प्रचण्ड आताप फैलाता हुआ घूमता है कि जिस तेजकों देखनेसे प्राणीके नेत्रोंमेंसे जल बहने लग जाता है और उनमें स्पर्श करनेसे पेर जलने लगते हैं, शिर जुंजने लगता है, शरीरमें ज्वाला पैदा हो जाती है, हृदय फट्फटने लगता है यहाँ तककि मनुष्यके प्रत्येक अवयवमें घबराहट होने लगजाती है उस वस्तु यदि किसी पुरुषको कहा जायकि तुम आध घटा काउसग कर खड़े रहो तो अन्वत् तो उसका सहामही नहीं हो सकता कदाचित् सख्त दिल होकर खड़ा जी रहै तो मिष्टोंमें मूर्छित हो धरणी बस होना पड़ता है ऐसे उग्र आतापको सहन करनेमें अगर वीरत्न हो तो आसपासमें यही एक महात्मा हो सकते हैं

सज्जनो ! आप दृढ़ हृदयी मरस्यलके सुप्रसिद्ध ग्राम फलार्कि डलके योधपुरके पश्चिम जागीय उन्नत धोरे (धलके ढेर) जो कि वैशाख जेष्ठमें अग्निमें जो जियादे गर्म हो जाते हैं जिसके सामने मामूली आदमी ठहरनेको सँभाला असमर्थ है ऐसे गगनी हुई (जालोजाल) अग्नि सदृश उन गोरों पर मध्याह्नकालमें तीन ७ चार ९ घंटे लेट जाया करते थे और कच्ची कायोतमर्ग कर व्यानाऽऽरूढ हो जाते थे किमी वस्तु धर्मशालाके चादनी पर ही डाँसल उष्ण पापाणादि पर पूर्ववत् आतापना लेते थे इस वस्तु दशों दिशाओं की आनाप अपनी प्रबल शक्तिद्वारा टक्कर मारकर पस्त हिम्मत करनेका सहास करती किन्तु उन वीर पुरुषके सामने उसकी सर्वाऽऽशाए निष्फलताको प्राप्त होती थी अश्ला ! आपने इस प्रकार कड़वार आतापना ग्रहण कर अपनी देहका उच्चार किया मैं इस बातको स्फुट तौरसे कह सकता हूँ कि जैन काम्यनिटी (जैन समाज) में आसपास वर्षों में आपके सदृश इस तौर पर उग्र तपस्वी न हुआ होगा आप अपने शरीरकी कुठ जी परचाह नकर इस प्रकार तपाराधनमें कटिबद्ध रहै धन्य है ! आपका माधुर्य विश्व आदर्शनीय है

(६) संलीनताः—अद्रोपाङ्गको संकुचित करनेमें सलगतता हो उसे सलीनता कहते हैं

वे जिनेन्दीय महानुभाव पञ्चेन्दीयके नेरीस त्रिपयोंसे अनाकाङ्क्षित होकर

अपनी स्पर्शेन्द्रियादि पाँचोंका निग्रह करते थे अर्थात् उनकी विकारी दशाओं हटाकर उन्हें उच्चमाचरणोंमें संयोज्य करते थे.

(७) प्रायश्चितः—किसी अतिचार या अनाचारकी आलोचना (शास्त्रानुसार दण्ड) लेना उसे प्रायश्चित कहते हैं.

महानुजावों ! प्रायश्चितका लेना कुछ सहल नहीं है कारण कि अपने दोषोंको स्फुट करना बड़ा ही मुशिकल है वर्तमान जमानेकी गंधीली वायु इस प्रकार ऊपट मार रही है कि सैकड़ों मनुष्योंके खयाल विपरीत कर दोषोंको जाहिर नहीं करने देती. और दिलमें बंध विकल्प पैदा करती है कि मैं उत्तम कुलमें पैदा हुवा, मेरे घरानेकी कुलीनता जगझाहिर है मैं राजा, महाराजा अथवा शेर, साहूकार पदवी को धारण करनेवाला इस प्रकार विपुल वैभवका भोगवनेवाला मैं सर्वत्र सन्माननीय इज्जतको धारण करनेवाला किस प्रकार अपने गुह्य पापोंको प्रकट करूँ अथवा—

मैं दृढ धर्मी कहलाने वाला, मैं द्वादश व्रतोंको अङ्गीकार करने वाला श्रावक होकर एवम विश्व प्रशंनीय पञ्च महा व्रतोंको धारण करने वाला मुनिराज होकर किस प्रकार अपने गुप्त दोषोंको जाहिर करूँ मेरी शान्तता, मेरे शुद्ध आचरण, मेरी यश, कीर्ति विश्व विस्तीर्ण हो रही है ऐसी अवस्थामें अपने ठुपे ठुपे पापोंको हरगीज्ञ जाहिर नहीं करना चाहिये. अगर लोग सुनेगे तो मुझे बेशरम, धर्मभ्रष्ट, आचार च्युत और पासछया (धर्म मार्गमें रहकर क्रियाभ्रष्ट इव्यलिङ्गी अतिचार अनाचार सेवन करने वाला) आदि डःसह्य अनेक कलङ्कोसें कलङ्कित करेंगे इस प्रकार अनेक डष्ट विचार कर अपने पोशीदे आज्ञावोंको (पापोंको) प्रकट नहीं करता है.

जो प्राणी अपने अतिचार, अनाचारोंको गुप्त रखकर बगैर आलोचना मरण शरण हो जाता है वह “रूपी राजाके सदृश” अनेक जव रखता है.

मुझे इस स्थलपर इतना अवश्य कहने दीजिये की जमाना बहुत नाजुक है लिहाजा सर्वक समझ अपने अप्रकट दोषोंको जाहिर करना सर्व साधारणके

वास्तु डःमाध्य है ऐसी व्ययस्यामें ऐसे महानुजायोंके सम्मुख अपने अनिचार, अनाचारोंको प्रकट कर आलोचना ग्रहण करना चाहिये कि जो कमसे कम इतने गुणोंसे अग्रज्य मुशोजित हों

- १ अपने पूर्ण विद्वत्तासी हों
- २ धर्मके दृढ श्रद्धावन्त हों ..
- ३ कर्मराजकी विचित्रताके सुविद्ध हों
- ४ धृष्टाके अनाधी हों
- ५ अनादर करनेमें सदैव पराङ्मुख हों
- ६ उचित आलोचना दाता हों
- ७ संतोष जनक उपदेश देकर आत्माको आनंद देनेवाले हों

इस प्रकार गुणशील उपकारी पुरुषका योग मिलनेपर जी जो प्राणी अपने गुप्त पापोंको प्रकटकर आलोचना ग्रहण नहीं करते हैं वे जब १ में असद्य डःखमें डःसित होते हैं

वन्ध है ! उन आत्मार्थियोंको कि जो विलकुल विचार न कर तत्काल अपने गुरु महाराजसे सजा अन्वित्यार कर अपनी आत्माको निर्मल करते ये क्या ही उत्तम हो की वर्तमानमें जी जन्मजनको बसा सांजाग्य प्राप्त होजाय

वर्तमानके लिहाजमें जी उपरोक्त कयनानुसार योग मिलनेपर यदि दण्ड अङ्गीकार कर लें तो जी मुझ प्रशंसनीय है और यदि पूर्व महानुजायोंकी तरह निर्मल होकर अपने दोषोंको पबलिकमें जाहिरकर आलोचना ग्रहण करें तो विश्व प्रशंसनीय व शतशः धन्यवादके पात्र है हमारे गुरुदेव जिनकी कि हम न्याय्यता कर रहे हैं उनकी प्रणाली इस प्रकार थीः—

वे त्रिकी मुख्य अपने अनुपयोगतामें लगे दूबे दोषोंका तत्काल ही अनुजायों द्वारा शास्त्रानुसृत मापद्वित ग्रहण कर पत्र दशाको अग्रगण्य करने थे—यै इस स्थानपर यह बात अवश्य ज्ञाति कहेगा कि चारित्र्य रत्न के एक उत्कृष्ट धाराधक थे कि जिसमें अनिचार या अनाचार उन पर हुमना करनेका सर्वथा महाम नहीं कर सकते थे तदपि नापम्पिकाऽऽभ्यासे कारण उपरोक्त सम्बन्ध दर्शाया है

(८) विनयः—विशिष्ट रूपसे मोक्ष मार्गमें ले जावे उसे विनय कहते हैं.

वे शान्त स्वरूप गुरुवर्य अपने गुरु महाराजका तथा रत्नादि मुनिवरोंका इस प्रकार विनय करते थे कि जैसे साक्षात् गौतमस्वामी वीण परमात्माका ही न करते हों. तथैव सिद्धान्तोंका बहु मानकर अपनी आत्माको विनय गुणमें रमण कराते थे.

महानुजावों ! पवित्र आगमोंका फरमान है कि “विणयमूलो धम्मो” यानी धर्मका मूल विनय ही है जब तक प्राणी मानरूपी अजगरके मुखसे बाहर न निकल आवे तहां तक विनय गुणकी अस्मिता है. कहा है “माणे विणय-विणासई” मानसे विनय नाश होता है और विनयसे विद्या यावत् मोक्षके अनंत सुखोंसे वञ्चित रहना पड़ता है. इस लिये:—

हे चेतन ! तुझे मान करना उचित नहीं क्योंकि अहंकारसे नम्रता नहीं हो सकती और नम्रताके बगैर विद्या नहीं पा सकता क्योंकि मुलायमता अगर होगी तो किसी प्रकार गुरु महाराजको खुशकर ज्ञान संपादन कर सकता है और विद्याके विधुन समकित हाँसिल नहीं कर सकता चूँके अगर ज्ञानरूपी प्रकाश होगा तो मिथ्यात्वरूप अन्धकार नष्ट कर सकता है एवम् समकितके बगैर यथाख्यात चारित्र नहीं मिल सकता कारण की वीतराग देवके पवित्र वचनों पर दृढ़ श्रद्धा हुए बगैर चारित्र अङ्गीकार नहीं हो सकता तथा चारित्रके बिना मुक्ति नहीं हो सकती क्यों कि जिनेश्वर भगवान् ने जैसा फरमान किया है वैसा ही आचरण करे तब अष्ट कर्म विध्वंस कर परमद प्राप्त करता है ऐसे मुक्तिके शस्त्र अनंत सुख तू बगैर इन रत्नोंके हाँसिल किये कौन युक्तिसँ संप्राप्त कर सकता है ? कहनेका तात्पर्य यह है कि बगैर विनयादि गुणके जीव निर्वाण पदको कदापि संपादन नहीं कर सकता है.

पवित्र जैन सिद्धान्तोंमें श्री उत्तराध्ययनके प्रथमाध्ययनमें तथा दशवैकालिकके नौमें अध्ययनादिमें किस प्रकार विनय गुणकी गुणाऽऽवली गाई गई है की जिसे सुनने मात्रसे प्राणीके रोंम शंहर्ष रस सँ जर जाते हैं तो अनुजवके आस्वादनका कथन ही क्या ? विनयाऽनुजवी महात्मा तो सदैव दिव्य आनंद लहरोंमें लदलहत हैं.

मेरे प्यारे पटुताजिलापियो ! शिष्य वर्गकों ज्वतारक गुरु महाराजके साथ बैठनेमें, ऊठनेमें, चलनेमें, सोनेमें, खाने, पीनेमें, आवागमनमें और सामान्य सजापणमें तथैव प्रत्येक मार्थनामें एव पठनादि अवस्थाओंमें और उनके फरमानकों शिरोधार करनादि अनेक क्रियाओंमें विनय माँचकर अपने मानवजवकों सफल करना सुखकारी है यह विषय बहुत गहराव उच्च होनेपर श्री गुरु महाराजके चरणोंका अवलम्बनकर 'गुरु शिष्यका अपूर्व दृश्य' इस हेमिंगवाले विषयमें विनय पुष्पोंकों उतप्रोत कर किञ्चित् रूपण पाठकोंके अजिमुख प्रकाशित करता हूँ

(गुरु शिष्यका अपूर्व दृश्य)

अतीव मनोहर गुर्जर देशमें सिद्धपुरपट्टन नामक एक विशाल शहर है वहाँपर अनेक जिन मन्दिर उन्नत वज्रा, कलश और तोरणादि करके सुशोभित है कितने ही जैन धर्मानुरागी श्रावक वर्ग निवास करते हैं यह शहर किसी जमानेमें साक्षाद् इन्द्रपुरीसा मनोहर प्रतीत होता था

एक समयका जिक्र है कि अनेक पवित्र मुनि वर्गसें सुशोभित एक दिव्य ज्ञानधारी आचार्य महाराज निवास करते थे उनके बहुतसें शिष्य सुविनीत होनेपर श्री एक विनयशोल नामक विद्वान् शिष्य अत्यन्त नम्र गुणसें विभूषित था; जरा देखिये उसके विनयकी तर्फ लक्ष दीजिये:—

वह महानुभाव अपना आसन ऐसे स्थानपर रखता कि गुरु महाराजसें न तो अति निकट और न अति दूर था किन्तु माध्यस्थानमें गुरुवर्यकी दृष्टिमें निवास करता था

मातः कालमें ब्रह्म मुहूर्त्तके अन्दर जाग्रित होते ही प्रथम ही प्रथम गुरु महाराजकी विधि पूर्वक सुखशाता पूज अपनी आवश्यक क्रियामें प्रवृत्त हो जाता पश्चात् ठीक प्रकाश होनेपर आदेशकों पाकर गुरु महाराजके वस्त्रादिकों की जयणा युक्त प्रतिलेखन कर अपनी उपधीकी पदिलेखण करता तद-

नन्तर गुरुमहाराजके समीपमें आकर नम्रता पूर्वक स्वाध्याय कियाकर सविधि वंदना नमस्कार करनेके पीछे यथाशक्ति प्रत्याख्यान अङ्गाकार करता. जिस वरुत वह वंदना करता था शरीरके प्रत्येक अङ्गको इस प्रकार मोड़ता था कि मानो उसमेंसे साक्षाद् विनयरस ऊर रहा हो.

पश्चात् दो पात्रोंमें जल भरकर गुरु महाराजके साथ स्थण्डिल भूमि जाता नियमाऽनुसार इस कार्यमें निवृत्त होकर वापिस उपाश्रयमें प्रवेश होते ही गुरु महाराजके समीप इरियावही (गमनागमनकी आलोचना विधि) प्रतिक्रम कर आज्ञानुसार अपने आसनको ग्रहण करता हुआ स्वाध्यायमें संलग्न हो जाता.

अहारपानीके समय गुरु महाराजके निकट आकर दोनों कर जोड़ मस्तक नीचाकर यह प्रार्थना करता कि:-हे स्वामिन् ! यदि आप सर्व कार्यमें निवृत्त हों अर्थात् कोई कार्यमें बाधा न पहुँचती हो तो ज्ञेयार्थ पधारनेका अनुग्रह फरमाइये गौचरी हाजिर है समय आने पहुँचा सर्व मुनि मण्डल आपकी राह देख रहा है सुनतेही इन मधुर वचनोंके वे पूज्यआचार्य महाराज तत्काळ उस स्थानसे ऊठकर गौचरी गृहमें पहुँचे सर्व मुनिराजोंने सत्कार पूर्वक स्थानाऽऽपन्न किये सर्वसे आदिमें गुरुवर्यके रुचिकर ज्ञेय उनके पात्रमें प्रक्षेप किया तदनन्तर नियमानुकूल सर्व मुनियोंको समर्पण किया. अबलही अबल सर्व मुनिराजोंने गुरुमहाराजकी ज्ञावना जाई बाद परस्पर ज्ञावना जाकर गुरुवर्य की आज्ञानुसार सानंद आहार पानी किया, पश्चात् सर्व महानुभाव अपने-अपने कार्यमें प्रवृत्त हुवे.

मध्याह्नकालमें वह सुविनीत शिष्य पठनार्थ गुरु महाराजके सेवामें समुपस्थित हुआ यथा विधि वंदना नमस्कार कर प्रार्थना की कि हे जवतारक ! यह आपका चरणोपासक सेवक हाजिर है अनुकम्पया वाचना प्रदान करनेका अनुग्रह फरमावे.

सुनतेही इन कोमल वचनोंके उपगारी गुरु महाराजने आसनपर बैठनेकी इज्ञाजत वक्षीस की.

इस अवसरमें जैसे चातक, अपना मुख पसारकर मेघकी उत्कट इच्छा करता है इसही तरह वह शिष्य कच्ची गोछायाऽऽसन, (दोनों जानु खड़े हुवे) कच्ची उष्ट्राऽऽसन (दोनों जानु पृथ्वी पर लगे हुवे) और कच्ची इन्द्राऽऽसन (बाया घुटना खड़ा हुवा) इत्यादि किसीजी विनय आशानको ग्रहणकर दस्त व दस्त मस्तककों झुकाया हुवा यह जानना जाताथा कि कब गुरु महाराजके मुखकमलमें सें अमृत वर्षा हो कि मैं उसें पानकर अपने मानव-जवकों कृतार्थ करूं

इधर गुरु महाराज अपनी अवर्णीय उपकार-बुद्धिसे यह विचार रहे थे कि मैं शीघ्र ही जिन आगमका सुधारस पानकराकर इस की तीव्र पिपासा को शमन कर दू—

अहाहा ! धन्य हो ! गुरु शिष्य हों तो ऐसेही हों ऐसेही परम दयालु गुरु महाराज व ऐसाही सुविनीत शिष्य यह वही मशाल हुई कि मानो मोतियोंके हारमें रत्न जड़ना है इस स्थलपर यदि हम धीर परमात्मा व गौतमस्वामीकी घटना करें तो असंघटित न होगी मैं इस बातको दावेके साथ कह सकता हूँ कि ऐसे अनुपमोदनीय सम्बन्धमें अवश्य ही साफल्यता हो सकती है ।

कृपालु गुरु महाराजने पठाना आरम्भ किया प्रत्येक विषयको इस प्रकार समझते थे कि उस शिष्यका आनंद मस्तक घूमने लग जाताथा इस वरुतका आनंद अनुजवि लोगही जान सकते हैं ।

पढ़ते श एक स्थलपर ऐसा प्रकरण आया कि जहाँतक प्राणी मर्यादा न करले तहाँ तक चतुर्दश लोकके समस्त पदार्थोंकी आश्रव क्रियाका मापधित लगता है यह बात पढ़ते ही गुरु मुखसे विशेष खुलासेके लिये बड़े ही नम्रता पूर्वक दरियाफ्त करता है

तत्त्वान्निलापियों ! उन दोनो महानुभावोंके इस प्रकार परस्पर प्रश्नोत्तर हुवे जरा ध्यान पूर्वक पढ़ियेगा

शिष्यः—हे विशालज्ञानी ! जिनेश्वर कथित जितनेही विषय हैं वे

अक्षरशः सत्य हैं और उनपर मुझे पूर्ण श्रद्धा है. तथैव आगमाऽनुयायी पूर्वाचार्योंके पवित्र वचनोपर भी मुझे दृढ़ श्रद्धा है एवं आप ज्वोद्धारकके वचन मेरे सदैव शिरोधार हैं किन्तु अल्पज्ञता वश मुझे यह ठीक समझमें नहीं आता कि पदार्थोंके बगैर जोगोपजोग किये ही क्रियारूप प्रायश्चित्त अपना वज्र कैसे पटकता है क्या कृपाऽर्णव बगैर चोरी किये चोरकों कभी सज़ा मिलनेकी संभावना हो सकती है ? अनुकम्पया मुझ अज्ञानोके भ्रमकों उन्मूल कर अपनी शीतल ठायामें शरण दीजियेगा.

गुरुमहाराजः—जोसुविवेकी ! तुमारा कथन यथार्थ है इसही प्रकार सम्यक् प्रश्न करने पर ही प्राणी बुद्धिवान हो सकता है. देखो यह दृष्टान्त अपने लक्षमें लक्षित करो.

किसी एक आलीसान मकानमें एक क्रोड़पति अपने ख्वयकी रक्षा करता हुआ सानंद निवास करता है इस अवस्थामें जबतक उसके मकानके चारों दरवज्जे खुल्ले हुवे हैं तबतक चौरोंके आनेका धोका है या नहीं ? शिष्यने कहा अवश्य है. वसतो इसही प्रकार जबतक प्रत्याख्यान (नियम) नहीं है किसी न किसी दिन वे पदार्थ अवश्य जोगोपजोगमें आ जावेगी वास्ते उसकी क्रियाका आज़ाब (पाप) लगना मुनासिब है.

शिष्यः—सुनते ही इस उत्तरके प्रार्थना करता है कि हे कृपावतार ! चाहे चौरोंके आनेकी देशत स्वन्त्रता पूर्वक क्यों न विहार करे किन्तु जबतक चौर माल न चुरा जाँय उसे कोई प्रकारकी हानि नहीं हो सकती इसही तरह जब तक पदार्थोंको सेवन न की जाय उसे पाप लगना समुचित नहीं. अहो स्वामी ! क्याही आश्चर्यका प्रस्ताव है कि जिस पदार्थको कभी हाथसे स्पर्श नहीं, नेत्रोंसे देखी नहीं, कर्णोंसे सुनी नहीं. ग्रन्थोंमें पढ़ी नहीं, स्वप्नमें अनुज्ज्वि नहीं उसके वर्ण, गंध, रस, स्पर्शादिसें सर्वथा अनजिज्ञ होनेपर जो दोषका प्राप्त होना स्वीकृत श्रेणीमें कैसे संघटित हो सकेगा. दयाकर कोई अन्य दृष्टान्त प्रदर्शित की जियेगा. जिससे यह अनुचर संतोष रस पानकर आनंदित हो जाय.

गुरुमहाराजः—शिष्यके-ऐसे मुलायम शब्द श्रवणकर दिलमें विचारते

हैं कि यह दृष्टान्त बेशक संतोष कायिल है किन्तु कालके प्रज्ञावर्षों इस बहुत इसके समझमें नहीं आता अस्तु बिलफेल द्वितीय दृष्टान्त देकर इसमें प्रमुदित करना चाहिये पश्चात् वह दृष्टान्त जी इसके मनोमन्दिरमें संस्थापित कर देंगे, यह सोच आप फरमाते हैं—हे आज्ञाऽनुयायी ! तू कोई प्रकारका खेद मत कर, वह दृष्टान्त जी क्रमशः तेरे समझमें आजावेगा ले अजी यह द्वितीय दृष्टान्त ध्यान पूर्वक श्रवण कर

एक पुरुष अपने शरीर पर तैल मर्दन कर बस्त्र वर्जित बैठा-हुआ है क्या उसके वदनमें रज संलग्न होगी ?

शिष्यः—कृपानिधे ! निःसंदेह लगेगी.

गुरु महाराजः—क्या वह इच्छा करता है कि मुझे रज लगे ?

शिष्यः—दीनबन्धो ! हरगीज नहीं

गुरु महाराजः—तो क्योंकर उसमें वह रज लगी !

शिष्यः—हे नाथ ! तैलकी स्निग्धताका ही यह स्वभाव है कि स्वतः रज आलगती है

गुरु महाराजः—अगर वह बस्त्र परिधान करले तो शरीरके रज लग सकती है ? या नहीं

शिष्यः—दयानिधे ! कदापि नहीं

गुरु महाराजः—प्यारे विनयशील ! जैसे विना प्रयोगही तैलकी चिकट रजकों आकर्षित कर लेती है इसही तरह कपार्योंका स्वभाव सचिकण है इससे बगैर इच्छाही अत्रत (आश्रय) क्रियारूप रज आकर लिपट जाती है और त्रत (प्रत्याख्यान-नियम) रूप बस्त्र पहननेसे क्रियारूप रजका निरोध

हो जाता है हां ! इतना अवश्य है की संज्ञोगके सदृश तीव्र बंधन नहीं हो सकता. सुगुणी वत्स ! क्या कुछ समझा ?

शिष्य—हे धर्मावतार ! आपकी अतुल महरसें बखूबी समझ गया.

गुरुमहाराजः—देख अब पूर्व कथित वही दृष्टान्त तुझे हम यथावत् घटित कर तेरे हृदयाऽङ्कित कर देते हैं.

शिष्यः—हे दयासागर ! कृपाकर फरमाईयेगा.

गुरुमहाराजः—जबतक दरवज्जे खुल्ले थे शेरके दिलमें क्या था !

शिष्यः—स्वामिन् ! चिन्ता.

गुरुमहाराजः—अगर चौर छव्य ले जाते तो क्या होता ?

शिष्यः—करुणाऽऽलय ! विशेष चिन्ता.

गुरुमहाराजः—मालके न जानेपर केवल देसतसें ही रात्रीज्जर निद्रा नहीं आती और हरदम बेचेनी बनी रहती है तथा छव्य ले जानेके बाद बहुत काल तक विशेष बेचैनी रहती है इसही तरह वस्तुओंके सेवन करनेसे तीव्र बंधके हेतु अधिक ज्वर खड़ना पड़ते हैं और आश्रवकी क्रियासे क्षिप्रही छुटकारा होनेकी संज्ञावना है.

शिष्यः—हे तरणतारण ! आपकी विचक्षण बुद्धिके सन्मुख वृहस्पति जी गश खाकर क्षिति तल हो जाता है धन्य है ! आपकी अनंत पुण्याईकों और शुक्रियादा है आपके निर्मल क्षयोपशमकों एवं कोटिशः धन्य है आपके श्रमणाऽवतारकों कि इस प्रकार बाल जीवोंपर उपकारक कृतकृत्य कर रहे हैं यह पृथ्वी आप सदृश मुनि रत्नोंसे ही रत्नवती कहलाती है. हे जगदाधार ! आप हमेशा जयवन्ता बतों ताके यह वीर शासनरूपी मार्तण्ड अपने दिव्य प्रकाशसे समस्त पृथ्वीतलको प्रकाशित करता है इत्यादि अनेक स्तवना कर अपने जन्मकों कृतार्थ किया.

तत्पश्चात् दोनों हस्त जोड़ यह विज्ञप्ति करता है कि हे दीननाथ ! बहुत समय हो गया है पिपासा पीड़ित कर रही होगी यदि आज्ञाहो तो जलपात्र हाजिर करू ? गुरुमहाराजने फरमाया “यथासुखं तथैवकुरु” यानी जैसा सुख हो वैसाही करो अर्थात् सानद लेआओ आज्ञा पाते ही तत्काल उस स्थानसे ऊठकर निर्मल अचित्त जल जहाँ पर रखवा है वहा पर पहुँचा और उत्तम वस्त्रसे ढीनकर एक स्वच्छ पात्र जलसे आपूरित कर लिया अब वह वस्त्रसे ढका हुआ (उड़ता हुआ धूँक या कोई जन्तु उसमें न गिर जाय इसलिये वस्त्रमें आच्छादन कियाया) जलपात्र हस्तकमलमें स्थापनकर गुरुमहाराजकी सेवाय हाजिर हुवा और कुछ नीचा झुककर दोनों करकमल गुरुमहाराजके अग्निमुख करता हुआ यह प्रार्थना करता है कि दयानिधे ! क्षीजिये जलपान (वावरना) कीजिये गुरुवर्यने चटसे पात्र ग्रहण किया और जल वावरकर अपनी प्यासको शान्त की; और वह पात्र वापिस शिष्यको वक्षीस कर दिया

तदनन्तर कुछ टाइम औ पढ़कर गुरुमहाराजसे प्रार्थना की कि हे करुणा-रस जण्मार ! पाठन समयने अपनी अन्तिमावस्थाको ग्रहण कर लिया है इसलिये दयाकर मुझे अपने आसनपर जानेकी आज्ञा वक्षीस करें गुरुमहाराजने फरमाया “अहामुहं देवाणुष्पया मा पम्बिबक्षकरेह” अर्थात् देवताओंको जी वल्लभ ऐसे हे शिष्य ! जैसा तुमें सुखहो अविलम्बतया सानद करो गुरु आज्ञाको शिरोधार कर शिष्य अपने आसनको ग्रहण करता हुआ अन्यपठन पाठनादि क्रियाओंमे संप्राप्त हुवा

थोड़ीही देर बाद क्या देखता है कि गुरुमहाराज मात्रा (लघुशब्दा) के वास्ते जानेका विचार कर रहें हैं अङ्गिताकारसे मानसिक परिणामोंको समझ सर्व कार्य अलग रख श्रीगुरुजी टोपसीमें जल लेकर गुरुमहाराजके पीठे हो-लिया मात्रागृहमें पहुँचते ही मात्रिये (पालसिया) को पूंजनीसे पूंज जयणा पूर्वक रख दिया व पासमें ही टोपसी जी घरटी-गुरुमहाराज अपनी बाधाको निवृत्त कर अपने स्थानपर पधार गये-शिष्य एक हस्तमें मात्रिया और द्वितीय हस्तमें जलकी टोपसी लेकर बाहिर निकला और जहाँ पर निर्वध स्थान है वहाँ पर दृष्टि परमार्जन कर उसे बिम्बेर दिया और जलसे पालसिया माफ

कर जयेंगा पूर्वक उसही स्थानपर रख दिया और गुरुमहाराजके सन्मुख इरियावही (पाप अलोचन क्रिया) कर पुनरपि अपने कार्यमें प्रवृत्त हुवा.

अहाहा! सदुपयोगी शिष्य हो तो ऐसाही हो जिसे अङ्गुली निर्देश तक करने की आवश्यकता नहीं हुई तो बैखरी ज्ञाषा (जिन्हासे प्रकट तथा बोलना) द्वारा कहनेका तो कथन ही क्या ? जो बुद्धिमान व कुलवान हैं और जिसने गुरुकुल सेवन किया हुवा है वे वाञ्छा चेष्टाओंसे ही मानसिक परिणामोंका अनुमान कर लेते हैं नीतीकारने जी हृदयस्थ परिणाम जाननेके इसप्रकार लक्षण दिखाए हैं:-

(श्लोक.)

आकारै रिङ्गितै गत्या । चेष्टया ज्ञाषणेन च ॥

नेत्र वक्रविकारेण । लक्ष्यते ऽन्तर्गतं मनः ॥ १ ॥

अर्थ:—आकार, इङ्गित, गति, अङ्ग चेष्टा, वचन, चक्षुविकार, और मुख-विकार. इन सप्त लक्षणोंसे मानसिक परिणाम जाने जाते हैं.

विवेचन:—१ आकार:—अङ्गाऽऽकृती. यानी जैसे दक्षीण हस्त परमस्त-क को नीचा झुकाया हुवा देखकर यह ज्ञात होना कि किसी चिन्तासमुद्घमें डूब रहे हैं. उसे आकार कहते हैं.

२ इङ्गित:—मनविकार यानी उपदेश अन्यको देना है और कहते अन्यको हैं जैसे जार्जने कोई वस्तु गुमा दी उसका उसे न कहते हुवे पुत्रसे कहते हैं कि तू बड़ा निरुपयोगी है घरका कुछ जी फिक नहीं कज़ी कुछ कज़ी कुछ नुकसान कर देता है ऐसे घरका निजाव किस तरह हो सकेगा इत्यादि उपदेश देकर भ्राताको जताया. बंधु जी यह समझ गए कि कहते इसको हैं किन्तु नाराज़गी मुझपर है इस प्रकार विदित होना उसे इङ्गित कहते हैं:-

३ गतिः—चाल यानी किसीको भंड चालमें चलते हुये यह पहिचानना कि इसके शरीरमें कुठ व्याधि है या शारीरिक शक्ति हीन हो रहा है उसे गति कहते हैं

४ चेष्टाः—अङ्ग विकार यानी जैसे अङ्गुलीसे ओष्ठोंको मलते हुये देखकर प्यासका मालुम होना उसे चेष्टा कहते हैं

५ ज्ञापण.—वचन यानि गव्दश्रेणी अन्य है और अर्थ कुठ अन्य है यथा अहा ! तुमारे जूआका व्यसन बूझादी प्रशमनीय है सारा जगत तारीफ करता है अन्य है ! तुम्हे बारंवार घन्य है ' इस प्रकारके कथनसे शब्दार्थाऽनुसार तो श्लाघनीय ही प्रतीत होता है किन्तु इसमें व्यङ्ग्य निंदाका निकलता है गरजकी सामान्य शब्दोंमें से व्यङ्ग्यया अन्यर्थ जानना उसे भाषण कहते हैं

६ नेत्रविकारः—चक्षु विकार यानी जिस तरह नेत्रोंको तेज (रक्त) देख यह जानना की इस वरत कुपित हो रहे हैं इसमें नेत्र विकार कहते हैं.

७ वक्रविकारः—मुख विकार यानी किसी बातको सुनकर मुख विगाम देना उससे यह जाहीर होना कि इस विषयसे इन्हे पूर्ण ग्लानी है इसमें वक्र विकार कहते हैं

शायकालके प्रतिसेहूनका समय आते ही अपने स्वा यापमें फारिक होकर गुरु महाराजकी व अपने रग्योंकी पहिलेहणादि क्रिया प्रातःकालाऽनुमार की पश्चात् पन्नाउपक सानद आराधन किये

प्रतिष्मण करनेके पश्चात् गुरु सेवामें तत्पर होकर यह प्रार्थना करता है कि हे जगत्पति ! यह घरणोपासन आपके पदपङ्क्तियोंकी सेवाकर अपने बापाको पात्र करनेकी नीशा ऽजिलापा कर रहा है अनुकम्पया आदा यही प्रार्थना करनेका अनुग्रह फरमाये। सुननेही इन मधुर वक्त्रोंके गुरु महाराजने मानद आदा पहिले की अब यह सुनिनीत जिसके हृदयमें सदा सद्गुरु ठहर रहे हैं जन्ममें मर्त्यमें दुःख

उसके हस्तकमल ऐसे मुलायम थे कि अकनूलकी रुईजी शर्माती थी, गुरु महाराजके चरणकमलोंकी इस ढंगसे सेवा करता था कि उनका प्रत्येक अवयव खिल उठता था इस प्रकार सेवामें आसक्त होकर दिव्य ड्व्यानुयोगके गहन विषयकी वार्तालाप करता हुआ सुख पूर्वक काल निर्गमन करता है अखीरमें गुरु महाराजके पवित्र चरणोंमें मस्तक नमन कर दोनो हाथ जोड़ विज्ञप्ति करता है कि हे नाथ ! बहुत दिनोंसे यह दास एक आवश्यकीय विनंती करनेकी अजिष्टता कर रहा है किन्तु जाग्य हीनतामें ऐसा कोई मुअवसर न मिला कि जिसमें मैं अपनी इच्छा पूर्ण कर सका आज अनंत पुण्यार्झका उदय है कि मुझे वह सौजाग्य प्राप्त हुआ यदि आझा हो तो निवेदन करूँ. गुरुमहाराजने फरमाया निश्कतया सानंद प्रकाशित करो. द्रुकुम पातेही “नहत्तस्वामी” कहकर वह परहितैषी विनयशील प्रार्थना करता है:—

पूज्यपाद गुरुवर्य ! अपनी पवित्र समुदायमें कितनेक अविवेकी साधु साध्वी ज्ञानड्व्य तथा साधारण ड्व्य अपनी जिम्मेदारीमें रखते प्रतीत हो रहे हैं और इसही वजहसे कितनेक सेठ साहूकारोंके यहां उनके नामके खाते पड़े हुवे हैं ऐसा ज्ञी सुना जाता है इस प्रकार प्रवृत्ती विगमते हुवे वे खास परिग्रह धारी होजायेंगे ऐसी सम्झावना है इसलिये हेजबोधारक ! इस डुर्गति दाता दुष्ट प्रणालीकों शत्रि ही उन्मूल कीजियेगा.

गुरुमहाराज:—हे विनयशील ! तेरी परोपकारी प्रशंसनीय बुद्धिके प्रतिहम सहानुभूती प्रदर्शित करते हुवे यह सुचना करते हैं कि वे साधु, साध्वी किस प्रकार ड्व्यसे संसर्ग रखते हैंइमें स्फुटतया प्रकाशित कर.

शिष्य:—हे दयालु ! आप सर्व वेत्ता हैं आपके सन्मुख विस्तीर्णरूप से कथन करना मेरी नादानी है किन्तु तदपि आपकी आझाकों शिरोधार करता हुआ सविनय किञ्चित् प्रार्थना करता हूँ:—

कइ एक ज्ञानके लिये जैसे:—पाठशाला, लायब्रेरी, ग्रन्थ उपवना, ग्रन्थ लिखवाना, ग्रन्थ खरीदना वगेरा तथा साधारणके वास्ते उपदेश देकर रुपये खर्च करवाते हैं उनका हिसाबदि सर्व अपनी निगरानीमें रखते हैं तथा उनकी

आज्ञा बगैर एक पाइ जी इधर उधर नहीं हो सकती और कइ एक लोग जिस वरत श्रावक श्राविकाओंको दीक्षा देते हैं उस वरत उनका जितना बचा हुआ उच्य हो उसें ज्ञान खाने या साधारण खानेमें किसी मौजीज सहके यहाँ अमानत (Deposit) रखवा देते हैं उस उच्यकों अपनी इच्छाशुक्ल खर्च करवाते हैं उनके आज्ञा उगैर कोई जी किसी स्थानमें नहीं लगा सकता इस प्रकार सैकड़ों रूपै निपाजिट रहे हुवे है जिनका ययावन् सिवून पहुँचानेकों मैं सदैव कोटिबन्ध हूँ हे नाथ ! मुझेपुनर्मधिकम्.

यह वज्र घावमा विषय श्रवणकर गुरुमहाराज अति दिलगीर हुवे और पृथक् १ म्यानामें निवाम क्रिय हुवे अपने समस्त साधु, साध्वीकों उकचित होनेकी आज्ञा प्रकाशित की

शिष्यः—“प्रमाणवचन” कहकर प्रार्थना करता है कि हे स्वामिन् ! मधारा पोरमी (शयनके टाडमकी क्रिया) का समय आन पहुँचा है

गुरुमहाराजः—राई मधारा पोरसी मानद परम्पर विश्राम करो

आज्ञा पाते ही शिष्य गुरुमहाराजके साथ मधारा पोरमी पदकर अपनी पयारी (Bidding) पेमे स्थानपर की कि जो गुरुमहाराजसे ऊँची और समान न थी किन्तु नीचे स्थानपर शयन करता जहाँ कि गुरुवर्यकी किसी प्रकार आज्ञातना नहीं हो सके अब यह शिष्य अपने आसनपर बैठा हुआ यह राह देख रहा है कि गुरुमहाराज शीघ्रही शयन करें तो मैं जी मो जाऊँ गुरुमहाराज कुछ टाडमके बाद अपनी ध्यान क्रियासे निरुत्त हाकर निद्रावश हो गए शिष्य गुरु महाराजको शयन किये देख शीघ्रही अपनी पयारी पर आकर विश्रामित हुआ

द्वितीय दिन त्रिनयनीय शिष्यने हुकुम पाकर नियमाशुक्ल मर्च म्याना पर आसनपर भेज दिय जिसके जोग्ये समुदायके कुलधर्मण, आर्या उम दिशावपहन शररमें समाप्त रहे

इस अवस्थामें पूज्य उपकारी आचार्य महाराजने सकल शिष्य, शिष्या-ओंको मध्याह्नकालमें एक बजे हाजिर होनेका हुकुम बड़ीम किया सर्व लोगोंने शिरोधार कर नियमित समयपर चरण सरोजमें प्रवेश किया.

सज्जनो ! यह श्रमण सम्मेलन खानगी (Private) ही था चूँके शुद्ध व्यवहार यह उपदेश करता है कि किसिके सत्कारमें त्रुटी न पहुँचते हुवे यदि उसका जला हो जाय तो उत्तम है.

प्रथम ही प्रथम विनयशीलने सर्व सम्मेलनको यह विज्ञप्ति की:—

आप सर्व महानुभाव दूर ९ देशान्तरोंमें अनेक कष्ट सहन कर गुरुमेवामें पधारे हैं इसका मैं शतशः धन्यवाद समर्पण करता हुवा यह निवेदन करता हूँ कि अपने परमोपकारी विशाल ज्ञानी प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद गुरुमहाराजने एक अनुपम लाजके निमित्त आप सर्व सहावानको उत्तम माँजाग्य प्राप्त करवाया है इससे आप अपना अहोजाग्य समझते हुवे आचार्य श्रीके पवित्रवचन श्रवण कर अपनी-आत्माका कल्याण कीजियेगा. तदनन्तर—

गुरुमहाराजः—अहो मेरे समस्त गुणानुपासकों ! यह जिनेश्वर प्रभुका पवित्र वश अनंत पुण्यार्थसे संप्राप्त हुवा है जो प्राणी निर्मलतासे पालन करता है वह अचिरात् मोक्ष पदके अनंत सुखोंको अनुभव करता है और जो सह अपने महा व्रतोंमें दोष लगाकर पवित्र चारित्र्यको मलीन करता है वह आज्ञा विराधक जव ९-में असह्य दुःखसे दग्ध होता है. आप महानुभाव इतना फरमांकर शान्तरसमें विश्रामित हुवे.

यह शब्द सुनते ही सर्व सम्मेलन चौक पड़ा और दीनमुख होकर दोनों कर जोरु मस्तक नमन करता हुवा यह प्रार्थना करता है:—

सम्मेलनः—हे दयासागर ! हम अज्ञानियोंको आपका अल्पाकरी बहू-र्थीय सदुपदेश स्फुटतया समझमें नहीं आया, हमारा हृदय जीतरसे तड़फ रहा है कृपया खुलाशा तौरपर फरमाईयेगा.

गुरु महाराजः—महानुभावों ! हमने यह श्रवण किया है कि पाठशालादि समस्त तथा दीक्षा अवसरमें ज्ञान खाते तथा साधारण खाते किसी साहूकारके यहाँ इज्जत अमानत रखाते हो पश्चात् अपनी इज्जतानुसार खर्च करवाते हो; यह सत्य है क्या ? इत्यादि विनयशील शिष्यने जो कुछ प्रार्थनाकी थी उसमें खुलाशा तौर पर फरमान किया

सम्मेलनः—“दोन हीन होकर धूजता हुआ यह प्रार्थना करता है”
हे प्राणाऽऽधार ! धर्मावतार ! ! जवोधारक कृपावतार ! ! ! हम मुँह दिखलाने योग्य नहीं, हम वचन उच्चारण करने लायक नहीं, हमें चुल्लूजर पानीमें डूब मरना वहेतर है आप हमारे मनोगत जावको जाननेवाले तरण तारण नाय है वस इतनेमें ही सर्व समझ लीजियेगा

गुरु महाराजः—अहो देवानुप्रिय ! तुमने दोन वचनो पर मुझे बनी दी दया आती है लेओ जरा दो शब्द सुनकर अपनी आत्माको पवित्र करो

इस दुनियामें मुख्य दो वस्तु ही महा अनर्थकारी है एक कनक द्वितीय कामनी जिसने इन दोनोका संसर्ग मात्र ठोम दिया है वे उत्तमोत्तम आचरण कर सकते हैं, वीर शासनका विजय करनेमें सामर्थ्य होसकते हैं तथा सासारिक ऊगडोंसे तटस्थ होकर अपनी आत्माका रूढ़्याण कर सकते हैं यद्यपि तुमलोग उसमें अपने पासमें नहीं रखने न अपने खानपानमें लाने हो किन्तु उसका संसर्ग मात्रही जगत निन्दनीय व विश्व तिरस्करणीय है इसलिये मेरे प्यारे आत्मार्थियों ! इस छष्ट रिवाजको नासिका मलवत् त्यागकर पदसाख द्वार प्रत्याख्यान अङ्गीकार अपने मानव जत्रको कृतार्थ करो

सम्मेलनः—“इस रिवाजको आचरण करनेवाले समस्त साधु साध्वी” दोनो करजोम मस्तक नमन करते हुवे यह प्रार्थना करते हैंः—हे दीनानाय ! हम सर्व लोग आपकी पवित्र आज्ञाको शिरोधार कर सहर्ष प्रतिज्ञा अङ्गीकार रनेको तत्पर हैं

गुरु महाराजः—अपनी अगाध कृपाद्वारा इस प्रकार मत्पारख्यान फरमाने हैंः—

(प्रत्याख्यान)

अरिहन्तसखियं, सिद्धसखियं, साधूमखियं,
 देवसखियं गुरुसखियं, अप्ससखियं धाणा
 प्रमाणे अन्नधणा जोगेणं, सदस्तागारेणं,
 महत्तरागारेणं, सव्वसम्मादिवत्तियागारेणं वोसीरई.

सम्मेलनः—दोसिरामि-

गुरु महाराजः—महानुजावों ! इस प्रत्याख्यानकी प्राणोंसे जी अधिक
 यत्ना करना इन षट् साखोंमें से एक जी साख तौरनेवाला जीव अनेक भव
 जर्मण करता है तो समस्त उलझन करनेवालेका कयन ही क्या ? इसलिये
 दृढ़ श्रद्धायुक्त पालनकर अपने जीवनको सार्यक करना.

सम्मेलनः—हे करुणानिधे ! जो प्राणी अपने गुरुमहाराजसे विपरीत च-
 लता है वह जिनेश्वरकी आज्ञाका विरोधक समझा जाता है और इस जन्ममें
 डराचरोंसे कलङ्कित होकर निन्दनीय श्रेणीमें शुमार किया जाना है तथा पर
 जन्ममें डर्गतिमें जाकर डःमह डःखोंसे दग्ध होता है. हे तीर्थस्वरूप ! आ-
 पकी अक्षयः अनुज्ञा हमारे सदैव शिरोधार है आपसदृश जवोद्धारक गुरु-
 महाराजका शरण जवोजव होना यही आन्तरिक जावना है. हेअकारण
 बन्धो ! ऐसे घोरतिघोर प्रायश्चित्तसे विमुक्त करना आपहीके हस्तगत है.

गुरुमहाराजः—ज्ञानियोंका यह फरमान है कि त्रैलोक्यमें गुरुमहाराजके
 सदृश कोई उपकारी नहीं है इसलिये जहाँ तक मुमकीन हा तहाँ तक उनकी
 जक्तिमें लीन होना चाहिये ज्यों १ तुम लोगोंकी जक्ति बढ़नी जायगी सों १
 अपूर्व गुण प्रकट होते जायंगे ज्ञान, तत्त्व और सकल इष्टता गुरु सेव से ही
 प्राप्त हो सकती है. तुमारे जड़िकनाकी तर्फ हम सहानुभूति दिखलाते हैं कि
 तुम लाग बड़े ही सुयोग्यहो कि डर्व्यवहारकों नासिका मलत् लागकर गुरु
 आज्ञाको प्रेम पूर्वक शिरोधार किया.

इस हुकुमकों सुनते ही शिष्य सविनय प्रार्थना करता है:—

शिष्य:—हे करुणाग्रस जगन्नाथ ! कौन ऐसा पुण्यहीन है कि जो अपने दिव्य उपकारी गुरुमहाराजसे विरह चहाता हो किन्तु आप नाथकी आज्ञाओं पालन करना यह मेरा मुख्य कर्तव्य है. इसही लिये आपकी आज्ञानुसार विहार करनेकों मैं हाजिर हूँ.

गुरुमहाराज:—मेरे प्यारे आज्ञानुयायी ! अमुक १ साधुओंको साथ लेकर कल विहार कर जाना.

शिष्य:—आज्ञा प्रमाण.

द्वितीय दिन ठीक प्रातःकालमे ही तैयार होकर मय अन्य मुनियोंके गुरुचरणोंमें हाजिर हुवा सादर वंदना नमस्कार करनेके पश्चात् दोनों करजोड़ यह प्रार्थना करता है:—

हे मम प्राणाधार पूज्य गुरुमहाराज ! आज मुझे आपके चरणोंका विरह होता है जिस असह्य डःखकों में किसी कदर सहन नहीं कर सकता; हे स्वामिन् ! यह मनमोहन शान्त तबीके मुझे कब दर्शन होंगे; हे भक्तो ! मुझे इन पावन चरण सरोजकी सेवा कब प्राप्त होगी. हे नाथ ! मुझे इन पवित्र चरणोंका चारोंवार शरण हो. आपकी जिस प्रकार अनुपम कृपा है इससे दिन दुगुनी और रात चौगुनी बढानेका अनुग्रह फरमावें. हे दयासागर ! आपकी गुप्त दृष्टिसे मेरा सदैव कल्याण है इत्यादि नानाविध भक्तिभाव प्रदर्शित किया.

गुरुमहाराज:—प्यारे चरणोंपासक ! यदि तू हजार कोश जी दूर है और तेरा हृदय भक्तिरसमें जरा डुबा है तो तुझे यथावत् फल हांसिख हो सकता है. यथा:—

(दोहरा)

जलमें वशे कमोदनी । चंदा वशे अकाश ॥

जो जाहूके मन वशे । तो ताहूके पास ॥ १ ॥

पुनरपि आप पूज्य आचार्य महाराज फरमाते हैं:—ये जो तेरे साथ अन्य मुनिजन हैं इनकी जिस तरह हम प्रतिपालन करते हैं उसही तरह तुम विश्वास से रखना यह खास सूचना है ऊपर उन मुनियोंको यह फरमाते हैं:—
 प्यारे मुनियों! तुम इस विनयशीलकी उसही प्रकार सेवा करना कि जैसी मेरी करते हो और मुझे जिस पूज्य दृष्टिसे तुम अवलोकन करते हो इसही प्रकार इसे समझना आदि उपदेश देकर सर्वको यह फरमाया कि:—समय आन पहुँचा है सानंद विहार कर जाओ गुरुदेव सदैव तुमारी विजय करें

सुनते ही इस पवित्र आशिर्वादके वे सर्व मुनिराज सहर्ष विहार कर गए.

ग्रामाऽनुग्राम अनेक क्षेत्रोंमें जन्म जीवोंका अनुपम उद्धार करते हुवे क्रमशः अवन्तिकापुरी (उज्जैन) में पदार्पण किया वर्षाकालिक चातुर्मास श्राद्ध ही अपने अवस्थानमें प्राप्त होनेकी इच्छा कर रहाथा, इस अवसरमें वहाँके निवासी घमानुरागी श्रावक, श्राविकाओंने चातुर्मासके लिये अनहद विनती की जिस पर आपने यह फरमाया कि अगर गुरुमहाराजकी आज्ञा होगी और हमारी क्षेत्र स्पर्शना बलवान् है तो हमें कोई उजर नहीं

जैन मुनिराजका इतना कथन ही गोया उनकी मानसिक कवूलात है जो कि वर्तमान बचनोंसे सम्यग् विज्ञात हो सकता है निश्चय कथन करना यह जैनागमका फरमान नहीं चूँके उग्रस्थ लोग जावि फलका निश्चित स्वरूप नहीं जान सकते

समस्त नाग्रिक जैन जत्तोंने पट्टन शहर जाकर गुरुमहाराजसे अनेकविध प्रार्थना कर चातुर्मासकी आज्ञा-होसिल की

गुरुमहाराजने यह फरमाया कि यदि उसकी क्षेत्र स्पर्शना है और सर्व तरह मुजिता हो तो हम सहर्ष इजाजत वक्षीस करते है संघ इस अनुज्ञाको होसिलकर अपने स्थानपर वापिस लौट गया.

इधर उस विनयशील नामक मुनिराजने चातुर्मासके निमित्त अ महाराजसे इस प्रकार प्रार्थना जेनी:—

हे करुणारस जण्डार ! वर्षाकालिक चातुर्मास दौड़ता हुआ निकट आ रहा है और यहांके श्री संघकी जक्ति लायकतारीफ के है तथा विनति जी जोरशोरसे कर रहे हैं एवम् शासनोद्योतकी जी पूर्ण संज्ञावना है इसलिये सविनय प्रार्थना है कि इस अवन्तिकापुरीमें चार मास निवास करनेकी आज्ञा बक्षीस फरमावे. इस हमारी दीन प्रार्थना पर गौर फरमाकर जो कुछ मुनासिव समझे शीघ्रही सूचितकर आज्ञारी बनाईयेगा ताके हमें आगामी व्यवस्थाका अनुज्ञवहो.

इस विनयरससे जरी हुई प्रश्नीय प्रार्थनासे विज्ञात होकर उत्तरमें इस प्रकार सानंद आज्ञा बक्षीस फरमाते हैं:—

तुमारी विनयोद्योतक प्रार्थना संप्राप्त हुई उत्तरमें सूचित करते हैं कि अगर तुम वहांपर सुख पूर्वक निवास करना सम्भव हो तथा पठन, पाठन तप जप, ध्यानादि निराबाध होसके और आवहवा अनुकूल एवम् शासनोद्योत उत्तम तौरसे होनेका पूर्ण विश्वासहो तो हम सानंद आज्ञा बक्षीस करते हैं और सूचित करते हैं कि शासनाऽधीश्वर श्री वीर परमात्माके शासनको तथा आसन्नोपकारी गुरुमहाराजके पवित्र नामको देदिप्य करना यह खास सूचना है.

इस प्रकार आज्ञा पानेपर आप मुनि रत्नने चातुर्मास कर श्री संघ पर अगाध उपकार किया जो कि सदैव स्मरणीय है. इसही तरह कितनेक वर्ष मालवदेशमें खूब परियटन कर विविध स्थलोंके श्री संघका अनुपम उद्धार करते हुवे क्रमशः मरुस्थलके सुप्रसिद्ध शहर विक्रमपुर (बीकानेर) में अपने पूज्य गुरुमहाराजकी सेवामें प्रवेश हुवे गुरुजत्तो ! इस वरुतके समागमका आनंद अनुजवी लोग ही जान सकते हैं. अब आप पूर्ववत् अपने सकल कृत्यमें संलग्न हुवे.

वर्त्तमानके अधिकांश शिष्य वर्गका विनय गुण एक विचित्रही लीला प्रदर्शित कर रहा है जो कि पबलिकमें जाहिर है तदपि प्रकरणवशात् इतना अवश्य कहूंगा कि आज्ञानुसार कार्य करनेका दावा रखनेवाले ऋजुप्राज्ञ वहीं तक गुरुमहाराजकी आज्ञाको सहर्ष सादर शिरोधार करते हैं कि जहाँ-

तक उनके मनशाके मुताबिक बह्नीस कीजावे यदि किसी समय वास्तविक व हितकारी इस प्रकार आज्ञा बह्नीस कीजावे कि जो उनके रुचिसँ प्रति-
कूल है तो घडाकसँ मूँह-मोड़ अनेक कुयुक्तियों द्वारा अपनी अपूर्व ज्ञातिका
अलौकिक दृश्य दिखलाते हैं

मेरे प्यारे गुरु जत्तों ! आपको इस ठोठेसँ “गुरु शिष्यका अपूर्व
दृश्य” दृष्टान्तसे यह सम्पूर्ण विदित होगया होगा कि वह विनयशील एक
कैसा अपूर्व गुणधारी था। आचार्य महाराजके अन्य अनेक शिष्य थे किन्तु
यह सर्वमें अधिक प्राणवल्लभथा इसही प्रकार शिष्य वर्गकों अपने जबो-ध्वारक
गुरुमहाराजका विनय करके निज अपने मानव जिवकों सफल करना चाहिये

जब तक हमारे उन पूज्य गुरुमहाराजने शिष्यावस्थामें निवास किया
तब तक विनयशील शिष्यके अनुसार उत्तम विनयका आचरण करते थे नहीं
ए इतना ही नहीं किन्तु इससे जी कह गुणें अधिक विनयरमसँ आपका हृ-
दय अपूरित था और जब की आप गुरु पदकों सुशोभित करते थे तब पूर्वोक्त
आचार्य महाराजके महेश दयासागर थे अहाहा ! आप गुरुदयालका विनय
गुण विश्व प्रशंसनीय व अनुकरणीय है।

९ वैयावञ्च—किसी धर्मात्मा पुरुषकी सेवा करना अर्थात् सुश्रुषा करना
उसँ वैयावञ्च कहते हैं

आप परम जक्त महानुभाव अपने गुरुमहाराजकी, मुनिरत्नोंकी ग्ला-
नियोंकी तपस्वियोंकी और नूतन शिष्य वर्गादिकोंकी अहार, पानीसँ, शरीर
सुश्रुषासँ तथा प्रतिलेखनादि क्रियाओंसँ दत्तचित्त होकर इस प्रकार जक्ति
करतेथे कि जिसका अनुकरण करनेसँ प्राणी दृढ जक्तिवन्त हो सकता है

महानुभावो ! शास्त्रकारोंने दस प्रकारकी वैयावञ्च फरमाई है तद्यथा:—

(गाथा)

आयरिय नवाऊाएथेर । तवस्सी गिलाणसेहाण॥

साहम्मी कुलगणसंघ । वैयावच्चं हवईदसहा ॥ १ ॥

जावार्थः—१ आचार्यः—जिससे धर्म प्राप्त हुआ हो उसकी सेवा करना
२ उपाध्यायः—जिससे विद्या अभ्यास किया हो उसकी ज्ञप्ति करना ३ स्थ-
विरः—ज्ञानवृद्ध, पर्यायवृद्ध और वयोवृद्ध इन तीनोंकी खिदमत करना. ४
तपस्वीः—तपस्या करनेवाले महात्माकी सुश्रुषा करना. ५ ग्लानः—बीमारोंकी
वैयावच्च करना. ६ सेहाणः—नवीन दीक्षित मुनिकी यथोचित सेवा कर चा-
रित्र रङ्गमें गाढ़ रङ्ग देना. ७ स्वधर्मीः—अपन जिस प्रणालीसे जिस धर्मको
पालन करते हैं उसही नियमाऽनुकूल धर्मको आचरण करनेवालेकी परिचर्या
करना. ८ कुलः—एक कुलका जैसे चन्दादि कुलवालेकी उपसना करना.
ए गणः—एक गणवाले जैसे कोटिक प्रमुख गणधारीकी ज्ञप्ति करना. १०
संघः—समुदायकी सुश्रुषा करना.

उपरोक्त दश प्रकारकी वैयावच्चसे जी अनेक सेवाएं हैं किन्तु ये मुख्य
और अवश्य आचरणीय है. वैयावच्चके ही अतुल प्रतापसे बाहुबल स्वा-
मीको इस कदर भुजाबल प्राप्त हुआ कि जगत चक्रवर्तिकों पाशोंही युद्धोंमें
परास्त किये.

चक्रवर्तिके अतुल पराक्रमका एक ठोठासा नमूना पाठकोंकी सेवामें दा-
खिल करता हूँ कि जिससे वैयावच्चका ठीक फल विदित हो जायगा.

जब जगत चक्रवर्ति सर्वसे बलवान् म्लेच्छ देशकों विजय कर वापिस
लौटे तब समस्त सेना अपने दिलमें अजिमान करने लगी कि हम बड़े ही
सूरवीर हैं कि ऐसे दुर्जय म्लेच्छ देशकों सर कर लिया. इस व्यवस्थाको जान
जगत महाराजने विचारा कि चक्रवर्ति पदकी अनंत पुण्याईको न समझ सर्व
सेना अहंकारमें चकचूर होरही है इस लिये अपने पराक्रमका कुछ चमत्कार
बतलाना चाहियेः—

जगत महाराज एक आसन पर बैठ दाहिने हाथमें पान लिये हुये मुखके सम्मुख करके अपनी समस्त फौजकों यह हुकुम फरमाते हैं:—

अहो मेरी समस्त सेना! आज तुम एक कौतुक दिखलाते हैं तुम एक मजबूत लम्बी श्रृङ्खला लेआकर मेरी कनिष्ठा अङ्गुली (चट्टी उङ्गुली) में ठीक जखदकर बांधदो और समस्त चतुर्द्धा सेना अपनी सम्पूर्ण ताकत धारा खींचो

आज्ञा पाते ही ३२ हजार मुकुटबंधू राजा ७६ कोट, पैदल ८४ लक्ष हाथी ८४ लक्ष घोड़े ८४ लक्ष रथादि समस्त क्रमशः उस श्रृङ्खलामें जुड़कर अपनी अशेष शक्तिधारा आकर्षित की किन्तु वह अङ्गुली मनागपिनमुड़ी इस अवसरमें जगत महाराजने पाननोश करनेके लिये आहिस्तेसे जरा हाथकों उंचा ऊठाया कि समस्त सेना दहादह जमीन पर आगिरी इस अपूर्व पराक्रमकों देख सम्पूर्ण सेना चमक उठी और उनका अहंकार जयजती होकर रसातलमें डूब गया कहनेका तात्पर्य यह है कि जगत चक्रवर्ति ऐसे बलवान् होने पर जी बाहुबल स्वाधीने पराजय किये यह वैयावृत्तका ही विशाल मनाव है ।

कह एक साधु साध्वी लौकिक लज्जासे या स्वार्थमय होकर अपनी अपूर्व प्रकृतिका अशौकिक दृश्य दिखलाते हैं वह ठारपर नीपनरूप फलकों देनेवाली समझना चाहिये वे कृपावतार तो एक बार नहीं सो बार फिरकर उचित आहार पानीकी योगवाई करते तथा प्रति लेकनादि उनके मरजीके अनुकुल कर उन्हे प्रमत्त करते थे तथा शरीरकी सुश्रुषा (चांपना दवाना) सो इस प्रकार करते थे कि उनकी कलो २ खिल उछती थी इस प्रकार दिलोजानमें प्रकट करते थे कहाँ तक कहा जाय आपका वैयावृत्त गुण सर्वाऽऽदृशणीय है

(१०) स्वाध्यायः—स्वकीय पठन पाठनादिकों स्वाध्याय कहते हैं

वे पूज्य गुरु महाराज पञ्च प्रकारकी स्वाध्यायकर अपने कर्मपटलकों दूर रखाते थे, तद्यथा:—

(गाथा)

वायणा पुठणाचेव । तहायपरि अट्टणा ॥

अणुपेहा धम्मकहा । सजाओ होई पंचहा ॥ १ ॥

अर्थः—१ वाचना २ पठना ३ परिवर्तना ४ अनुपेक्षा ५ धर्म कथा। इस तरह पांच प्रकारकी सजाय कही जाती है।

विवेचनः—१ वाचनाः—किसी योग्य पाठक के पाससे पढ़ना तथा स्वयं ग्रन्थ अवलोकन करना एवम् किसीको उपकार बुद्धिमें पढ़ाना. २ पठनाः—किसी स्थलपर किसी विषयमें यदि संदेह होजाय तो गुरुमहाराजमें अथवा ज्ञान स्थविर वगैरामें पूछकर निर्णय करना. ३ परिवर्तनाः—पूर्वमें पड़े हुये ग्रन्थोंकी पुनरावृत्ति करना. ४ अनुपेक्षाः—अर्थ चिन्तन करना. ५ धर्म कथाः—अनेकविध धर्मोपदेश देकर ज्ञव्य प्राणियोंका उद्धार करना.

वे अप्रमत्त गुरुवर्य उपरोक्त पञ्च प्रकारकी उत्तम स्वाध्यायकों सम्पन्न आचरण कर अपनी आत्माका उद्धार करते हुये ज्ञव्यात्मा पर अविस्मरणीय उपकार करते थे जिसकी प्रकरणवशात् बहुत कुछ महिमा ज्ञान विषयमें लिख आए हैं. आप स्वाध्यायके एक श्लाघनीय मुरसिक थे.

(११) ध्यानः—मनके एकाग्र अवलम्बनको अथवा सम्यक् चिन्तनको ध्यान कहते हैं.

आप योगीश्वर आर्त्त, रौद्र ध्यानको हताशकर धर्म ध्यानकी दृढ़ आराधन करते थे और यथाशक्ति शुक्ल ध्यानकी तीव्र खप करते थे ग्रन्थ गौरवके जयसे चारो ध्यानका खुलाशा न करते केवल धर्म ध्यानकी ही व्याख्या रूबुरू करता हूँः—

धर्म ध्यानके चार भेद होते हैं. तथाहीः—

(चौपाई)

आज्ञा विचय प्रथम द्विधार

द्वितीय अपाय विचय सुखकार ॥

विपाक विचय तीजा गुण धार

संस्थान विचयमे जय ९ कार ॥ १ ॥

(१) आज्ञाविचयः—बीतराग देवकी आज्ञामें चिन्तन करना यथाः—
हे आत्मन् ! देवादि देव तीर्थंकर प्रभुने पट्ट छप्प, नौतत्व, सप्तनय, चारनि-
क्षेपे, सप्तजही, उत्तर्ग, अपवाद, सिद्ध स्वरूप, निगोद स्वरूप, चतुर्दश गुण
स्थान और स्याद्यादि स्वरूप छरा धर्म कथन किया है यह यथार्थ है सदैव
तेरे आदरणीय व अनुकरणीय है यह पवित्र धर्म तुझे इस जन्ममें, परजन्ममें
और जन्मजन्ममें सुखकारी, हीतकारी और आनदकारी होगा ऐसे शुज वि-
चारोंमें तन्मय होजाना वह प्रथम जेद कहा जाता है

(२) अपायविचयः—कर्मोंके कष्टका विचारना यथाः—हे आत्मन् ! इस
संसारमें कर्मोंके बश तू मलीन गिना जाता है तू स्फटिक रत्नसें जी अधिक
उज्ज्वल है कपायादिकोंके कारण ही मलीन हो रहा है जैसें जलका निर्मल
स्वभाव है किन्तु कचरा बगेरा गिर जानेसें मलीन कहा जाता है तथैव तेरी
दशा हो रही है इसलिये जरा सावधानीको अखत्यार कर और निज निर्मल
स्वरूपमें रमण कर जिससे अपूर्व आनन्दरस प्राप्त होगा ऐसे शुज चिन्तनमें
तल्लीन हो जाना वह द्वितीय जेद कहा जाता है.

(३) विपाकविचयः—कर्म जोगका अनुभव करना जैसेंः—हे जीव ! तू
जितना ही सुख छःख, हर्ष, शोक बगेरा देख रहा है यह सब कर्मरानकी
विचित्रता है सुख आये जीवीतव्य बाँटता है छःख आए मरण इच्छता है यह
तेरा स्वभाव नहीं है जिस वरुन वेदनी या कोई आपत्ती प्राप्त हो उस वरुन
तुझे २ शान्तता पूर्वक जोगना चाहिये क्योंकि बगेर जोगे तेरा हरगीज छुट-

कारा नहीं हो सकता तो फिर हाथ श. कर क्यों मबल कर्मबंध करता है कौन ऐसा मुख है जो उतरते हुवे कर्ममें दुःख मानकर उसे बढ़ानेकी अजिलाषा करे एवं सुखके प्राप्त होने पर जी हर्षित नहीं होना चाहिये यह केवल पुण्य प्रकृतीका फल है जिसे अनंती बार प्राप्त किया तो जी कुछ इष्ट सिद्धि हासिल नहीं हुई तो ऐमे सुखमे आनंद मनाना यह जी तेरी एक मोठी भूल है इसलिये दुःखमें ग्लानी व सुखमें खुशियाली नहीं होना चाहिये तू तो वैसे सुखकों अङ्गीकार कर कि जो अक्षय, अविनाशी और सदैव अखण्ड रूप रहनेवाले हों. ऐसा शुद्ध उपयोग लगाना उसे तृतीय जेद कहते हैं.

(४) संस्थानविचय—क्षेत्र सम्बन्धी विचार करना. तथाहीः—हे अवधु! सात नरकके सात राज जिसमें एकसे एकमें अधिक दुःख रहा हुआ है* जिसको कि सुनने मात्रसे हृदय धड़ ३ ने लगता है तथा १८ सो जो जन तिर्यग्लोकमें एवम् उर्ध्व लोकमें द्वादशश देवलोक, नौलोकान्तिक, नौग्रेविक, पाच अनुत्तर विमान, सिद्ध शिला और सिद्ध स्थानादि अनेक क्षेत्र हैं इन सर्वक्षेत्रोंके अन्दर नैरश्ये रूप, तिर्यच, मनुष्य, देव और निगोद रूप सर्व चतुर्दश राज लोकमें अनंती बार पर्यटन कर आया है किन्तु अब तक संतोष पैदा नहीं हुआ इस लिये अब ऐसी उत्तम करणी कर कि जिससे पौद्गलिक समस्त पदार्थोंसे सर्वथा जुदा होजाय और अनंत सुखमय निर्मल सिद्ध स्थानमें संप्राप्त होकर निरंतर आनंदरसमें निमग्न हो जाय—ऐसा पवित्र विचार करना. वह चतुर्थ जेद कहा जाता है.

इस प्रकार धर्म ध्यानकों ध्याते हुवे पदस्थादि चार ध्यानोका जी प्रशंसनीय आराधन करते थे जिसका किञ्चित्स्वरूप इस स्थलपर उद्धृतकर पाठकोंकी सेवामें पेश करता हूँः—

(१) पदस्थः—अरिहन्तादि पञ्च परमेष्ठिके निर्मल गुणोंका विचार करना. तथाहीः—

*देखिये चतुर्गतिके दृश्यमें और अनुभवकर आत्माको उत्तम मार्गपर आरोपरण कीजिये.

श्री अरिहन्त देव; ज्ञानावर्णीय, दर्शनावर्णीय, मोहनीय और अन्तराय इन चार उष्ट्र घनघातिये कर्मोंको विनाश करनेवाले तथा केवलज्ञान, केवल दर्शन और यथाख्यात चारित्र्यको धारण करनेवाले एवम् चौतीस अतिशय, पैंतीस वाणी और अष्ट महा पातिहार्य विराजमाने—महागोप, महा निर्यामक, महा सार्धवाह, जगद्दैध, तीर्थङ्कर, जिनेश्वर सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, विश्वपते, विश्वोत्तम, जगन्नाथ, जगद्बन्धु, जगत्तारण, अशरण शरण, जवजय हरण, शिवसुख-करण, तरणतारण, वीतराग, धर्मोपदेशक, धर्मरत्नादि अगण्य गुणगणां विजृम्भित तथाः—

श्री सिद्ध परमात्मा जन्म मरण दुःखरहित निरजन, निराकार ज्यो-तिस्वरूप चिदानन्द, निसङ्ग, निरेच्छा, निष्कषाय, निष्काम, अखण्ड, शास्वत और अनन्त सुखोंमें तन्मय एवम्ः—

श्री आचार्य जगवान् सकल मुनि श्रेष्ठ, गुणगणी जेष्ठ, शीर, वीर, प्रवचनाधार, प्रवचन प्रकाशक, सारण, वारण, चोयण, पङ्क्तिचोयण कुशल, तीर्थङ्करोपेय, बहुश्रुत क्रियाधार, समयज्ञ रसज्ञ, तत्त्वज्ञ, गच्छस्तम्भ पदधारी, शासनोन्नतिकारी, शासनोन्नोत्तकारी, सूत्रार्थधारी, ज्ञानजोगी, अनुजवयोगी आदि अनेक दिव्य गुणोपेत तथाः—

श्री उपाध्यायजी महाराज ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य निधान, श्री आचार्य धर्म राजधानीसु प्रधान, सकल नय निक्षेप प्रमाणगर्जित द्वादशङ्गीवृत्ता, डरौंधी शिष्य वर्गके सुबोधक, जगत्प्राज्ञाओंके अक्षेप सशय निवारक, शिक्षक, दोषक, परीक्षक, श्रुतवृद्ध, परम पात्र, निर्मलगान, अप्रमादी, धर्मधुरंधर, धर्मावतार और सिद्ध साधक आदि बहु गुणवरिष्ठ एवम्ः—

पवित्र मुनि महाराज शान्त, दान्त, महन्त, सयमी, ज्ञानी, ध्यानी, परि-सह जीपक, कृपादि गुणमंज, अमतिप्रद्विद्वारी, रत्नावली फनकावली, मु-क्तावली, गुणरत्न, सम्बत्सर प्रमुख डप्कर तथा राधक, जिनाङ्गाराधक, सदैव उपासनीय, कृपाजलमय, दयासागर, तेजस्वी, यशस्वी, अतुल प्रतापी, शसि मयान सौम्य, सायरसम गम्भीर, जारण्डवत् अममत्त, कल्पवृक्षवत् परोप-कारी, पृथ्वीमम महनशील, परमवैरागी, धर्मपत्यागी, सकल गुणरागी, शा-मज्ञ, रम्यज्ञ, तत्त्वज्ञादि ममज्ञ गुणगणालङ्कृत ऐसे परमपूजनीय इस प्रकार

इन्हें पाञ्चों जवोहारक पवित्र पदोंके अखिल गुणोंका आराधन करना वह पदस्थ नामक प्रथम ध्यान कहा जाता है।

(२) **पिएम्स्थः**—शरीरमें रहे हुवे चेतनके गुणोंका विचारना। यथाः—पदस्थ ध्यानमें अग्रिहन्तादि पञ्चपरमेष्ठीके जितनेही अनुपम गुण फरमाए हैं वे सर्व मेरी आत्मामें विद्यमान हैं किन्तु डष्ट कर्मोंके आवर्णसैं दूके दूवे सर्व अदृश्य हो रहे हैं; ड्वार कर्मपटलसैंढी मेरे अपूर्व निर्मल गुणोंका प्रतिज्ञास नहीं होता; इसलिये उपरोक्त पञ्च परमेष्ठिने जिन ९ त्रैलोक्य प्रशंसनीय सद्-मार्गोंको आचरण किये हैं उनका मैंनी अनुकरण कर अपनी आत्मकों पवित्र करूं। ऐसा निर्मल विचार करना; वह पिएम्स्थ नामक द्वितीय ध्यान कहा जाता है।

(३) **रूपस्थः**—किसी आकार विशेषमें रहे हुवे आत्माके गुणोंको विचारना। यथाः—मैं कर्म वश शरीर धारण करनेके हेतु कजी निगोदिया, कजी नैरझ्या, कजी, पृथ्वी, अप, तेज, वायु और वनस्पती कजी वेन्डी, तेन्डी, चौरिन्डि, असन्नी और सन्नी पञ्चेन्डी; कजी मनुष्य और कजी देवतादि अनेक नामोंसैं पुकारा जाता हूँ किन्तु वस्तुतः मैं एक अमूर्त्त निर्मल, अजेद, शुद्धता रूप चिदानंद तत्वामृत, असङ्ग, अखण्डादि गुण सहित सिद्ध स्वरूप हूँ—इस प्रकार चिन्तन करना; वह तृतीय रूपस्थ ध्यान कहा जाता है।

(४) **रूपातीतः**—अरूपी निर्मल आत्माका विचार करना। जैसेः—यह चेतन अनंत ज्ञानमयी, अनंत दर्शनमयी, अनंत चारित्र्यमयी, अनंत अव्या-वाध सुखमयी, अनंत सुखविलासमयी, अनंत अगुरु लघुगुणमयी, अनंत अक्षय स्थितिमयी, अनंत वीर्यमयी, अनाद्यनंत, नित्यानंद, अविनाशी, अवेदी, अनु-पाधि, अजर, अमर, अव्यय, अकलङ्क, अरोगी, अक्लेशी, अयोगी, अचल, अमल, सहजानंदी, सहज स्वरूपी, पूर्णानंदादि अनंत गुणनिधान सिद्ध स्वरूप है। इस तरह केवल आत्मगुणोंमें रमण करना। यह चतुर्थ रूपातीत ध्यान कहा जाता है।

आप मुनीश्वर इस प्रकार उत्तमोत्तम ध्यानकर अपनी आत्माका कल्याण करते थे।

(११) उत्सर्गः—किसी पदार्थके त्यागकों उत्सर्ग कहते हैं उसके दो जेद होते हैं प्रथम इव्योत्सर्ग और द्वितीय जावोत्सर्ग

प्रथम इव्योत्सर्गके चार जेद इस प्रकार हैं यथाहीः—

(१) गणोत्सर्गः—गण (समुदाय)का त्यागकर जिन कल्पादि काठिन्य मार्ग अङ्गीकार करना

(२) देहोत्सर्गः—अनशनादि व्रत लेकर शरीरका त्याग करना अथवा काष्ठसंग व्यानकर शरीरकों छोड़ना

(३) उपधुत्सर्गः—कल्प विशेष उपधीका अलग करना

(४) अशुच्यत्त—पाणोत्सर्गः—सदोष अशनादि चतुर्विध आहारका त्याग करना

जावोत्सर्गके तीन जेद होते हैं. तद्यथाः—

(१) कपावोत्सर्गः—क्रोध, मान, माया और लोभादि १५ कपावोंका दूर दूर करना

(२) ज्ञोत्सर्ग वा ससारोत्सर्गः—नरकादि जन्मके कारण जूत मिथ्या-त्वादिको जुदा करना

(३) कर्मोत्सर्गः—ज्ञानार्थ्यादि अष्ट कर्मोंके हेतु जूत ज्ञान विरोधकादि विषयोंको दूर करना

उपरोक्त उत्सर्ग और जावोत्सर्गोंमें से वे पूज्य गुण्य कष्ट एक सरा-हनीय आचरण नर अपने उत्कृष्ट श्रमण पदकों सार्थक करने थे और कष्ट एक की तीव्र स्वप्न करते हुवे अपने मानव जन्मों कृतकृत्य करने थे

इन द्वादश जेदोंके अतिशय आप तीर्थ स्वरूप मात.कालके मातिक्रमणमें नियम पट्ट मासिक तप का चिन्तन करने हुवे यथा शक्ति तपस्या अङ्गीकार कर

अपने कर्मोंकी निर्जरा करते थे. यद्यपि ठमासिक तप प्रथम अनशन तपमें समावेश होसकता है किन्तु नित्य स्पर्णीय होनेसे तथा समस्त बाल-गोपालकों विशेष लाजप्रद समझ चेतन सुमति के प्रश्नोत्तरमें संघटित करके पृथग् उद्धृत करनेमें प्रयत्नशील होता हूँ.

(सर्वोपयोगी तप चिन्तन)

सुमतिः—हे चेतन महाराणा ! राजग्रही नगरीके नालीन्दे पारुमें शासनाधीश्वर श्रीवीर परमात्माने ठमासी तपस्याकी आप जी उस पवित्र तपस्याको आराधन करके अपना कल्याण कीजियेगा.

चेतन—प्रियसुमते ! मैं षट् मासी तपस्याके शब्दतक सुनना नहीं चाहता, श्रवण करतेही मेरा हृदय तड़फता है मेरे सामने नाम तक मत ले.

सच है ! जोजनका वियोग बड़ाही डःसह्य है चेतनने षट्मासी तप जब नामन्जूर किया तब उस सुमतिने विचारा कि जो अनादि कालसे कुमतिके साथ प्रेम कर आनंद मना रहे हैं उन्हें एकदम सुमार्गमें उपस्थित करना मुश्किल है इसलिये संतोष दे देकर सन्मार्गके अग्निमुख करना उचित होगा; यह सोच पुनरपि चेतन राणाको समझाती हैः—

सुमतिः—हे प्राणपते ! एक दिन कम षट् मास कर सकते हैं ?

चेतनः—महानुजावा ! नहीं कर सकता.

तथैव दो दिन कम कर सकते हैं ? नहीं कर सकता. तीन दिन कम कर सकते हैं ? नहीं कर सकता. चार दिन कम कर सकते हैं ! नहीं कर सकता. पांच दिन कम कर सकते हैं ? नहीं कर सकता. छ दिन कम कर सकते हैं ? नहीं कर सकता. सात दिन कम कर सकते हैं ? नहीं कर सकता. आठ दिन कम कर सकते हैं ? नहीं कर सकता. इसही प्रकार एकश दिन कम करते पन्ध्र दिन कम कर सकते हैं ? नहीं कर सकता तथैव एकश दिन कम करते पच्चीस दिन कम कर सकते हैं ? इसही तरह उन्नतीस दिन कम षट् मास कर सकते हैं ? नहीं कर सकता.

हे गुणनिधे ! तीस दिन यानि एक मास कम ठ महिने अर्थात् पाच महिने तो स्वीकार कीजिये चूँके वार २ यह सुअनुसर नहीं मिल सकता जरा उपयोग स्थिर कर विचार कीजियेगा इसमें आपका एकान्त कल्याण होनेवाला है

सज्जनो ! यदोन्मत्त आत्माके कदाग्रहकों दूर करना उःसाध्य है तदपि पुरुषार्थ बलवान् है अस्तु.

चेतनः—प्रिय पत्नि ! पाँच महिनेकी तपस्या मैं हरगिज़ नहीं कर सकता सुनने मात्रसें मेरा शरीर धूजता है जिक्र तरु करना ठोम दे

इन शब्दोंको श्रवणकर वह मनुजावा विचार करती है तेरे और जी निध श्रेणीके तपका दरिद्राप्त करना उचित है—यह सोच प्रेमपूर्वक कहती हैः—

प्यारे अवधु ! खेर यदि आप पाच मास नहीं कर सकते हैं तो कुछ पर-वाह नहीं किन्तु एक मास और एक दिन कम पटमास तप कर सकते हैं ? अर्थात् एक दिन कम पाच मास कर सकते हैं ? नहीं कर सकता तथैव एक २ दिन कम करते उन्नतीस दिन कम पाच मास कर सकते हैं ? नहीं कर सकता

हे ब्रह्मदेव ! दो मास यानी साठ दिन कम ठ मास कर सकते हैं ? अर्थात् चार मास तो अङ्गीकार कीजिये एक हिस्सा तो निकल गया केवल दो हिस्से ही शेष हैं घबराहटकों त्याग का सन्तोष दृष्टिकों आदर कीजिये और मेरी प्रार्थनाओं कबूल करके अपने निज स्वरूपको कृतार्थ कीजियेगा

पाठकरों ! कर्मरूप मदिराको पान किया हुआ पागल चेतन बिलकुल अङ्गीकार नहीं करता केवल यह कहता है कि चातुर्मासिक तपस्या करनेको मैं सर्वथा अममर्त्य हूँ वृत्तान्तों अखित्यार कर लेते तेरे इन “कर्णशूलवत्” शब्दोंमें नहीं सह सकता विचारी सुमता दिलगीर होकर पुनः कहती हैः—

हे प्राणाधार ! दो महिने और एक दिन कम पटमास अर्थात् एक दिन कम चार मास कर सकते हैं ? तथैव एक २ दिन न्यून करते उन्नतीस दिन कम चार मास कर सकते हैं ? नहीं कर सकता अस्तु तीन मास तो कबूल

कीजियेगा अब तो अर्धजागही रह गया है फिर आपको ऐसी अपूर्व स काम निर्जराका कव सौजाग्य प्राप्त होगा.

चेतनः—प्रियसुमते ! तेरा डःखदाई कथन सर्वथा उपेक्षणीय है मैं किसी कदर अङ्गीकार नहीं कर सकता.

सुमतिः—लाचार होकर हे मेरे सङ्गयोगी चेतन राणा ! तीन महिने और एक दिन कम षट्मास यानी एक दिन कम तीन मास कर सकते हैं ? तथैव क्रमशः एक १ वासर कम करते हुवे उनतीस दिन कम कर सकते हैं ? नहीं कर सकता. अस्तु चार माह कम षट्मास तप यानी दो मासका तप तो कबूल करियेगा; स्वामिन् ! पुनः १ यह मानव जव प्राप्त होनेवाला नहीं है समझना है तो समझ लीजिये; वना फिर पस्ताना हागा.

चेतनः—प्यारी सुमते ! तुमारा अनाचरणीय कथन विलकुल अमान्य है विचारी कुमति मुझे सदैव मुखकारिणी है.

सुमतिः—“मजबूर होकर” हे मेरे प्राणवद्धज ! चार महिने और एक दिन कम अर्थात् एक दिन कम दो मास कर सकते हैं ? इसही तरह एक १ अहन् कम करते उनतीस दिन पर्यन्त पूछकर अम्बीरमें विज्ञप्ति करती है कि अब तो मरुसो दिन कम हो गये केवल तीस दिनही की प्रार्थना है. कृपा कर स्वीकारता फरमाईयेगा.

चेतनः—प्राणवद्धजे ! चाहे वह तुमारी निगाहमें ठीक हो हमतो सदैव खिलाफ (AGAINST) हैं. तुम इस कथनको सर्वथा ठोड़ दो.

सुमतिः—प्राणपतेः—यदि आपकी मास क्षमणकी समर्थ्य नहीं है तो पाश्च मास और एक दिन कम षट्मास यानी एक दिन कम मास क्षमण कर सकते हैं ? इसही तरह एक १ दिन कम करते तेरह दिन तक पूछती हुई प्रार्थना करती है कि हे नाथ ! मेरी चिरकालीय प्रार्थनाको अब तो कृपाकर सफल कीजिये !

चेतनः—माणप्रिये! मैं मुनता थक गया ऊँ वार मौनका हुकुम बंदीस किया किन्तु अब तक तू अपनी हटकों नहीं ठोमती है

सुमतिः—दिलमें सोचकर “जला करते जो बुरा होता है” खेर कोई हर्ज नहीं पुनरपि सहायिक होकर—माणनाथ! चौतीसजत्त* कर सकते है? नहीं कर सकता बत्तीसजत्त कर सकते है? नहीं कर सकता तीसजत्त कर सकते है? नहीं कर सकता; इसही प्रकार दो १ जत्त कम करते १७ जत्त यानी अष्ट कर्म निरुद्धनके हेतु एक अछाई तो कीजियेगा! नहीं कर सकता तयैव दो १ जत्त कम करते अष्ट जत्त यानी ज्ञान, दर्शन, और चारित्र्यों उज्ज्वल करनेवाला एक तेला कर अपूर्व सुखका अनुभव कीजियेगा! नहीं कर सकता

षट्जत्त कर सकते है? नहीं कर सकता चार जत्त यानी उपवास व्रतकों तो अङ्गीकार कीजियेगा! नहीं कर सकता महा माङ्गलिक आचाम्ल (आयँविल) कर सकते हैं? नहीं कर सकता तयैव नीविगय, एकल ठाणा, दात, एकासन कर सकेंगे? नहीं कर सकता वे आसन कर सकेंगे? नहीं कर सकता इसही तरह अबद्ध, पुरिमद्ध, साढपोरसी, पोरसी कर सकते है? देखिये अब तो केवल ३ घटेकीही प्रार्थना है क्या अब जी स्वोकारनेमें हिचकायों हे स्वामिन्! कृपया अब तो मेरी इच्छाको सफल कीजियेगा

चेतनः—प्रिय कान्ते! तीन कलाककी हुदा मुजसें सहन नहीं हो सकती

सुमतिः—दिलमें विचारकर SOME THING IS BETTER THAN NOTHING यानी बिलकुल नहींसें तो कुछ होना अच्छा है ऐसा खयाल कर डःखपूर्वक रुदन करती हुईः—हे माणाधार! कुमतिकी निरंतर प्रार्थना मन्जूर करते हो तो अब मरी अन्तिम नौकारसीकी प्रार्थना तो कबूल कीजिये!

* चार भक्तका एक उपवास, उ भक्तका एक बेला, अष्टभक्तका एक तेला तयैव जितने उपवास हों उनके द्विगुने कर दोभत अधिक मिला देना यह जत्तका नियम है लिहाना चौनीस भक्तके सोल्ह उपवास होते हैं तथा कहीं पर केवल द्विगुनेसेंही भक्तका नियम प्रमाण किया गया है ये दानोही नियम श्री जगवतीसूत्रमें फरमाये हैं

चेतनः—प्रिये ! क्या रो कर मुझे मराती है मैं नौकारसी जी नहीं कर सकता चूँके मूँके सूर्योदयके प्रथम चाहपानी बगेर नहीं चलता, कच्ची कहना है मुझे चलम—सिगरेट पीये बगेर, कच्ची कहना अपश्यम खाए बगेर दस्त नहीं लगता, कच्ची कहता माजुम, जङ्ग बगरा सेवन किये बिडन आफरा चड़ जाता है. इत्यादि अनेक डर्व्यसनोके वशीज्जुत हुवा इस प्रकार कथन करता है—तू बन्नी ही पगला है अनेकवार रोकनेपर जी नहीं मानती. खबरदार आइन्दा पूरा खयाल रखना वनी तेरे हक्कमें बुरा है.

सुमतिः—मनमें विचार कर “अब हाथ जोड़ीमें काम चलने-वाला नहीं, रोए राज कच्ची मिलना नहीं बहाडरीकों धारण कर उपदेश देना उचित होगा.” प्राण प्यारे ! क्या आपको इनकार करते लज्जा नहीं आती ! घिसते शिलपर जी निशान हो जाता है किन्तु आपके वज्र हृदयपर कुछ जी असर न पहुँचा. धन्य है ! आपके अनंत ज्ञानादि चतुष्टय गुणोंकों और धन्य है ! आपके शुद्धउपयोगकों तथा कृत पुण्य है ! आपकी प्रशंसनीय पवित्रताकों और सुवाग्विक है आपकी जवोहारक सन् सङ्गतकों एवम् शतसः धन्य है आपके चैतन्य लक्षणकों; क्या ही अठ्ठा होता कियदि आप चैतनकेवजाय जम् नामसे मशहूर होते. आप मेरे इन शब्दोंपर बुरा नमानियेगा मैं सदैव आपका जला चाहनेवाली एक किङ्करी हूँ; इसलिय इस प्रकार जां वेजां शब्द कहती हूँ—अब जी आप मेरी प्रार्थनापर गौर फरमाइये और मेरी दली आशाकों पूर्ण कर अपना कल्याण कीजियेगा.

चेतनः—अत्यन्त आग्रहके हेतु दाक्षिण्यता वश होकर विचारता है. “अस्तु इसका जी सन्मान रखना चाहिये कुछ दिन हजमाईस कर अवलोकन करना चाहिये यदि सानंद निर्वाह हो जायगा तो हमेशाके वास्ते पावंदी कर लेंगे.” ऐसा विचार कर—प्रिय सुमते ! अठ्ठा अब आजसे तुमारी प्रार्थनाऽनुसा नौकारसी करेंगे.

सुमतिः—हे प्राणेश्वर ! आप मेरे स्वामी हैं, आप मेरे नाथ हैं; आपही प्राणाधार हैं. यदि आप मेरी प्रार्थनाकों सफल न करें तो अन्य कौन करेगा. इस प्रकार अनेकशः स्तुती की.

अनादि कालमें कुपतिके वशीभूत हुवे चेतनकों उपकारिणो सुमति देवीने सन्मार्गमें प्रवृत्त किया

इसतर कितनेक दिन-सो वर्ष नरकाऽयुष तोडनेवाली नौकारसोका अभ्यास कराकर हजार वर्ष नरक आयुष्य तोडनेवाली प्रहरसो अङ्गीकार करवाई तथैव क्रमशः साठ प्रहरसी, पुरिमट्ट, अष्ट, वेआसन, एकासन, एकल ठाणा, दात, नीरिगय, ओषविल और यावत् उपवास पर्यन्त उत्तम मार्गपर पहुँचा दिया अब अविस्मरणीय उपकारिणी सुमति कहती हैः—

सुमतिः—माणवत्तज ! क्या आपको आनंदरसका अनुभव हुआ

चेतनः—माणिये ! तेरा अवर्णीय उपकार हरगीज नहीं भूल सकता छष्ट कुपतिने मुझे फँदमें फसाकर अनादि कालसे डःसख डःखसे दग्ध किया। इस आनंद रसका आस्वादन पामर माणी नहीं पा सकते अनुज जी लोगही इस अपूर्व आनदकों लूट रहे हैं—इसही तरह बेला, तेला यावत् छठई, पक्ष क्षमण, मासक्षमण, दोमास, चार मास और ष मास पर्यन्त तपस्या कर अपने निज स्वरूपमें तन्मय हुआ

एक दिनका जिक्र है कि चेतन सुमतिसें पूछता हैः—

चेतनः—हे माणवत्तजे ! बेला, तेला आदि इकठी तपस्या करनेवाले तों कुछ अधिक लाज होता है या पृथक् २ दो उपावास, तीन उपवासादि करनेवालेकों और एकदमसेबेले, तेले बगरा करनेवालेकों सदृशही फल होता है

सुमतिः—माणेश्वर ! यह तो अनुभवसे ही प्रकट सिद्ध है कि जुदा १ उपवास करनेमें इकत्रित करनेवालेकी विशेषतः इच्छानिरोध होसकती है ज्यों १ पौत्रलिक पदार्थोंसे इडा विशेष हटनी जाती है त्यों २ आत्म अनुभव प्रकट होता जाता है इधर शास्त्रकारोंने इकठी तपस्याका पञ्चगुणा फल फरमाया है जिसे श्रवणकर उत्तम पुरुषोंके जाब एकदम उत्प्लसित होजाते हैं हेनाय ! उसही तपस्यार्थक अनुपम महात्म्यकों ध्यानपूर्वक श्रवण करनेका अनुग्रह कीजियेगा

॥ इकठ्ठी तपस्याका महा फल ॥

(नूतन प्रणाली)

नं०	॥ तपश्चर्या ॥
१	एक उपवास करे तो एकका ही फल होता है.
२	दो उपवास इकठ्ठी करे तो पाँच उपवासोंका फल होता है
३	तीन उप० इ० करे तो २५ उपवासोंका फल होता है.
४	चार उप० इ० करे तो १२५ उपवासोंका फल होता है.
५	पाँच उप० इ० करे तो ६२५ उपवासोंका फल होता है.
६	छ उप० इ० करे तो ३ हजार १२५ उपवासोंका फल होता है.
७	सात उप० इ० करे तो १५ हजार ६२५ उपवासोंका फल होता है.
८	आठ उप० इ० करे तो ७८ हजार १२५ उपवासोंका फल होता है.
९	नव उप० इ० करे तो ३ लक्ष ७० हजार ६२५ उप० फल होता है.
१०	दस उप० इ० करे तो १९ लक्ष ५३ हजार १२५ उप० फल होता है
११	ग्यारह उप० इ० करे तो ९७ लक्ष ६५ हजार ६२५ उप० फल होता है
१२	बारह उप० इ० करे तो ४ करोड़ ८८ लक्ष २८ हजार १२५ उप० फल होता है
१३	तेरह उप० इ० करे तो २४ करोड़ ४१ लक्ष ४० हजार ६२५ उप० फल होता है
१४	चौदह उप० इ० करे तो एक अर्ब २२ करोड़ ७ लक्ष ३ हजार १२५ उप० फ०
१५	पन्ध्रह उप० इ० करे तो ६ अर्ब १० करोड़ ३५ लक्ष १५ हजार ६२५ उप० फ०

१६	सोलह उ० इ० करे तो ३० अर्ब ५१ कोड़ ७५ लक्ष ७८ हजार १२५ उ० फल होता है
१७	सतरह- उ० इ० करे तो १ खर्व ५२ अर्ब ५८ कोड़ ७८ लक्ष ए० हजार ६२५ उ० फ० .
१८	अठारह उ० इ० करे तो ७ खर्व ६२ अर्ब ए३ कोड़ ए४ लक्ष ५३ हजार १२५ उ० फ० .
१९	उनतीस उ० इ० करे तो ३८ खर्व १४ अर्ब ६९ कोड़ ७२ लक्ष ६५ हजार ६२५ उ० फ० .
२०	बीस उ० इ० करे तो १ नील ए० खर्व ७३ अर्ब ४८ कोड़ ६३ लक्ष २८ हजार १२५ उ० फ० .
२१	एकवीस उ० इ० करे तो ए नील ५३ खर्व ६७ अर्ब ४३ कोड़ १६ लक्ष ४० हजार ६२५ उ० फ० .
२२	बाईस उ० इ० करे तो ४७ नील ६८ खर्व ३७ अर्ब १५ कोड़ ८२ लक्ष ३ हजार १२५ उ० फ० .
२३	तेवास उ० इ० करे तो ३ पद्म ३८ नील ४१ खर्व ८५ अर्ब ७९ कोड़ १० लक्ष १५ हजार ६२५ उ० फ० .
२४	चाबीस उ० इ० करे तो ११ पद्म ए० नील ए खर्व २८ अर्ब ए५ कोड़ ५० लक्ष ७८ हजार १२५ उ० फ० .
२५	पचसम उ० इ० करे तो ५९ पद्म ६० नील ४६ खर्व ४४ अर्ब ७७ कोड़ ५१ लक्ष ए० हजार ६२५ उ० फ० .
२६	ठवीस उ० इ० करे तो २ सङ्ग ए८ पद्म २ नील ३२ खर्व २३ अर्ब ८७ कोड़ ६९ लक्ष ५३ हजार १२५ उपवासोका फल०
२७	सत्तावीस उ० इ० करे तो १४ सङ्ग ए० पद्म ११ नील ४१ खर्व १९ अर्ब ३८ कोड़ ४७ लक्ष ६५ हजार ६२५ उप० फल०
२८	अठावीस उ० इ० करे तो ७४ सङ्ग ५० पद्म ५८ नील ५ खर्व ए३ अर्ब ए३ कोड़ ३८ लक्ष २८ हजार १२५ उप० फल०
२९	उनतीस उ० इ० करे तो २७२ सङ्ग ५२ पद्म ए० नील २९ खर्व ८४ अर्ब ६१ कोड़ ए१ लक्ष ४० हजार ६२५ उप० फल०

३०	तीस उ० इ० करे तो एक हजार ८६२ सङ्ग ६४ पञ्च ५१ नील ४९ खर्व २३ अर्व ९ क्रोड़ ५७ लक्ष ३ हजार १२५ उ० फ०
३१	एकतीस उ० इ० करे तो ९ हजार ११३ सङ्ग २२ पञ्च ५७ नील ४६ खर्व १५ अर्व ४७ क्रोड़ ८५ लक्ष १५ हजार ६२५ उ० फ०

(प्राचीन प्रणाली)

नं०	॥ तपस्या ॥
१	एक उपवास करे तो एकका ही फल होता है.
२	दो उपवास इकठ करे तो पाँच उपवासोंका फल होता है.
३	तीन उ० इ० करे तो २५ उपवासोंका फल होता है.
४	चार उ० इ० करे तो १२५ उपवासोंका फल होता है.
५	पाँच उ० इ० करे तो ६२५ उपवासोंका फल होता है.
६	छ उ० इ० करे तो ३ हजार १२५ उपवासोंका फल होता है....
७	सात उ० इ० करे तो १५ हजार ६२५ उपवासोंका फल होता है.
८	आठ उ० इ० करे तो ७८ हजार १२५ उपवासोंका फल होता है
९	नव उ० इ० करे तो ३ लक्ष ६० हजार ६२५ उप० फल होता है.
१०	दस उ० इ० करे तो १९ लक्ष ५३ हजार १२५ उप० फल०
११	ग्यारह उ० इ० करे तो ९७ लक्ष ६५ हजार ६२५ उप० फल०.
१२	बारह उ० इ० करे तो ४ क्रोड़ ८८ लक्ष २८ हजार १२५ उ० फ०
१३	तेरह उ० इ० करे तो २४ क्रोड़ ४१ लक्ष ४० हजार ६२५ उ० फ०
१४	चौदह उ० इ० करे तो १२२ क्रोड़ ७ लक्ष ३ हजार १२५ उ० फ०
१५	पन्ध्रह उ० इ० करे तो ६१० क्रोड़ ३५ लक्ष १५ हजार ६२५ उ० फ०

१६	सोलह उ० इ० करे तो ३ हजार क्रोड ५१ क्रोड ७५ लक्ष ७० हजार १२० उ० फल होता है ...
१७	सत्तर उ० इ० करे तो १५ हजार क्रोड २२८ क्रोड ७० लक्ष ६० हजार ६२५ उ० फल ...
१८	अठार उ० इ० करे तो ७६ हजार क्रोड २६३ क्रोड ६४ लक्ष ५३ हजार १२५ उ० फल ...
१९	उनतीस उ० इ० करे तो ३ लक्ष क्रोड ८१ हजार क्रोड ४६९ क्रोड ७० लक्ष ६५ हजार ६२५ उ० फल
२०	बीस उ० इ० करे तो १९ लक्ष क्रोड ७ हजार क्रोड ३४८ क्रोड ६३ लक्ष १८ हजार १२५ उ० फल
२१	एकवीस उ० इ० करे तो ६५ लक्ष क्रोड ३६ हजार क्रोड ७४३ क्रोड १६ लक्ष ४० हजार ६२५ उ० फल
२२	बावीस उ० इ० करे तो ४ क्रोडाक्रोड ७६ लक्ष क्रोड ८३ हजार क्रोड ७१५ क्रोड ८२ लक्ष ३ हजार १२५ उ० फल
२३	तेवीस उ० इ० करे तो २३ क्रोडाक्रोड ८४ लक्ष क्रोड १८ हजार क्रोड ५७९ क्रोड १० लक्ष १५ हजार ६२५ उ० फल
२४	चौबीस उ० इ० करे तो ११ क्रोडाक्रोड २० लक्ष क्रोड ६२ हजार क्रोड ८६५ क्रोड ५० लक्ष ७८ हजार १२५ उ० फल
२५	पञ्चवीस उ० इ० करे तो ५६६ क्रोडाक्रोड ॥ लक्ष क्रोड ६४ हजार क्रोड ४७७ क्रोड ५३ लक्ष ६० हजार ६२५ उ० फल
२६	ठर्वास उ० इ० करे तो दो हजार ६०० क्रोडाक्रोड २३ लक्ष क्रोड २२ हजार क्रोड ३८७ क्रोड ६९ लक्ष ५३ हजार १०५ उ० फल
२७	सत्तावीस उ० इ० करे तो १४ हजार ९०१ क्रोडाक्रोड १६ लक्ष क्रोड ११ हजार क्रोड ६३८ क्रोड ४७ लक्ष ६५ हजार ६२५ उ० फल
२८	अठ्ठावीस उ० इ० करे तो ७४ हजार ५०५ क्रोडाक्रोड ८० लक्ष क्रोड ५९ हजार क्रोड ६९२ क्रोड ३८ लक्ष २८ हजार १२५ उ० फल

२९	उनतीस उ० इ० करे तो ३ लक्ष ७२ हजार १२९ कोड़ाकोड़ दो लक्ष कोड़ ९७ हजार कोड़ ४६१ कोड़ ९१ लक्ष ४० हजार ६२५ उप० फल होता है.
३०	तीस उ० इ० करे तो १७ लक्ष ६२ हजार ६४५ कोड़ाकोड़ १४ लक्ष कोड़ ९२ हजार कोड़ ३०९ कोड़ ५७ लक्ष ३ हजार १२५ उप० फल०
३१	इकतीस उ० इ० करे तो ९३ लक्ष १३ हजार २२५ कोड़ाकोड़ ७४ लक्ष कोड़ ६१ हजार कोड़ ५४७ कोड़ ८५ लक्ष १५ हजार ६२५ उपवासोंका फल होता है.

मेरे प्यारे गुणानुरागियों ! आपको उपरोक्त इकठ्ठी तपस्याके महा फलों पढ़कर यह जलीव प्रकार सुविदित होगया होगा कि ऐमे अपूर्व रत्न खजानेको लूटना कौन न चाहता होगा ? हमारे आत्मारथी नव्यात्मा अवश्य इस तर्फ ध्यान देकर महा निर्जराभूत दिव्य तपास्यका आचरणकर अपनी आत्माका कल्याण करेंगे ऐसा सुदृढ़ विश्वास है. देखिये इस प्रताप शाली दिव्य तपस्यासे इस प्रकार अनुपम गुणोंकी सुप्राप्ति होती है:—

(श्लोक)

यस्माद्विघ्न परंपरा विघटते दास्यं सुराःकुर्वते ।

कामः शाम्यति दाम्यतीन्द्रियगणः कल्याण मुत्सर्पति ॥

उन्मीलन्ति महर्षयः कलयति ध्वंसंचयः कर्मणां ॥

स्वाधीन त्रिदिवं शिवंच जवति श्लाघ्यं तपस्तत्र किम् ॥१॥

भावार्थः—जिस अतुल प्रतापी दिव्य तपधारा परंपरानुगत विघ्न एक-दमसे विनाश हो जाता है और विनय श्रेष्ठ देवता दासपना करने लग जाते

है तथा दुर्जय कामदेव तत्काल उपशान्त हो जाता है और चंपल इन्दीय समुदाय एकदम स्वाधीन हो जाती है एवम् महामङ्गल वर्तने लग जाता है तथैव त्रिपुल वैजय समाप्त होता है इसी प्रकार घोर कर्म शत्रु तत्क्षण विध्वंस हो जाते हैं अन्तिममें स्वतन्त्रता पूर्वक सामान्यतया उत्तम देवलोकके अपूर्व सुखोंको 'जोगता' है और विशेषतया अचिरात् मोक्षपदको पाकर अनन्त सुखोंका अनुभव करता है सज्जनो ! क्या यह उग्र तप श्लाघनीय नहीं है ? किन्तु अवश्यही त्रिजगत प्रशंसनीय व अनुकरणीय है

हमारे वे महा तपस्वी पूज्य गुरु पुङ्गव इस प्रकार तपस्याका आचरण करते हुवे अपनी आत्मामें रमण करते थे अहाहा ! आपकी तप महिमा जगत् प्रशंसनीय व विश्व-अनुमरणीय है, वैराग्य रसिकों ! अब मैं आपकी निर्मल ज्ञावनाका किञ्चित् विवरण प्रदर्शित करनेका सहास करता हूँ—

॥ निर्मल ज्ञावना ॥

शुद्ध विचारोंवाला सत्तागत रहे हुवे 'आत्मगुणोंका आविर्भाव करना' उसे ज्ञावना कहते हैं

वे पूज्य गुरुवर्य विशाल विस्तीर्णरूपसे निम्नलिखित चार ज्ञावनाओंको ज्ञाते हुवे अपने कर्म वृन्दको विध्वंस करते थे जिसका किञ्चित् स्वरूप पाठकोंको सेवामें पेश करता हूँ—

॥ चौपाई ॥

प्रथम मैत्री निर्मल गुणधार ।

प्रमोद हृदय विकशित सुखकार ॥

कारुण्य दया रस आत्मसार ।

माध्यस्थ ज्ञावना जय २ कार ॥१॥

प्यारे पाठकवरों ! कितनेक महानुभावोंके हृदयमें ये अवश्य उमड़लहरें

उठलरहीं होंगी कि मैत्री माताके अन्दर ऐसा क्या प्रौढ दिव्य गुण है कि जिससे प्रथम पद विभूषित कर रही है; उत्तरमें इतनाही निवेदन काफी होगा कि यावत् क्षेत्र शुद्धि न होगी सर्व यत्न निष्फल हैं अर्थात् जब तक हृदय पवित्र गुण करके विभूषित न हो तब तक सिद्ध्यर्थ दुःसाध्य है इतनाही नहीं किन्तु सर्वथा असंभव है और वही गुण इस मैत्री मातामें विद्यमान है; अतः यह प्रथम पदसे विभूषित होरही है अब मैं अपनेनिज मैत्री माताका दिव्य स्वरूप रोशन करता हूँ:—

॥ मैत्री ज्ञावना ॥

अशेष प्राणियोंके साथ मित्रता रखना उसे मैत्री ज्ञावना कहते हैं.

यह प्रकट लोकोक्ति है कि “ संप जहा जंप ” अर्थात् संप है वहां अवश्य विजय है एक्यता (UNITY) एक ऐसी पवित्र वस्तु है कि जिसके जूरिये प्राणी शीघ्रही अपनी इष्टता संप्राप्त कर सकता है इमही मैत्री महाराणीके प्रज्ञावसें निर्बल जी सबलकों अपने कवजेमें कर सकता है जैसे ठोटेश तन्तुओंसे बुनी हुई रस्सी एक मदोन्मत्त हस्तिकों गिरफ्तार कर सकती है यह एक्यता का ही महा प्रज्ञाव है.

इधर एक्का (संप) एक ऐसा बलवान् है कि बादशाह तककों जी परास्त कर देता है. शायद आपने तास (PLAYING CARDS) का खेल देखा होगा कि उसमें रहा हुआ एक्का कितना बलीष्ट होता है.

डरीपर तिरि गेरनेसें तिरिवाला जीत जाता है तथैव तिरपर चौकी, चौकीपर पञ्जी; इसही प्रकार क्रमशः नौलीपर दशी गेरनेसें दशीवाला विजयकों प्राप्त होता है उपरोक्त नवों पत्रोंपर यदि बादशाहका गुलाम आजावे तो सर्वको शिकस्त देता है उसपर जी यदि बादशाहकी बेगम आजावे तो गुलाम तककों दबा देती है इमपर जी यदि खाम बादशाह सलामत तसरीफ ले आवें तो डरीसें दशीतक व गुलाम तथा बीबीकों जी जय कर लेते हैं मगर मेरे प्यारे पाठकों ! यदि एक्का महाराणा पदार्पण करे तो सर्वकोंत-

काल पराजय कर देता है, अर्थात् विजयको संपाप्त होता है कहनेका तात्पर्य यह है कि तासका तपासा जी हमें यह नसीहत करता है कि एकेसें बढ़कर कोई पदार्थ नहीं इसकी उत्कट कोशिस करना—मलेक, प्राणियोंका अन्वेल धर्म है।

इस संप महाराणाके न होनेसें कुसप देवने भारतवर्षको बरवाद कर दिया अर्थात् सत्ताहीन बना दिया जिसमें जी जैन जातिकी दशा बड़ीही सोचनीय है इसपरजी हमारे कितनेक ज्ञव्य धर्म नेतागण परस्पर विरोध करके पवित्र जैन धर्मको उज्ज्वल कर रहे हैं हम नहीं समज सकते कि वे हमारे पूज्य महात्मा कुसपदेवके मेम रसमें किस प्रकार निमग्न हो रहे हैं वे धर्म धुरधर धर्मावतारादि अलङ्कारोंसें अलङ्कृत होनेपर जी इस प्रकार अत्रम कृत्यमें कदम रखकर अपनी उद्यताका दृढ परिचय दे रहे हैं महानुभावों! हमारे वे माननीय महोदय उसही प्रकार दमक रहे हैं कि जैसें काक अपनी उज्ज्वल दिव्य कान्तिसें विभूषित होता है घन्य है! हमारे कृपातारों! आपको पुनः २ नमस्कार है!! आप सदृश नर रत्नों सें ही यह पृथ्वी रत्नवती कहलाती है

इपर हमारे कितनेक शासन मेमी ज्ञव्यात्मा इस पवित्र जैन जातिकी डम प्रकार उद्देशा देखकर खेदातुर होते हुवे अपने नेत्रोंसें अश्रुओंका अविरल धारा बहार रहे हैं और परम परमात्मामें यह दिली मार्यना कर रहे हैं कि इस जैन समाजका शीघ्रही उच्चार हो हमें एक बख्त फिर जी वह सौजाग्य संपाप्त हो कि जैन शासन भारतएक अपने दिव्य प्रकाशसें इस पृथ्वी मण्डलको प्रकाशितकर ज्ञव्यात्मकें हृदयरूप कण्ठोंको विकसित करता हुवा हमें दर्शन दे ताके हम अपने प्यासे नेत्रोंको शान्तरसमें निमग्न करें

आपको यह धारणी रोशन है कि जब तक प्राणियोंका विचार परस्पर न मिलता है तब तक कोई कार्यकी सिद्धि नहीं हो सकती अथवा यों कहिये कि जब तक प्राणियोंका ममरम एकमेक न हो जाय दिलो आशाए नहीं पल्ल मकरी इस मानंदरसको संमिलित करना मैत्रो माता के ही आशीन है देखिये:—

जब तक कषाय अलग न होगा, समकीर्ति बीज हरगीज नहीं उहर सकती जैसे यह कहावत सशहूर है कि “चीकटे घड़े न लागे ढांट” रूपान्तरसे यह अनुज्वमें लाइयेगा कि जैमें कोई मनुष्य वादामादि की चक्रियें जमाता है तो अव्वल थालमें घृत लगा देता है ताके उसमें बिलकुल न चिपट सके यहां तककी एक अंश जी उसमें नहीं रह सकता इसही तरह जब तक कषायरूपी चिकट हृदयरूपी थालमें लग रहा है तब तक समकीतरूपी वरफी कजी नहीं उहर सकती. तात्पर्य यह है कि जब तक घेषाग्नि नष्ट न हो शान्तरस प्राप्त नहीं हो सकता समकितके जहाँ-सम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा और आस्तिक्यता ये पाँच लक्षण बताए गए हैं वहाँ पर आदि सोपान (सीढ़ी) सम रखवा गया है “सम” अर्थात् चतुराष्ट्र लक्ष जीवा योनी पर समान परिणाम रखना इस पदको सिद्ध किये वगैरे सम्यक्त्वका यथार्थ गुण प्रकट नहीं हो सकता जावार्थ यह है कि समकितकों प्राप्त करानेवाली जी हमारी मैत्री माता ही है.

हमारे वे पूज्य गणाधिपति इस प्रकार मैत्री जावनाका आराधन करते हुवे अपने कर्मपटलकों विध्वंस करते थे. तद्यथा:—

हे आत्मन् ! अपने समुदायमें जितने साधु साध्वियें हैं उन सर्वसे मित्रता रखना चाहिये चूँके तू और ये सर्व एकही गुरु महाराजकी निश्राइमें रहने वाले हो अर्थात् एकही परपोषकारीके उपासक हो जिस प्रकार एक माताके गर्भसे उत्पन्न हुवे ज्ञाईयोंके गाढ स्नेह होता है इसही तरह तुझे जी प्रीतिजाव रखना चाहिये; इतनाही नहीं किन्तु समस्त खरतर गच्चीय चतुर्विध संघके साथ संपरखना उचित है कारण की तू और ये सर्व एकही गच्चाधिपति पूज्यपाद श्री जिनेश्वरसूरीश्वरकी आज्ञामें चलनेवाले हो अर्थात् उनके फरमान के मुआफिक क्रिया काण्म करनेवाले हो इतने पर ही संतोष करना तुझे योग्य नहीं किन्तु चौरासी गच्छवाले सकल मन्दोर आसनायके अनुयाईयोंसे एक्यता रखना चाहिये चूँके अपन सर्व पूज्यपाद श्रीजद्योतनसूरीश्वरके आज्ञानुयाई हैं तथा अपने षमावश्यादि खास विधियोंमें कुछ जी तफावत नहीं है इतना ही नहीं किन्तु अनेक आचार विचार सदृश है इतने पर ही सब करना तुझे

लाजिम नहीं किन्तु वाईस समुदाय व तेरह पंथवालों में जी प्रीतिभाव रखना उचित है चूँके वे जी श्वेताम्बर जैन धर्मकी शाखाएँ हैं अपने व उनके कितने ही-सबजेक्टस् (विषय) - मिलते हुवे हैं इतनेपर ही आनन्द भगवान् योग्य नहीं किन्तु जैन धर्मकी मूल दो शाखाओंमेंसे एक शाखा जो दीगम्बर जैन धर्मकी है उनसे जी मित्रता रखना चाहिये कारण की अपन सर्व एक ही चौबीस तीर्थङ्करोंके उपामक है इतनाही नहीं किन्तु कइ एक व्यवस्थाएँ समान है कहनेका तात्पर्य है कि जैन पद से जो २ महानुभाव विभूषित हो रहे हैं उन सर्वसे मित्रता रखकर अपना कल्याण करना चाहिये ।

प्यारे चेतन ! इतनेमें ही हर्ष मनाकर आनन्दित न होना किन्तु पट् दर्शनियों में जी मिलान रखना चाहिये चूँके अपने व उनके बहुतसे तात्त्विक विषय (PHILOSOPHY) समान है यथा जैन धर्मका मूल सिद्धान्त "अहिंसापरमोधर्म" है इसमें सबही धर्मवाले तसलीम करते हैं तथैव मृपावाद, स्नेय, मैथुन और परिग्रह धारण करना महा डाखुदाई है इन्हे जो सर्व दर्शनवाले सादर शिरोधार करते हैं इसलिये पट् दर्शनियोंके साथ जी मित्रता रखना समुचित है ।

हे अवधु ! इतनेमें ही संतोषित मत हो जाना किन्तु मनुष्य मात्र (पुरुष, स्त्री और नपुंसक प्राण) से सप रखना चाहिये कारण की जातिस्त्रेन उनके साथ स्वधर्मता है अर्थात् इनशानियतके कर्त्तव्य उनके व अपने धरोवर है तथैव देव, तिर्यच और नारकीके जीवोंसे निरन्तर बंधुभाव रखना चाहिये चूँके इन्दिपत्वेन अपने स्वाधर्म्य हैं जिन पञ्चन्धीयकों अपनोने धारण कर रखी है वेही पञ्चन्धी उनके जी-माजुद है, अतः उनसे मित्रता रखना योग्य है ।

हे जीव ! यहाँ पर विधायित मत होना किन्तु विकलेन्धी (येन्धी, तेन्धी और चारिन्धी) में जो भ्रातृभाव रखना चाहिये कारण की प्रमत्तेन अपन व वे सदृश धर्मी हैं प्रस संज्ञा उन्हें जी है व वही प्रम संज्ञा अपनेको जी है तथैव-मत्त्व भूत प्राणियोंमें (पृथ्वी, अग्नि, तेज और वायु; वनस्पति) व मृक्ष पक्षी स्थावर अर्थात् मूर्ख निगोदियोंसे जी उचित है चूँके प्रीतिस्त्रेन

तथा चेतन लक्षणात्वेन अपने व वे सर्व एक ही हैं अर्थात् औदारिक शरीर अपने जी है व उनके जी है तथाच जैसे चेतनके खास षट् लक्षण अपने हैं तैसेही उनके जी हैं इतना नहीं ही किन्तु कइ एक संज्ञादि विषय जी मिलते हुवे हैं लिहाजा उनसे मित्रता रखना समुचित है. जीवके षट् लक्षणात्तयथा:—

(गाथा.)

नाणं च दंसणं चेव चरितं च तवो तद्वा ॥

वीरियं उव उगोय एवं जीवस्स लक्षणं ॥ १ ॥

अर्थ:—ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य और उपयोग ये उ लक्षण जीवके होते हैं.

हे सुझ चेतन ! मेरे समस्त कथनका रहस्य यह है कि चतुराष्ट्र लक्ष जीवा योनीसे मैत्री ज्ञाव रखकर तुझे आनंदित होना चाहिये.

प्यारे पाठकवरों ! इस प्रकार वे पूज्य महर्षि मैत्री ज्ञावनाका दिली आराधन करते हुवे अपने चारित्र रत्न कों दिन द्विगुना उज्ज्वल करते थे इतना ही नहीं किन्तु कर्म पटलकों विध्वंसकर अपने निर्मल आत्म गुणोंका आविर्भाव करते थे धन्य है ! गुरुवर्य आपकृत पुण्य है. सज्जनो ! अब मैं आपके प्रमोद ज्ञावनाका किञ्चिद् दृश्य दिखलाता हूँ:—

(प्रमोद ज्ञावना)

प्राणीमात्रकों यथावत् सुखी देखकर प्रमुदित (प्रसन्न) होना उसे प्रमोदज्ञावना कहते हैं.

आप यह सहज ही समझ सकते हैं कि बगैर मैत्री माताकी सेवा किये प्रमोद मातेश्वरीका आराधन होना मुश्किल है. यह प्रकट विख्यात है कि

शत्रुकों देखकर कभी आनंद नहीं होता और मित्रकों देखकर एकदम चित्त हँस जरा हो जाता है देखिये जब कभी कोई अपने शत्रुकी यश कीर्ति अथवा सत्कार सन्मानादि श्रवण करता है तब हृदयमें छःख ज्वाला धम-धमने लगती है और यदि यही व्यवस्था अपने मित्रकी श्रवण करता है तब आत्मा एकदममें शीतल हो जाती है अर्थात् सपस्त अद्भुत आनंदरससे आपूरित हो जाता है और हृदय मन्दिरमें उद्भ्रम लहरें उठलने लग जाती हैं कहनेका तात्पर्य यह है कि मैत्री माताके अगाधकृपामें ही प्रमोद माताकी सेवाका सौभाग्य संप्राप्त हो सकता है इसही लिये यह द्वितीय पदकों विभूषित करती है

प्यारे पाठकों ! जब तक प्रमोद माताकी प्राप्ति नहीं होती है तब तक चिन्ता पिशाचनी हृदयगत आनंदको धरनाद करती है और अपना साम्राज्य जोर शोरमें प्रवर्त्ताती है इसके निवारणमें शारीरिक, वाचिक और मानसिक तीनों व्यवस्थाएँ व्यस्त व्यस्त हो जाती हैं जिसके छःखसे शरीर जर्जरिभूत हो जाता है वचन कलाप नष्ट भ्रष्टता में नमस्त होता है मन महाराणा मामूल करने लग जाता है अर्थात् निरंतर अनेक सकल्प विकल्पोंसे आर्त्त-रौख ध्यानमें ग्रमित हो जाता है इतना ही नहीं किन्तु जिन्दे रहने पर जी मृतक मनुष्यवत् छःख प्राप्त होता है यानी चिन्तामें निवास करना गोया मादहात् चित्तोंमें ही दग्ध होना है देखिये किसी महानुभावने ठीक कहा है:-

(दोहरा.)

चिन्ता भाकन मज्ज वशी चुट १ लोदी खाय ॥
रती विरती कर तंचरे तोला १ जाय ॥ १ ॥

तथैव और जी कहा है:-

(दोहरा.)

चिन्ता चिताका एक रस डस्मे अन्तर एह ॥
चिता जलावे मृतक जन चिन्ता जीवित देह ॥ २ ॥

आपको उपरोक्त हर दो दोहरोंसे यह सम्पन्न विज्ञात होगया होगा कि चिन्ता एक कैसी डर्ररा बैरिणा है इसे पराजय कर आनंदरसमें जिलाने वाली हमारी प्रमोद माता ही हो सकती है.

वर्त्तमानमें प्रमोद माताकी सेवा एक विलक्षण ही प्रतीत होती है महानुभावोंको डोमकर बहुतसे प्राणी किसीको धनाढ्य बहु कुटुम्बी और निरोगादि देखकर आर्च रौख ध्यान करते हैं और यह विचारते हैं कि देखो यह तो इस प्रकार सुखी है और हम महान् दुःखी हैं इसकी ज़ी सब तरह उर्दशा हो जाय तो बहुत अच्छा है तथैव दीन दुःखियोंको देखकर बड़े ही प्रसन्न होते हैं और यह विचारते हैं कि यह हीन दशामें ही रहे तो अन्युत्तम है क्यों कि हमें कज़ी आक्रमण नहीं कर सकेगा हे इश्वर ! यह कज़ी सुखी मत हो वो इत्यादि अनेक विटम्बना करते हैं मगर क्या सज्जनो ! “विद्वान्को कहनेसे कज़ी ठीकाटूट सकता है” अर्थात् यह उसही प्रकार असंजवित है कि जिस प्रकार आकाश मण्डलेमें पुष्पोंका खिलना गरुडकीन है तदपि दुष्ट पुरुष अपनी आदतसे बाज़ नहीं आते.

इश्वर बुद्धिशील पुरुष गुणीजन, ज्ञानीजन तथैव उत्तम पुरुषोंके शुभ कार्योंको देखकर उनका सत्कार, सन्मान करते हैं तथा उनके उत्तम कार्योंपर हर्षित होते हैं; इतना ही नहीं किन्तु चतुराष्ट लक्ष जीवा योनीमें रहे हुवे समस्त जीवोंके उचित गुण देखकर प्रसन्न होते हैं. यह प्रमोद माता का ही सुप्रताप है. महानुभावों ! बेतीर्थ स्वरूप इम प्रकार प्रमोद जावना जाकर अपनी आत्माका कल्याण करते थे. तद्यथा:—

हे आत्मन् ! तुझे जवतारक तीर्थकर, गुणधर, आचार्य, उपाध्याय और मुनिराज एवं चक्रवर्ति, वासुदेव, प्रतिवासुदेव और बलदेव तथैव अशेष सम्यक्त्वधारी जीवोंको सुखी देखकर आनंदित होना चाहिये कि अहा धन्य हो ! इन उत्तम जीवोंको कि इन्होंने किस क्रमसे उच्च पुण्याई उपार्जन की है तथा

उमके द्वारा कैसी उत्तम रीतिमें निर्जगकर अपने जवकों सार्थक कर रहे हैं
अहो ! इन मेरे मण्डस्त वधुओंको सुखी देखकर मेरा हर्ष हृदय आनन्द सीपोंसे
बाहिर हो रहा है इत्यादि

कृतार्थ है ! गुरुदेव आपका जव्य श्रमणजव मुहुर्मुहुः कृतार्थ है !! गुणा-
नुपासको ! अब मैं आपके कारुण्य जावनाकी किञ्चिद्विवक्षा करता हूँ—

(कारुण्य जावना)

मत्स्य, भूत, प्राणि और जीव अर्थात् प्राणीमात्र पर यथोचित दया लाना
उसमें कारुण्य जावना कहते हैं

यह तो प्रकट ही है कि जिन प्राणियोंके उत्तम आचार व उन्हें सुखी
देखकर प्रमोद होता है तो उन्हींके दुष्कृत तथा उन्हें दुःखी देखकर करु
णाका होना अवश्य ही सजब है, अतः प्रमोद जावनाके पश्चात् कारुण्य जाव
नाने अपना तृतीय पद विभूषित किया

दीन दुःखी प्राणीको देखकर यह करुणा आना कि अरररर ! इन
विचारोंने कैसे विलष्ट कर्म उपाजर्जन किये हैं कि जिससे ये रुचिकर खान
पानसे तथा वस्त्राभूषणसे एव हाट हवेलियोंसे वञ्चित होकर अनेकशः कष्ट
उठा रहे हैं इन्होंने अवश्य ही पूर्व जवमें सुप्राज्ञ तथा अनुकंपादि दान
नहीं दिये तथा देनेकी इच्छावालेको अपनी दुर्बुद्धि द्वारा मिथ्यात्वोपदेश दे-
कर तथा कर्त्रिम सामर्थ्य द्वारा निषेध कर महद्दानान्तराय उपाजर्जन किया है
एव देनेवालेकी तर्फ तिरष्कार जोमके अपने कुलोंन कुलका व उत्तम धर्मका
गाढ परिचय दिखलाया है

।। शारीरिक व्यथामें दुःखी प्राणियोंको देखकर यह विचार करना कि
अहो ! इन जीवोंने पूर्व जवमें जीव दया नहीं पालन की तथा अनेक जीवोंको
नानाविध कष्ट दिये हैं वा अन्यसे दिलवाये हैं एव देते हुवे की, अनुपोदन
कर खुशयालीपानी है इसही लिये विचारे ये पामर प्राणी अत्यन्त दुःखसे
दग्ध हो रहे हैं

महा ऋषिबान् चक्रवर्ति, राजा, महाराजा, शेर और साहूकार तथैव
अशेष पदाधिकारियों को हिंसा करते, झूठ बोलते चौरी करते व्यभिचार से-
वन करते तथा परिग्रहकी अत्युत् कण्ठा करते देखकर प्रथम २ इस प्रकार
दयामय विचार करना—

उफ! कर्मकी गति विचित्र है ये इस प्रकार उत्तम पदवीसे विभूषित
होने पर भी क्रिमा तथा कौतुकके लिये एवं अपने पराक्रमको विख्यात कर-
नेके हेतु बिचारे निरापराधी शेर, मूर, चित्ते, रीठ और अजादि जानवरोंको
प्राणोंसे रहित करके बज्र लैपसा कर्मोपार्जन करते हैं ये अपने दिलमें ज्ञानका
जी पूरा श गौरव रखते हैं किन्तु वस्तुतः वह ज्ञान नहीं नितान्त अज्ञान ही है
ये जडिक लोग इतना जी नहीं समझते की पूर्व जन्मों अनेक जीवोंको सुख
दिया है इस ही लिये मेरी हजारों लोक मान्यता करते हुवे सेवा नृत्तिकर रहे
हैं और जिन जीवोंने अन्य प्राणियोंको दुःख दिया है वे प्रकटतः दुःखी हो
रहे हैं इसही तरह मुझे जी अवश्य दुःखी होना पड़ेगा.

तथैव मृषावादियोंको मृषा द्वारा विश्वास घातादि अनर्थोंको सेवन करते
देख यह विचारना कि अहो ! इन लोगोंको तनिक भी लज्जा नहीं आती कि
हम इसे प्रकार असत्य ज्ञापण कर विश्व निश्वासपात्र कैसे बनेगे अहो ! सत्य-
वक्ता हरिश्चंद्र राजाने बारह वर्ष पर्यन्त किस प्रकार संकट सेवन किये थे
किन्तु लेशमात्र जी दुःखातुर न हुवे और अपने अखण्ड सत्य व्रत पर कटि-
बद्ध रहे अहो ! बिचारे इन दीन असत्यवक्ताओंका जन्म कैसे सफल होगा.

चौर लोगोंको चौरी करते देख अथवा चौरीके कटुक फलको कारागृह
(जेलखाना) में प्रत्यक्ष जोगते हुवे देख यह खयाल करना कि संसारमें अनेक
जीव अनेक उपचारोंसे उदरपूरण कर रहे हैं और ये निगम कर्मी बगैर परि-
श्रम ही आनंद करनेकी बाँटा करते हैं यह इनकी अज्ञताका पूर्णोदय है
मुझे बड़ी ही ज़ाव दया आती है कि किसी प्रकार ये दुःखसे स्वतन्त्र हो जाँय
तो उत्तम है.

वेश्या गमन करनेवाले व परस्त्रीके लम्पटियोंको देखकर यह ज्ञापना
लाना कि हा ! ये पापरा प्राणी किस प्रकार दुष्टाचरणों सेवन कर रहे हैं

जिससे कुलकी, जातिकी और खानदानकी लज्जा प्रस्थानकर रही है तथा राजा, महाराजा एवं देव, गुरु और धर्मसे लज्जा विहिन हो रहे हैं और जिससे मोक्ष मार्ग दूर जग रहा है यहा तककी इस जवमें प्रत्यक्ष जेलखानेकी दवा खाना पडती है और आगामी भवमें घोर नरकादिके असह्य डःखसे दग्ध होना पम्ता है * तो जी ये व्यञ्जिचारी लोग अपने विश्व निंदनीय कर्तव्यसे वाज नहीं आते हे ईश्वर ! इन विचारे कुछ प्राणियोंका किमी तरह शुद्धाचार होजाय तो अच्छा है

परिग्रहके अति लोभियोंको देखकर यह विचारना कि:-अहा ! दुनियाकी कैसी विचित्र लीला है बहुधा समस्त जगन आँख बंद कर चारों तर्फ पैसेके लोभसे मारा १ फिर रहा है सैकड़पति यह चाहता है कि मैं हजारपति होजाऊँ तयैव हजारपति लक्षपति एवं लक्षपति क्रोडपति होनेकी इच्छा करता है किन्तु यह मिलकुल विचार नहीं करते कि चक्रवर्ति सदृश ऋषिवान् भी जब अपनी समस्त ऋषि ठोडे पगलोककों खाना हुवे तो समुद्रमें सिन्धवत् मेरी लक्ष्मीका क्या ? अब तो मुझे अवश्य ही सतोष महाराणैका अवलम्बन करना चाहिये किन्तु बजाय इसके रात दिन दौमधाम मचा रहे हैं विचारे इन प्राणियोंको किसी प्रकार संतोष दृष्टि हो जाय तो अच्छा है ताके परमानंदमें निमग्न हों

मान्यवरों ! हमारे चरित्र नायक पूज्यपाद गुरुवर्य इस प्रकारकाह-
एय जावना जाते थे:-

हे आत्मन् ! ससाररूपी विचित्र नाटककों जैरा पलक उठाकर देख कि ये विचारे विचित्र कर्मधारी पामर प्राणी किस कदर उलट पुलट काम करते हुवे कर्म फासमें फसनेका उत्कट प्रयत्न कर रहे हैं कइ प्राणी निरपराधी जीवोंको विनाशकर आत्मीय बलकों धन्य मानते हैं तथा अपने कुलकों उत्तम समझते हैं, कइ एक प्राणी मृपावाद द्वारा लोगोंको धोका बाजी देकर बञ्चित (ठगई) करते हुवे अपनेको सुखि कुशलमान रहे हैं ! कइ एक मनुष्य पर धन हरण

* इसका विशेष खुलाशा देखनेकी अभिलाषा हो तो देखो हमारा बनाया हुवा मस व्यसन निषेध का चौथा व सप्तम व्यसन.

करके अपनी ठकुराईका गौरव समझ रहे हैं; कइ एक वैश्या और पर स्त्रीमें आनंद मानते हुवे अपने जन्मकों सफल गिन रहे हैं और कइ एक लहंमी वर्धन करनेमें दत्तचित्त होकर अपने पुरुषार्थकों कृतकृत्य मान रहे हैं इतना ही नहीं किन्तु अनेक अनर्थ दण्डोंकों सेवन कर अपनेकों धन्य समझ आनंद समुझमें निमग्न हो रहे हैं. हे प्रजो ! इन विचारे अइ प्राणियोंकी वर्त्तमानमें क्या गति हो रही है तथा जवान्तरोंमें किस प्रकार डर्गतिके घोर डःखोंकों जोगकर अपने कठिन कालकों व्यतीत करेंगे. हे ईश्वर ! इन विचारे प्राणियोंकी मति सुधर जाय तो उत्तम है. अरररर ! ये विचारे गरीब जयंकर डःखोंकों कैसे सहन करेंगे. हे जगत्तारक ! किसी प्रकार इनका बुद्धकारा हो जाय तो श्रेयस्कर है.

प्यारे दयानुरागियों ! इस तरह नाना विध जाव दया जाते थे और अपने हृदयकों दया रससे आपूरित करते हुवे कर्म निर्जरा कर जब जमणका विध्वंस करते थे. धन्य है गुरुदयाल ! आप दयासागरकों मुहुर्मुहु धन्य है. सज्जनो ! अब मैं आपकी माध्यस्थ जावनाका संक्षिप्त विवेचन लिख दिखाता हूँ:—

(माध्यस्थ जावना)

मित्र और शत्रु पर समान परिणाम रखना अर्थात् इष्ट और अनिष्ट अशेष वस्तुओं पर समजाव रखना उसे माध्यस्थ जावना कहते हैं.

प्यारे वैरागियों ! जब तक प्राणियोंके विजिन्नता रहती है तब तक अपनी इष्ट पदार्थों पर ही अटूट कृपा होती है किन्तु अनिष्ट पर क्रूर दृष्टि ही बनी रहती है मगर जब कारुण्य माताकी सेवामें कटिबद्ध हो जाते हैं तब इष्टानिष्ट सर्व पर समान दयाजाव हो जाता है. इसही कारुण्य मातेश्वरीके महत् कार-णसे माध्यस्थ माताकी सेवा संप्राप्त हो सकती है अतः कारुण्यके पश्चात् सिद्ध स्थानपर पहुँचानेवाली माध्यस्थ जावना अपने दिव्य स्वरूपकों प्रकाशित करती हुई स्वकीय निज स्वरूपमें रमण कर रही है.

सज्जनो ! यह तो निसन्देह ही प्रकट है कि अनेक प्राणी अनेक कर्तव्योंमें

निपुण है यहा तककी जगतमें सर्वसँ अति वल्लभ प्राण तकजी स्वामीके लिये न्योठावर कर देते है किन्तु सभ रस यानी माध्यस्थवृत्ति रखनेवाले विरले ही पुरुष दृष्टि गोचर है; देखिये एक विद्वान् वैरागीका कथन है:—

(श्लोक)

दृश्यन्ते बहवः कलासु कुशलास्ते च स्फूर्त्कोर्तये ।

सर्वस्वं वितरन्ति ये तृणमिव कुडैरपि प्रार्थिताः ॥

धीगस्तेऽपि च ये त्यजन्ति ऊटिति प्राणान्कृते स्वामिनो—

द्वित्रास्तेतुनरा मनः समरसं येषां सुहृदैरिणोः ॥१॥

भावार्थ:—इस छनियाके अन्दर बहुतसे ऐसे लोग है जो कि अनेक कलाओंमें कुशल है तथा कइ एक लोग दीन डखीके प्रार्थना पर अपने वैज-
वकों विस्तीर्ण कीर्तिके लिये तृणके सदृश खर्च कादेते है और कइ एक ऐसे बाढ़ाडर लोग है कि अपने स्वामीके लिये तत्काल प्राण अर्पण कर देते है किन्तु प्यारे वैरागियों! मित्र और शत्रुमें समरस रखनेवाले दो तीन विरले ही पुरुष होंगे

जिज्ञासु सज्जनों! जो प्राणी माध्यस्याख्यामें निवास करते है वे सदा सर्वदा अपनेकालकों निरावाध आनन्दपूर्वक निर्गमन करते है देखिये माध्य-
जावनमें विराजमान योगीश्वर अनेक दिव्य गुणोंसे विजृम्भित होते है उन्ह-
मेंसे कितनेक गुण इस स्थल पर उद्धृत कर प्रदर्शित करता हूँ:—

(श्लोक)

आक्रोशेन न दूयते न च चटु प्रोक्त्या समानंघते ।

दुर्गन्धेन न बाध्यते न च सदा मोदेन संप्रीयते ॥

स्त्रीरूपेण न रज्यते न च मृत श्वानेन विच्छेप्यते ।

माध्यस्थेन विराजितो विजयते सोऽप्येव योगीश्वरः ॥१॥

ज्ञावार्थः—वेही महानुज्ञाव सम्यग् ज्ञानी समझे जाते हैं कि जो कठोर वचनोसे कदापि डाखी नहीं होते और खुमापदके शब्दोंसे कज्जी आनंदित नहीं होते तथा डगंधसे हरगीज बाधित नहीं होते और सुगंधसे कज्जी प्रसन्न नहीं होते एवं कामिनीके दिव्य स्वरूपसे कदापि रजित नहीं होते और मृतक श्वान (कुत्ता) से हरगीज रेष नहीं करते. इस प्रकार माध्यस्थ स्वरूपमें विराजमान वे ही योगीश्वर विजयकों संप्राप्त होते हैं.

इतना ही नहीं किन्तु मित्र और शत्रु आदिसे रागद्वेषकों दूर कर माध्यस्थ वृत्ति रखते थे. यथा किसी महात्माका ठीक कथन है:—

(श्लोक)

मित्रे नन्दति नैव नैव पिशुने वैरातुरो जायते ।

जोगे लुञ्जति नैव नैव तपसि क्लेशं समालम्बते ॥

रत्ने रज्यति नैव नैव दृषदि प्रद्वेषमापद्यते ।

येषां शुद्धहृदां सदैव हृदयं ते योगिनो योगिनः ॥ १ ॥

ज्ञावार्थः—वेही आत्मारथी पुरुष कहे जाते हैं कि जो मित्रके अन्दर कज्जी आनंदित नहीं होते और चुगलखोरोंमें कज्जी वैरज्ञाव नहीं रखते तथा जोगमें कदापि नहीं लुजाते और तपस्यामें क्लेशातुर नहीं होते एवं रत्नादि जवाहिरातों में हरगीज दील चस्वी नहीं लाते और कङ्करमें कदापि रेष नहीं लाते ऐसे जो शुद्ध हृदयवाले महानुज्ञाव हैं उनके पवित्र हृदयमें उपरोक्त कोइ विषय संप्राप्त नहीं होसकता; वेही योगिराज योगीश्वर पदवीसे विज्ञूषित होते हैं.

महानुज्ञावों ! उपरोक्त दो श्लोकोंसे आपको सम्यक् परिज्ञात हो गया होगा कि माध्यस्थ वृत्तिवाले किस उच्च श्रेणीसे विज्ञूषित होते हैं. हमारे वे प्राणाधार इस प्रकार माध्यस्थ ज्ञावनाकों ज्ञावन करते थे:—तद्यथा:—

हे आत्मन् ! जब तक तू इस वज्रलेप रागद्वेषसे धृत न होगो हरगीज़ सुखी नहीं हो सकता यथा शत्रु गृहके अन्दर रहे हुवे प्राणीको अनेकजातिके रमवती जोजन खिलाए जाँय, उत्तमोत्तम वस्त्राजूपणोसे विभूषित किया जाय किन्तु कच्ची सुखी नहीं हो सकता चूँके वह यह समझता है कि मुझे अवश्य ये छष्ट दुःखमें दुःखी करेगे तथैव तू उन मूल दो शत्रुओंके वश पना हुवा अनेक क्रियाकाण्ड करने पर जी हरगीज़ सुखी नहीं होसकता है इस लिये इन छष्ट शत्रुओंको पराजय करके अपने निज स्वरूपमें रमण कर

इस प्रकार माध्यस्थ्य जावना जाते हुवे घोर शत्रु रागद्वेषको निर्मल कर निज आत्मीय स्वरूपको प्रकट करनेमें एक अनुतेही प्रयत्नशील पुरुष ये धन्य है गुरु पुद्गल ! आप सदृश नर रत्नोसे ही यह पृथ्वी रत्नरती कदलाती है पाठकवाँ ! अब मैं आपके “अप्रतिवृत्ताका विशाल प्रज्ञाव” इस प्रियका किञ्चिद्विवरण आप लोगोंके सम्मुख उपस्थित करनेमें प्रयत्नशील होता हूँ

॥ अप्रतिवृत्ता का विशाल प्रज्ञाव ॥

प्रतिबन्ध रहित यानी परतन्त्रता रहित अर्थात् स्वतन्त्रतासे प्रत्येक कार्यमें कुशलतापूर्वक विहार (गमन) करना उसे “अप्रतिवृत्ता” कहते हैं

सकनों ! यह तो मशहूर ही है कि “पराधीन स्वपने सुख नहीं देखे विचार करो मन माँदी” जो प्राणी यावत् परतन्त्र रहता है तावत् उचित कार्य करनेको मर्बया अममय है, मनशासे विरुद्ध किसी प्रतिवृत्तामें रहना सरामर मद दुःख चम्पटीष्ट (दृष्टिगोचर) है

स्वतन्त्र महान्मा जन उचित समय पर अपने नित नियम करते हैं अर्थात् इष्टा हो नष्ट जाग्रित होते हैं इष्टा हो नष्ट जयन करते हैं, चलते हैं, रुकते हैं, बैठते हैं, जोजन करते हैं, नजपान करते हैं, मऊप ध्यानादि निरोग करते हैं

और दयावश परोपकारमें संलग्न रहते हैं तथैव खासकर आत्मिक स्वरूपमें निमग्न रहते हैं। कहनेका तात्पर्य यह है कि सदा सर्वदा अपने इत्थित टाश्मपर सकल कार्य करते रहते हैं।

यहां पर कोई जिज्ञासु महात्माका प्रश्न है की स्वतन्त्रता ही यदि आनंदकारी है तो व्यावहारिक व धार्मिक दोनों ही व्यवस्थाएं नष्ट नष्ट होकर सकल जीव निर्पति बेल (सांभ) के मुआफिक घूमते फिरेंगे और नाना प्रकारके अनर्थ करने लगेंगे और इस अवस्थामें पुत्रकों पिताकी आवश्यकता तथा शिष्यों गुरु महाराजकी जरूरत नहीं होगी अतः यह विकल्परूप दृढ़ नियम स्वीकृत श्रेणीमें कैसे संघटित हो सकेगा।

प्यारे जिज्ञासु महाशय ! आपका यह कहना अवश्य ही विचारणीय है इतना ही नहीं किन्तु अनुमोदनीय भी है। देखिये थोड़े ही शब्दोंमें निवेदन कर देता हूँ—

मैं पहिले ही प्रकट कर चुका हूँ कि “मनशाह से विरुद्ध किसी प्रति बद्धतामें रहना सरामर मह दुःख चस्पदीद है” इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि ज्ञानियोंकी दृष्टिमें हितकारी उपादेय साधनोंके हेतु पर तन्त्रताका होना स्वतन्त्रताही में शुमार है हमने यहांपर उसही परन्त्रताका निराकरण किया है कि जिससे अनेक दुःख प्राप्त होते हैं। विद्रज्जनेषु किमधिकम्।

खासकर गृहस्थोंके जगह्वाल अर्थात् दाक्षिण्यतासे पृथक् रहना चाहिए कारण की ज्यों ९ गृहस्थोंके प्रपञ्चोंमें खुशियाली मनाने हैं सोंही सों शुद्ध क्रियासे अधिकाधिक विमुख होना पमता है इतनाही नहीं किन्तु हमारे गुरु जार्ई व शिष्य वर्गसे जो कश्वार कटाकटी उमाना पमती है। अफसोस ! आजकल अधिकांश मुनिवर्ग गृहस्थोंकी किस प्रकार दाक्षिण्यता रख रहे हैं कि जिसे देख दृढ़ धर्मानुरागी धर्मरूपी मेदान पर खड़े हुवे थराथर थर्रा रहे हैं। आज इस निंदनीय दाक्षिण्यता (लिहाज़) ने इतना

जुलुम किया है कि कइवार हणो पवित्र गुरुमहाराजकी निर्मल आइकाँ नष्ट
 नष्ट कर खुशामदी और मालदार मनुष्योंके पीठे १ घुमाती है देखिये:—

किसी मुनिराजों जब अपने रागाधकी प्रार्थना आती है उस बहुत सम-
 यङ्ग गुरुवर्य कितना जी रोकटोंक क्यों न करें किन्तु वे गृहस्थोंके अनुयायी
 उसका सर्वथा उपेक्षा कर यह प्रकट करते हैं कि हमारे अमुक श्रावक बगैर
 नहीं चल सकता उनका दिलता रखना ही पड़ेगा चाहे आप खुश होकर
 इजाजत दे या नाराज होकर हमें तो जाना ही होगा इसादि

'हायहाय' कितना जुलम कितना अन्याय, कितना गजब

इस प्रकार निर्लेख शब्दोंको उच्चारण करते तनिक जी शरम नहीं आती
 हम नहीं समझ सकते कि इस प्रकार उच्चारण करते हुवे अपने मुनि पदकों
 किस प्रकार उच्च शिखा पर पहुँचा सकेंगे इस कुत्सित व्यवहारके दृढानुरागी
 महात्मा लोग तीर्थकर, व गुरुमहाराजकी आइकाँ उल्लंघन करते हुवे गृहस्थके
 पीठे दौम पन्ते हैं वहा जानेपर कइ एक प्रकारके सदोषी वस्त्र, पात्र, शय-
 नादि वस्तुएं उपयोगमें लाते हैं तथा आधाकमी आदि हलाहल जहरसे जरा
 हुषा आहारपानी खाकर जर्गंतिका निगम, वचन करते हैं—बदारे वाह कलिकाल
 तेरी उल्लिहारी है अहा! ग्य हो मुनिराजों!! आपको मुहुर्मुहु धन्य हो!!!
 आपने अपने नरन्ज रत्नका रूब ही सङ्ग्रहण किया

जब्य मुनिराजोंका तो कुछ आचरण ही और है वे महानुभाव बनान्
 और गरीबों समान समझ कर तथा खुशामदी और तज्जिबों सदश मानकर
 इसही सिद्धान्त पर निर्भर रहते हैं कि “सुनना सबकी करना दीलकी”
 इसही तरह हमारे चरित्र नायक गुरुवर्य गृहस्थकी दाक्षिण्यताओं सर्वथा
 हटाकर सत्यन्त्रता पूर्वक अर्हानिश सानंद पिढाग करते थे, इससे आपको कइ
 एक ऐसे १ उत्तमोत्तम गुण प्राप्त हो गए थे कि जो हमारे लेख सामर्थ्यसे
 बाहिर हैं तदपि उसमेंका एक सुन्दर नमुना पाठकोंके सम्मुख उपस्थित
 करता हूँ—

॥ नविष्य वाणीका साक्षात् प्रभाव ॥

किसी एक समयका प्रस्ताव है कि रात्रीके पिछले प्रहरमें आप गुरुवर्य निर्जर निझमें शयन किये हुवे थे उस समय उत्तम गुणशाली स्वप्नमें देखते क्या हैं कि एक दिव्य श्वेत वर्णवाला गइयोका गोकुल मनोहर वाटिकामें फिर रहा है उसमेंकइ एक गइयोके छोटे ९ सुन्दर बबुने प्रेम पूर्वक अपनी माताओंके शरीरमें लिपट रहे हैं इस गो समुदायमें कइ एक शान्त मुन्द्राधारी वृद्धा, कइ एक दिव्य कान्तिवाली तेजस्विनी युवा गइयें थीं और कइ एक जगतजन प्रिय अति सुन्दर बठभूविष्येथी देखते ही देखते इस सुन्दर शोजाके गुरुवर्यके नेत्र खुल पड़े अर्थात् एकदम जाग उठे. जागृत होते ही बराबर आप दिल ही दिलमें विचारते हैं कि इस उत्तम स्वप्नका क्या रहस्य है. थोड़ी ही देरमें आप ने अपने ज्ञान बलसे उचित अर्थ स्थिर कर अपनी नित्य क्रियामें प्रवृत्त हो गये.

प्रातःकालमें जिस समय उद्योत श्रीजी (जिसका कि जिक्र हम प्रकरण वशात् ऊपर कर आए हैं) वंदनार्थ आये उस समय सविनय वंदना व्यवहार करनेके पश्चात् आप गुरुवर्यने अपनी सेवामें स्थिरता करनेका हुकुम बहास किया. साध्वीजी आज्ञा पाते ही पूज्यपाद गुरुवर्यके सन्मुख दोनो करजोड़ मस्तक नमन कर बैठी हुई हैं इस अवस्थामें उन दोनोके परस्पर स्वप्न सम्बन्धि जो ९ वार्त्तालाप हुवा उसमें प्रश्नोत्तरमें समुद्धृत कर पाठकोंकी सेवामें पेश करता हूँ:—

गुरुमहाराज:—उद्योत श्री: ! हमें गत रात्रीमें एक बड़ा सुन्दर स्वप्न संप्राप्त हुवा.

साध्वीजी:—स्वामिन ! कृपापूर्वक फरमाईयेगा.

गुरुमहाराज:—ध्यान पूर्वक श्रवण करना.

साध्वीजी:—जी साहब ! फरमाईयेगा.

गुरुमहाराज:—हमने गत रात्रीके ब्रह्म मुहूर्तमें एक मनोहर श्वेत गइयोंका गोकुल देखा इत्यादि. आपने बड़े ही मधुर शब्दोंमें सविस्तार वह स्वप्न फरमाया.

साध्वीजी:—“सम्पूर्ण विषयको सुनकर मनही मनमे “अ हाहा !” कैसा विचित्र सुन्दर स्वप्न है इसका गंजौर आशय क्या होगा इस अज्ञित्वापामे”—हे करुणारस जेम्हार ! अनुग्रह पूर्वक इसको फलितार्थ फरमाईयेगा :

गुरुमहाराज:—जड़े ! तुमही अपनी बुद्धि अनुसार कह सुनाओ

साध्वीजी:—हे प्रतापशाली पूज्य गुरुवर्य ! मैं तुझ बुद्धिगरका आप समान अद्वैत ज्ञानवन्त मुनि रत्नके सामने कयनकों उत्तनी ही असंमर्थ हूँ कि जिस तरह चक्रवर्तिके सन्मुख पापर प्राणी कयन करनेको अशक्य होता है आनन्द रसमें जिलानेवाले हे पूज्य गुरुवर्य ! आपही अपनी अमृत बाणी द्वारा उपदेश कर कृतकृत्य कीजियेगा यही हार्दिक प्रार्थना है

गुरुमहाराज:—“दया लाकर”—हे विनयशीले ! दत्त चित्त होकर श्रवण करना

साध्वीजी:—तहत्त स्वामी फरमाईयेगा

गुरुमहाराज:—पुण्यवते ! गुरुदेवकी अतुल कृपासे तुमारी शिष्या समुदाय विस्तीर्ण रूपमें प्रफुल्लितावस्था अवधारण करनी हुई प्रकट होगी पवित्र वीर शासनरूपी मनमाहन वर्गाचिमें विनय रसमें जरी हुई सुदीक्षित साध्वियें विचरती हुई दृष्टिगोचर होंगी उनके अनेक आशाल ब्रह्मचारिणी छोटी २ मुमनोहर दीक्षित बाल शिष्याएं शोभाकों संप्राप्त होंगी तथैव गुणशालिनी सौजागिनी (सधवाएं) साध्वियें एव शान्तरस धारिणी कइ एक पुण्यात्मा वैवाए होंगी इस विषय नाना प्रकारकी विचित्र साध्वियोंसे यह शासनरूपी सुन्दर बगीचा खिल उठेगा इत्यादि विस्तार फरमाया

पाठकवरों ! वे महानुज्ञाया शामनोद्योतकारी तथा अपने असीम उपकारी गुरुवर्यका उज्ज्वल यशः विस्तीर्णकारी एवं अपनी पुण्याईका तीजोदय

समझ इस प्रकार आनंद सागरमें निमग्न हुई कि हर्ष नीरसें नैन गदगद कर आये इस समय अनंदका पारावार नहीं था. इस हर्षित अवस्थामें साध्वीजी दोनों कर जोर मविनय प्रार्थना करते हैं:—

साध्वीजी:—धर्म धुरंधर, धर्मावतार, ज्ञूत ज्ञविष्य और वर्तमानके उचितवेत्ता हे विशाल ज्ञानी गणाधीश्वर ! आप हमें ज्ञान जयवन्ता वर्त्तो, आपके मुखकमलमें अमृत रस सदैव निवास करो; आपका उत्तम गुणशाली स्वप्न शीघ्र ही फल फूलोंमें खिल ऊठो. हे नाथ ! आपका पवित्र नाम इस अखिल संसारमें चिरकाल स्थित रहो. हे स्वामिन् ! आपने जो कुछ फरमान किया है वह मेरे समस्त अङ्गोपाङ्गके अशेष अवयवोंमें सुमण कर गया है आपके फरमानानुसार यह उत्तम सौजाग्य अवश्य ही संप्राप्त होगा ऐसा मुझे सुदृढ़ विश्वास है हे पूज्य गुरुवर्य ! मुझमें यह सामर्थ्य नहीं की आपके अगण्य गुणोंको प्रदर्शित कर सकूं. हे प्रभो ! आप पर मुहु-मुहु धन्यवादकी अविरल वर्षा करती हुई चरण शरण रूपी आनंद सागरमें निमग्न होती हूँ.

इस प्रकार आनन्दित वार्त्तालाप होनेके पश्चात् विनय पूर्वक वंदना नमस्कार कर साध्वीजी अपने स्थान पर प्रस्थान कर गए.

सज्जनों ! आपके अपूर्व स्वप्नके महत्फल रूपी ज्ञविष्य वाणी आज हम साक्षात् अनुभव कर रहे हैं कि आपके पवित्र समुदायमें उद्योतश्री-जीकी शिष्या सन्तानक रीति में मेरुसोकी संख्यामें विज्रूषित हो रही हैं. वे महानुज्ञावाएं पवित्र गुरु आज्ञासें विज्रूषित हुईं शासनमें चारों ओर अपने ज्ञान द्वारा हजारों जन्वात्माओंका उद्धार कियाव कर रही हैं. यह उनही महात्माका अंतुल प्रताप है—इस ठोठेसे दृष्टान्तसे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि आप पूज्य गुरुवर्य अवश्य ही एक विशाल ज्ञानी थे. अहाहा धन्य है ! गुरुवर्य आपकी प्रतापशालिनी वाणी पुनः धन्य है.

वीर पुरुष महानुभावों ! इतने पर ही सतोष न कीजियेगा किन्तु आप स्वतन्त्र विचारोंमें ऐसे दृढ़शील थे, की चाहे कितने ही उपसर्ग क्यों न आक्रमण करें, कितने ही संकट क्यों न सहना पड़े किन्तु लेश-मात्र जी, चल-विचल नहीं होते थे महानुभावों ! दृढ़ताके ऊपर इस स्थलपर मुझे एक कुतुहली व्यावहारिक दृष्टान्त स्मरण होता है जो कि हमें दृढ़शील बनानेमें एक परमोपयोगी होगा वही रसिक कथा पाठकोंके अजिमुखे करनेमें प्रयत्नशील होता हुआ दत्तचित्त होकर पढ़नेकी सूचना करता हूँ :—

॥ कुतुहलमें गुणाकर ॥

किसी एक विशाल शहरमें एक प्रतिष्ठित साहूकार रहता था धन धान्यादिसे परिपूर्ण पूरित था किन्तु मन्तानकी अप्राप्तिके हेतु खिन्न चित्त रहा करता था देवयोगसे उसके वृद्धावस्थामें एक पुत्र प्राप्त हुआ जन्म महोत्सवादि वरुं ही समारोहसे किये

एक समय साहूकारने यह विचार किया कि बच्चेको मधुर रस प्रायः हानिकारक होता है अतः इसे इस समय कतई रोक देना उचित है, हाँशियार हो जानेके बाद कुछ हर्ज नहीं यह सोच उस बच्चेको ऐसा जय माल दिया कि “बच्चे मीठा खानेसे मनुष्य मर जाता है अतः तू मीठा कच्ची सेवन मत करना” यह मेरी हित शिक्षा दृढ़ता पूर्वक अङ्गीकार करना पुत्र उमही तरह आचरण करने लगा जब कच्ची कोई उसे फेंके कि बच्चे यह मीठा खाले तब वह ठीक यही उत्तर देता है कि “मीठा खानेवाला मर जाता है” अतः मैं हरगीज़ नहीं खाता सड़नों ! इस प्रकरणको यही पर ठाम द्वितीय प्रस्तुत विषया जिन्न प्रकरणका विवेचन करता हूँ

सेठने यह विचारा कि मेरी वृद्धावस्था है इस लिये पुत्रका शीघ्र ही विवाह कर देते बहूका सौजाग्य अनुजय कर लेना चाहिये यह सोच बाज्यावस्थामें ही किसी एक प्रसिद्ध नग्नमें आरुद्धार घनाव्य सेठके यहा विराह कर दिया अब ये सर्व सानंद निवास करते हैं -

काल सर्व जह्नीकी उपाधीसँ उपमित होनेके कारण उस पुत्रके मातापिताओंको जी अपने ताड़नातमें किये अर्थात् वह सेठ और सेठानी दोनोंने जवान्तरमें कूँच किया पुत्रकों मीठा खानेकी रोंकटोंक की थी उस असावधानावस्था हीमें रखकर प्रस्थान कर गए. अस्तु अब यह बालक और इसकी स्त्री दोनों ही रह गए समयानुसार यह सेठ पदवीकों प्राप्त कर अपने अनेक सेवकोंके साथ सुख पूर्वक निवास करता है.

एक समयका प्रस्ताव है कि इस सेठकी स्त्री अपने पितृगृह (पीयर) कों गई हुई थी इस वरुत्त इसें अपने घर लानेकी प्रबल इच्छा प्राप्त हुई अतः अनेकाडंबरसँ अपनी अपनी पलिकों लेनेके लिये श्वसुर गृह (सुसराल) कों जा पहुँचा प्रिय वाचक वृन्दों ! अब दामाद (जमाई) जीकी किस १ प्रकार आगत स्वागत होती है इस विचित्र लीलाकों सावधान होकर पढ़ियेगा.

यह लोक प्रसिद्ध है कि दामादके लिये अनेक प्रयत्न कर मिष्टानादि विविध प्रकारके मनमोहन जोजन बनाये जाते हैं चाहे अमीर हो चाहे गरीब हो; इसही तरह यहाँ पर जीउन जमाइजीके लिये अनेक रसवती जोजनोकी तैयारी की गई उसमें अति स्वादिष्ट केरीपाक (आम्रमुरब्बा) जी था.

जिस समय वे जोजन करने आसन स्थित हुवे उसही वरुत्त सर्व जोजनकी दरियाफ़ी की. पत्नि भ्राता (शाला) ने सर्वके नाम कथन करते हुवे सर्व प्रकारके मिष्ट जोजनोको मात्र मीठेके नामसँ ही व्यपदेश किया सुनते ही प्राहुणेजीने हुकुम फरमाया कि मीठा १ सर्व दूर कर लो शेष जोजन रहने दो.

शालेन बहुत कुठ समझाया किन्तु अपने निज़ हठमें दृढ़ीभूत होनेसँ कुठ जी स्वीकार न किया तब उनके कथनानुसार सर्व मिष्टान निकाल लिया, किन्तु केरी पाक विशेष रस संयुक्त होनेसँ उसका कितनाक रस थालमें ही लिपटा रह गया दामादजीने अनुक्रमसँ जोजन करना शुरु किया "होनहार सदैव बलीयशी है" इस न्यायानुसार उसका हस्त कमल उस रसमें जा गीरा जोजनके प्रवृत्ति नियमानुसार अङ्गुलिया चाटने लगा रसास्वादन होते

ही अपूर्व आनंद वश होकर मन ही मनमें विचारता हुआ जोजन कर अपने मुकाम पर विश्रामित हुआ

रात्रीके समय अपने शयन गृह (सोनेका कमरा) में पहुँचा वार्त्तालाप करते शेटजीने अपनी पत्निसे पूछा कि आज जोजनमें चित्तको एकदम तृप्त करने वाली कौनसा रसवती पदार्थ थी मुझे वही अमृत जोजन इस ही वस्तु लाकर समर्पण कर

पत्नि:—स्वामीनाथ ! वह माधुर्य रसा पूरित केरी पाक था जब आपकों इतनी इच्छा है तो उस वस्तु जाइ साहेबने बहुत मनुहार की थी तब आपने क्यों न स्वीकार किया अब मैं वह पदार्थ इस वस्तु कहाँसे लाऊ रजनी व्यतीत हो जाने पर आपकी इच्छा पूर्ण करनेका प्रयत्न करूँगा

पति.—अरे प्रिये ! सचमुच ही मेरा पिता शत्रु था कि जिसने बाब्या-वस्थासे ही मुझे ऐसे मनमोहन रसवती जोजनसे वञ्चित रक्का प्रिय पत्नि ! यदि तू ला दे तो उत्तम है वरना मुझे वह स्थान बता दे मैं अपनी इच्छाके प्रबल वेगकों रोकनमें सर्वथा असमर्थ हूँ

पत्नि:—प्राणनाथ ! मैं तो लज्जावश उस स्थान पर इस समय नहीं जा सकती देखीये जोजन गृह (रसोमा) में एक ठीका लटक रहा है उस पर एक मिट्टीकी स्वच्छ हस्ती केरी पाकसे आपूरित हो रही है उसमेंसे जितनी इच्छा हो पानकर अच्छी तरह तृप्त हो जाईयेगा किन्तु जोजन गृहके बाहिर ही मेरे मातपिता वगैरा शयन किये हुवे है उनका पूर्ण खयाल रखियेगा

सज्जनों ! इच्छा एक ऐसी चीज है कि जो आगे पीछे कुठ जी नहीं सोचन देती इस वस्तु अर्ध रात्री अपने निज स्थान पर समाकूट हो रही है वह केरी पाककी प्रबल इच्छावाला एक लाठी लेकर जोजन गृहमें जा पहुँचा है पाठकरों ! देखिये ज़रा इस विचित्र घटनाको साविधानेतया पढ़ियेगा

वहा पर देखते क्या हैं की माला बहुत ऊँचा है हस्त पहुँचनेका असंज

लक्षण सम्मुख उपस्थित हो रहा है तब आपने करकमलस्थ लकड़ीसे हंम्रीके नीचे थुराक कर दिया अब मुंह पसारे हुवे रसपान कर रहे हैं जव की आप पूर्ण तृप्त हो गए तब हन्हीसे अपनी मातृ जापामें कहने लगे “हाँमोजी बस करो ने बस करो” इस प्रकार दो तीन बार कहा किन्तु हएमी क्या समझ सकती थी अतः उसकी रसधारा वदस्तूर प्रचलित रही. अनेक बार कहने पर जी जव रस प्रवाह शमन न हुवा तब एकदम तमोगुणसे प्रज्वलित होते हुवे अपनी प्रबल शक्ति द्वारा हएमी पर दण्ड प्रहार किया कि जिसमें हंमी छिन्न छिन्न हो गई और उसके समस्त रस उसके शरीरपर आ लिपटा.

इस समय शरद ऋतु अपनी प्रचण्ड शक्तिकों इस प्रकार विस्तीर्ण कर रही थी कि सात ९ पुट स्फोटन कर हृदय विह्वल दशाकों संप्राप्त करती थी इस अवस्थामें वे जमाईजी जिसके कि केरीपाकका रस चारों ओर लिपटा रहा है जांमेके कारण एक रूई गृहमें जालेटे अर्थात् एक रूईके कोठेमें दपट कर सो गए यन्नावित्तवत्येव” इस न्यायके अनुसार कितनेक तस्कर रूई चुराने आ पहुँचे त्वरावश बन्नी ९ गठमिये बांधकर कूँच हुवे उनमेंसे एक गठड़ीमें आप हज़रत जी बंध गये थे किन्तु रूईकी गर्मीके कारण कुंठ जी ज्ञान न हुवा.

चोर लोग गठमिये लेकर ज्यों ही शहरके बाहिर हुवे की पोलिस आ पहुँची उन चोर लागोंने जहाँ की कसाईकी गमरियें चर रही थी वहाँ गठमिये फेंक दी और अपनी ९ जान लेकर जाग पड़े चौरोंको जगे हुवे जान पोलिस वापिस लौट गई.

प्रातःकालमें जिस वरुत कसाई जेम्नियोंको लेने आया उस वरुत क्या देखता है कि एक मनोहर श्वेत बालवाला सुन्दर जेम्निया लेट रहा है—महानुजावों! यह वही जेम्निया है कि जिसका शरीर केरीपाकके रससे संलग्न हो रहा है तथा उस पर चोतर्फ श्वेत रूई लिपट रही है—देखते ही इस सुन्दर जेम्नियेके कसाईने तत्काल गोदमें ऊठाकर कूँच किया इस समय उन सेठजीकी निडा पृथक् होनेसे जागृतावस्थाको संप्राप्त हुवे कसाईके सर्व चिन्ह देखकर

एकदम घबराते हुवे कहते हैं हे जाई ! जरा दया करना मैं जेमिन्या नहीं हूँ
किन्तु मनुष्य हूँ इस पामर जीवकी रक्षा करना इस कथनपर कसाईने गोर
कर उसे मुक्त किया

अब यह दामादजी शर्मिन्दे होते हुवे तालाबमें स्नान मज्जनकर स्त्रीके
पास पहुँचे स्त्रीने पूछा हे स्वामिन् ! रात्रीजर कहा व्यतीत किया लज्जावश
कुठ जी उत्तर नहीं देता है किन्तु पत्निके अत्यन्ता ग्रहसे अपनी गुजरी हुई
नौबत सर्व कह सुनाई स्त्रीने बहुत कुठ उपहास किया अब ये दोनो दम्पति
रहासे प्रस्थान कर अपने शहरमें संपात हुवे - -

महानुजाबों ! इतनी तकलीफ होने पर जी इसने यह दृढ किया चाहे
सो हो किन्तु केरीपाक नामक मीठा अवश्य खाना चाहिये इतना ही नहीं
किन्तु अब यह इस कदर शोकीने हुवा कि अपने सुसरालेमें म्बवे जेर ए
केरीपाक मंगवाता है और खुश आनंद पूर्वक अपना काल निर्गमन करता है
गुणानुरागियों ! जरा देखिये एक और जी कौतुक अनुभव कराता हूँ

कालान्तरसे उस साहूकारकी स्त्री पुनरपि उसके पितृहकों गई और
उसही तरह पीठसे यह लेनेकों गया तथा तथैव जोजन सामग्री तैयार हुई
उसमें श्रीखण्ड (श्रीखरणी) नामक मिष्ठान जी विद्यमान था यद्यपि
यह मिष्ठ पदार्थका प्रेमी हो गया था किन्तु सर्व मिष्ठानोका तो अब तक जी
अप्रेमी ही था अतः सर्व मीठा थालेमें निकलवा दिया पूर्ववत् इसमें श्रीख-
ण्डका किञ्चित् स्वाद आया तब प्रयमावस्थावत् अपनी स्त्रीको केरीपाकके
अनुसरि श्रीखण्ड लानेका कहा किन्तु त्रिपावश उसकी इनकारी पर वह खुद
रवाना हुवा इस वख्त जमाईजीके नेत्रोंमें कुठ रातिदा (रात्रीमे नहीं दिखना)
आने लग गया था वास्ते उसका स्त्रीके कथनानुसार पगडीका एक पट्टा अपने
सोनेके पलङ्गपादसे बांध दिया व दूसरा करकमलमें लेकर-रवाना हुवा और
क्रमशः उसही स्थान पर जा पहुँचा

प्यारे पाठकों ! शयनगृह और जोजन गृहके अन्तर एक गली पड़ती

श्री दैव योगसे उस गलीमें निकलती हुई एक जैस पगड़ीके मध्य जागकों निगल गई. जब वह दामादजी श्रीखण्णमें पूर्ण तृप्त होकर वापिस लौटने लगे कि पगड़ीका टूटा पल्ला हाथमें आ गया दिलमें बड़ा जारी डःख हुआ किन्तु किया क्या जाय विचारा लकड़ीका सहारा लेकर चलने लगा. जोजन गृहसे बाहर निकलते ही पेरमें इस प्रकार ठोकर लगी कि सासूजीके ठाती पर फाकसा जा गिरा.

सासूजी एकदम चमक कर चिछाने लगी “दोमूजो रे दोमूजो चौर है १ चौर है” यह घबराहटका शब्द श्रवण कर सर्व कुटुम्ब जाग उठा अब अंधेरे ही अंधेरेमें जमाईजीको पकड़ कर उलटी मुसकीयें बांध एक स्तम्भसे जकड़ दिये अब ऊपरसे धमाधम मार प्रहार करने लगे जमाईजीके तो देवता कूंच हो गये अर्थात् होंस हवाल बिगड़ गए घोर डःख पूर्वक चिछाने लगा “अरे मैं आंको जमाई हूँ, बापरे मत मारोरे, गोमोरे, मरूरे, हाय १ मने मोरेरे ” आदि अनेक विलापात करने लगा लेकिन वहां कौन सुनता है वे तो अविचिन्न तथा धमाधम मार रहे हैं इस दुष्मावस्थामें जमाईजीकी खाटली हो गई अर्थात् हमी १ टूट गई.

प्रातःकाल होते ही सब लोगोंने देखा और यह कहने लगे अहो ! ये तो अपने जमाईजी हैं गजब हो गया अब क्या किया जाय सब लोगोंने मिल कर दमा माझी. प्यारे पाठकों ! जमाईजी तो मरण तुल्य हो गए इधर एक तर्फ तो सर्वको डःख होता है दूसरी तर्फ इतनी हंसी बूटती है कि उदरमें समाती नहीं मारे हंस २ कर लोटपोट हो रहे अस्तु.

दामादजीका माकुल इलाज कर वाया गया पुण्योदयसे शारीरिक व्यथा दूर हुई. स्वास्थ्य ठीक हो गया इस समय ये दोनो दम्पति पूर्ववत् अपने गृह पर संप्राप्त हुवे अब आप खास कर केरीपाक और श्रीखण्णको खूब सेवन करते हैं इतना ही नहीं किन्तु सर्व प्रकारके मिष्ठ जोजन सेवन करते हुवे आनन्दपूर्वक निवास करते हैं.

प्यारे मुमुक्षुओ ! आपको इस कौतुकी लघु दृष्टान्तसे यह सम्पत्क परि-
ज्ञात हो गया होगा कि वह साहूकारका लम्का उन मिष्ट पदार्थोंमें किस
प्रकार आसक्त हुआ था कि जिससे अनेक प्रकारके कष्ट* गुजरने पर जी वह
कन ऊत्तम जोगनोके सेवनसे विमुख न हुआ

इसही प्रकार प्राणी मात्रकों सामायक, पौषय, प्रतिक्रमण, देशव्रत, महा-
व्रत, नौका रसी, एकाशन, निविगय, अयविल, उपवासादि, तपस्या; पठन
पाठन, देव दर्शन, गुरु दर्शन, स्वोपकार, परोपकार, ज्ञान, ध्यान और योग-
ज्यासादि क्रियाओंमें कदापि स्खलित नहीं होना चाहिये इतना ही नहीं
किन्तु प्रत्येक उचित कार्योंमें ऐसा मुद्व रहना चाहिये कि चाहे प्राण जी
क्यों न चले जाय किन्तु स्वीकृत नियमोंमें स्वप्नमें जी न्युते न हों महान्
पुरुषोंका यही विजयकर अटल सिद्धान्त है.

गुणशीलों ! इसही प्रकार हमारे वे पूज्यपाद अपने अप्रतिवद् विहारमें
इस प्रकार मुद्व थे कि ' इन्द्र चन्द्र नागेन्द्र जी उन्हें चलविचल करनेमें स-
र्वथा असमर्थ थे

अहाहा ! धन्य हो मुनि पुद्गल ! इस प्रथम कालमें चतुर्थ कालका कि-
ञ्चित् रसास्वादन करने व करानेमें आप जी एक अनुवेही मुनि रत्न प्रतीत
होते हैं आपका जगत प्रिय अप्रतिवद् विहार बुद्धिजन प्रशंनीय है
इतना ही किन्तु विश्व अनुमोदनीय व अनुसरणीय जी है.

महानुभावों ! आपने अपने पवित्र मानव जवकों सार्यक करते हुये अनेक
जन्मात्माओंका अकथनीय उद्धार किया आपने मुनि पद धारण कर ज्ञान,
दर्शन और चरित्रकों इस प्रकार उज्ज्वल किये कि जिसकी चराचरी चिरसे
पुरुष ही कर सकते होंगे आपकी ज्ञान्ति मुझ चिरकालीय कोषरूपी

* अनेक जगोंमें एक-दो इसमें उद्वृत्त भी करा दिये गए हैं। शेष अन्यत्र स्थानमें
जानना चाहिये

हलाहल विषकों तत्काल नष्ट नष्ट कर देती थी आपका गाम्भीर्य गुण जगत जनकों बलात् आनंद सागरमें निमग्न कगता था इत्यादि. सज्जन पाठकों ! अनेक दिव्य गुण विभूषितये ज्वोद्धारक ३६ वर्ष ४ माह १४ दिवश निर्मल चरित्र पालन कर जूतलमें अपना मनमोहन पवित्र नाम चिरकालीय कर इस संसार (जव) से चलवसे.

॥ जवान्तरमें उत्तम प्रस्थान ॥

वे धर्मावतार इस पृथ्वी मण्डलपर अपने प्रशस्त गुणोंका विशाल प्रभाव विस्तृत करते हुवे वीर मन्वत् १४११ विक्रम सम्बत् १९४१ माघ कृष्ण शुक्ल चतुर्थी शनिश्चर वार वमुजिब तारीख ३३ जान्यु-आरा सन् १९०६ के प्रातःकाले शुक्ल योगमें मरुस्थलके विशाल शहर योध-पुर राज्यान्तरगत सुपरसिद्ध नगर फलवर्धि (फलोदी) में अग्नी देहकों त्याग कर चतुर्विध आहार, वस्त्र, पात्र, ओर देहादि समस्त पदार्थोंका त्रिविध १ त्याग कर परलोक पधार गए.

अरररर ! जिस प्रकार जगदाधार वीर परमात्माके मोक्षपधारने पर हमारा ज्वोद्धारक मारतएम् अस्त हो गया जिससे चारों ओर अन्धकार ढा गया था तथैव हमारे अखासन्नोपकारी पूज्य गणाधीश्वरके परलोक पधार जानेसे हमारा समुदायरूपी पृथ्वीतल घोर अन्धकारसे पूर्ण आच्छादित हो गया था इतना नहीं किन्तु जैन समाजके अधिकांश हिस्से रूपी भूम-एम्लमें एकवार तो अन्धकारने अवश्य ही अपना विकराल रूप पसारा था इस असह्य डःखावस्थामें गुणानुरागी लोग शोक सागरमें चारों ओर गोता मारने लग गए थे, आपकी वियोगावस्थाके खास समयमें अकथनीय डुःखका होना यह तो स्वजाविक ही सिद्ध है किन्तु आज्ञा जी जव हम अपने उन पूज्य प्राणाधारके वियोगावस्थाका दिलि चिन्तन करते हैं कि तत्काल ही हमारे नयन युगल गद १ जर आते हैं

और उनमेंसे अश्रुपातोंकी अविरल धाराएँ बूटने लगजाती हैं इसमें संदेह नहीं कि एक बार तो जब्तु जनोंको वैसे ही मदमा पहुँचा कि जैसा वीर परमात्माके लिये गौतम स्वामीको पहुँचा था यह प्रसस्त प्रेमका ही प्रभाव समझा जा सकता है

इसमें माण वियोगसे जी असौख्य दुःखके साथसाथ ही अयाह हर्ष भी प्राप्त हो रहा है कि पूज्य महर्षि अपने अनूठे जीवनको कृतार्थ कर पृथ्वी तलको पवित्र करते हुवे अनेक अपूर्व गुण रत्नोका नरपुर जलमार लेकर जवान्तर्गमें पधार गए

यह तो स्वतः सिद्ध है अर्थात्-दृढ़ अनुमान है कि ऐसे अवैत योगीश्वर जगन्मय उत्तम वैमानिक पदसे विजृम्भित हुवे होंगे तथा उत्कृष्ट महा विदेहमें परम परमात्मा अर्हन् देवके चरण शरण हो गए होंगे और बड़ा उनकी निश्चाईमें अपने आत्म गुणोंमें रमण करते हुवे शीघ्र ही निष्ठितार्थ पद (सिद्ध पद-मोक्ष) को मंभास कर अजर, अमर, अविनाशी निरञ्जन निराकार उद्योति स्वरूपमें रमण करने हुवे अनन्तकाल पर्यन्त अनन्त दिव्य सुखोंमें झीलते रहेंगे

महानुभावों ! मैंने आन्तरिक भक्ति वश होकर अपने आप ध्यानुमार स्वकीय आत्म लानार्थ तथा अन्य जग्यात्माओंके हितार्थ ऐसे पूज्य गुणशाली गुरु महाराजके " सक्षिप्त जीवन चरित्र " को रचना कर अपने मानव जब्तु कृतार्थ किया

हे विद्यालक्ष्मी गणार्थेश्वर ! आपके दिव्य अगण्य गुण सम प्रकार विस्तृत हैं कि जिसका पारा नार नहीं है अन्तर्गत तो यथा किन्तु मर्यादही जो यदि अनेक मनुष्य महा छारा पार पाना चाहे तो सर्वथा अममर्थ है यथाशक्तीः—

(श्लोक)

असित गिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धु पात्रे ।
सुर तरुवर शाखा लेखनी पत्र मुर्वी ॥

लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्व कालं ।
तदपि तव गुणाना मीश पारं न याति ॥१॥

ज्ञावार्थः—हे स्वामिन् ! यदि अथाह समुद्र रूपी पात्र बनाकर उसमें सुमेरु पर्वत जितना कज्जलका ढेर किया जाय और पृथिविके बरोबर पत्र पर कल्प वृक्षकी प्रधान शाखा लेखनी ग्रहण यदि सरस्वती अपनी प्रबल शक्ति द्वारा समस्त कालमें लिखती ही रहै किन्तु तदपि आपके अगण्य दिव्य गुणोंका पार नहीं पा सकती है. अर्थात् आपके अद्वैत गुण अपरंपार हैं.

प्यारे सज्जनों ! हमें यह सुदृढ विश्वास है कि हमारे साहित्यानुरागी पाठक श्रेष्ठ ऐसे उत्तम योगीश्वरके इस संक्षिप्त जीवन चरित्रको पढ़कर मनन पूर्वक गुण ग्रहण करेंगे और उनके अनुसार आचरण करते हुवे अपनी आत्माका कल्याण करेंगे.

प्यारे पाठक वरों ! यह चरित्र पूर्ण करनेके साथ ही साथ मैं यह शुभ ज्ञावना ज्ञाता हूँ कि आप नाथका पवित्र नाम इसपृथ्वी तलमें सदैव जयवन्ता वर्त्तो

॥ शुभम् नूयात् ॥

ज्ञान रसिकों ! अब मैं आपके प्रज्ञावशाली जयन्तीका किञ्चिद्विरण पाठकोंके अग्निमुख करता हूँ आशा है कि आप संज्ञान गण प्रेम पूर्वक पढ़ेंगे.

॥ प्रजावेशाली गुरु जयन्ती ॥

निर्वाण कल्याणक (काल प्राप्तक शुद्ध दिवस), वा जन्म कल्याणक के शुभ मिति पर प्रतिवर्ष अनेक प्रयोगोंसे दिव्य गुणोंकी प्रजावना करते हुवे शासनके उद्योतके साथही साथ आप खुद तपोदि विशिष्ट गुणोंको अवधारण करे तथा अन्य ज्येष्ठ प्राणियोंको नानोविध अर्पण प्रत्याख्यान करवा कर उन के मानव जवकों कृतार्थ करावे एवम् आराधन करनेवालेकी अनुमोदना करते हुवे वह पवित्र दिवस महोत्सव पूर्वक निर्गमन करे उसे "जयन्ती" कहते है

हमारे पाठकवरों ! हमारे महान् अन्तराय कर्मके प्रबल ऊदपसे यह अ-पूर्व सौभाग्य आपके जवान्तर पधारनेके सत्ताइस वर्षोंके पश्चात् हमे संप्राप्त हुवा अर्थात् वीर सम्बत् १४४० विक्रम सम्बत् १९७० में आपके काल प्राप्तके निज स्थान (फलोदी) पर प्रथम जयन्तीका सुअवसर संप्राप्त हुवा

द्वितीय जयन्ति महोत्सव वीर सम्बत् १४४१ वि सं. १९७१ में बड़े ही समारोहके साथ मुमसिख शहर विक्रमपुर (बीकानेर) में हुआ

तृतीय जयन्तीका पवित्र सौभाग्य वीर स १४४१ वि सं १९७१ में राज-पूतानेके केन्द्रस्थान मुमसिख अजमेर में बड़ेही समारोहके साथ संप्राप्त हुवा इसमें सन्देह नहीं की यह दृश्य एक अवश्य ही दर्शनीय था

तीनों ही जयन्तियों में यथोचित पूजन प्रजायनों, रथ यात्रादि उत्सव बड़े ही समारोहके साथ हुवे तथा, उपनाम, आपत्रिल, एकाशान्, रात्री जो जन त्याग, ब्रह्मचर्य पालन, सामयिक पौषध, प्रतिक्रमणादि नानोविध प्रत्याख्यान मंत्रमो जप्यात्माओंने अवधारण कर अपनेमानव जवकों कृतार्थ किये

यह प्रजावेशाली जयन्ती दिन बंदिन नरहीको संप्राप्त हो रही है प्रथम जयन्तीमें द्वितीय अधिक उन्मवके साथ आराधन की गई तथा द्वितीयमें तृतीय विशेष महोत्सवके साथ आराधन कर अपना मानव जव पवित्र किया

गुरुदेवसें अहर्निश सविनय यही प्रार्थना है कि उन पूज्यपाद गणाधीश्वरकी जयन्ती प्रति वर्ष विशाल दिव्य स्वरूपमें वृद्धिगत होती रहै.

वाचक वृन्दों! अब मैं चरित्रनायक पूज्यपाद गणाधीश्वर श्रीमान् सुखसागरजी महाराज साहब शासनाधीश्वर परम परमात्मा श्री महावीर स्वामीकी शुद्ध परंपरामें किस प्रकार संलग्न हैं इसें प्रकाशित करनेके हेतु शुद्ध गुर्गावली सांक्षेप रूपेण पदर्शित करता हूँ इसके साथही साथ पूज्य गुरुवर्यकी शीतल ठायामें निवास करनेवाला सुन्दर समुदायका जी किञ्चित् परिचय देनेमें प्रयत्नशील होता हूँ.

॥ मोहन गुर्गावली ॥

जगत्पूज्य, जगद्गुरु, जगन्नाथ, जगदाधार, परम प्रभु, सर्वज्ञ, सर्व दर्शी, पूर्ण ब्रह्म, त्रिकाल स्मरणीय चतुर्विंशतितम तीर्थंकर, अहंदेव “श्रीमन् महावीर परमात्मा” हुवे.

तत्पदे चतुर्ज्ञानधारी, चतुर्दश पूर्ववेत्ता, षाडशाङ्गी रचयिता, सम्यक्त्व रङ्गरङ्गिता, आत्म जावन परायणादि गुणैर्विभूषित “श्री गौतमस्वामी” किन्तु उनके समस्त शिष्य केवल ज्ञान पाकर मोह गये अतः उनकी परंपरा नहीं चली इसही लिये वीर परमात्माके फरमानानुसार आपके “पद पर श्री सौधर्मस्वामी” हुवे ॥ २ ॥

तत्पदे “श्री जम्बूस्वामी” हुवे—आपके मोह पधारनेके पश्चात् १ मनः पर्यवज्ञान २ परमावधि ज्ञान ३ पुलाकजब्धि ४ आहारका शरीर ५ कृपक श्रेणी ६ उपशम श्रेणी ७ जिनकल्प मार्ग ८ परिहार विशुद्धि, सूक्ष्म संपराय, यथाख्यात चारित्र ९ केवल ज्ञान १० सिद्धिमार्ग ये दश वस्तुएँ विह्वले हुईं ॥३॥

तत्पदे “श्री प्रज्ञवस्वामी” ४ । तत्पदे दशवैकालिक कर्त्ता “श्री

शंजमज्ञवसूरी" ५ । तत्पट्टे "श्री यशो ज्ञेसूरि" ६ । तत्पट्टे श्री सज्जतिविजयजी ७ । तत्पट्टे उपसर्गहर स्तोत्र, आवश्यक निर्युक्ति, कल्प मृदादि अनेक ग्रन्थ कर्ता चतुर्दश पूर्वधारी द्वितीय लघु भ्राता श्री ज्ञे-
वाहूस्वामी" हुवे ८ । तत्पट्टे कोशा वैद्या प्रतिबोधक, प्रचण्णशील धनपा-
लक "श्री सुस्थितसूरि" ९ । तत्पट्टे श्री आर्य महा गिरी १० । तत्पट्टे
द्वितीय लघु भ्राता श्री आर्यसुहृत्सूरि-हुवे-॥ ११ ॥

तत्पट्टे क्रोमवार मूरि मन्त्रका जाप करनेवाले श्री स्थितसूरि हुवे जैन
संप्रदायमें आप महानुभावसे कौटिक गच्छ सुप्रसिद्ध हुवा-॥ १२ ॥

तत्पट्टे श्री चन्द्रदिनसूरि-१३ तत्पट्टे श्री दिनसूरि १४ तत्पट्टे जातिस्मरण
ज्ञानवान्-श्री सिंहगिरीजी १५ ॥

मध्यमें श्री वृक्षवाटीसूरिके एक असाधारण न्यायाचार्य श्री सिद्धसेन
दिवाकर हुवे आप श्रीने सुमनोहर मालव देशमें उज्जयनी नगरीके अन्दर मा-
ह्वाकाल नामके मन्दिरमें प्रजाविक्र श्री कल्याणमन्दिर स्तोत्रकी रचना
की और उसके द्वारा शिवलिङ्ग को स्फोटनकर परम परमात्मा श्री
पार्श्वनाथस्वामीका दिव्य विम्ब प्रकट किया तथा राजा विक्रमकों
सङ्गदेश देकर पवित्र जैन धर्म बनाया-आप पूज्यने अनेक ग्रन्थोंकी रचना
कर जैन समाज पर परमोपकार किया है-

तत्पट्टे वाज्यावस्यासे ही जाति स्मरण अवधारण करनेवाले श्री चज्ज-
स्वामी हुवे आपके पश्चात् दशम पूर्व और चतुर्थ सहननादि विच्छेद हुवे आप
बुद्धि विचरुणसे वज्र शाखा प्रचलित हुई १६ ॥ तत्पट्टे श्री वज्रसेनाचार्य १७
तत्पट्टे श्री चन्द्रसूरि हुवे आप प्रजावशालीसे चन्द्रकुल स्थापित हुवा १८

तत्पट्टे श्री मयंतचन्द्रसूरि १९ तत्पट्टे श्री देवसूरि २० तत्पट्टे श्री प्रद्योतन

सूरी ११ तत्पट्टे शान्तिस्तव कर्त्ता श्रीमान् देवसूरि १२ तत्पट्टे ज्ञानामरादि
कर्त्ता श्रीमान् तुङ्गसूरि १३ तत्पट्टे श्री वीरसूरि १४ ॥

इसके अन्तरमें लोहितसूरिके प्रखर विद्वान् शिष्य परम पूज्य श्रीमान्
देवर्दिगणि कर्माकर्मण हुवे आप विशाल ज्ञानीने वल्लभी नगरमें
समस्त आचार्यादिकोंको इकत्रितकर वीर निर्वाणके ६०० वर्ष पश्चात् सर्व
शास्त्र लेख प्रवृत्तिमें प्रचलित किये—आप पूज्यका यह महानुपकार
अखिल जैन समाजकों चिर स्मरणीय है.

तत्पट्टे जयदेवसूरि १५ तत्पट्टे श्री देवानन्दसूरि १६ तत्पट्टे श्री विक्रमसूरि
२७ तत्पट्टे श्री नरसिंहसूरि १८ तत्पट्टे श्री समुद्रसूरि १९ तत्पट्टे श्रीमान् देव-
सूरि ३० तत्पट्टे श्री विबुधप्रज्ञसूरि ३१ तत्पट्टे श्री जयानन्दसूरि ३२ तत्पट्टे
श्री रविप्रज्ञसूरि ३३ तत्पट्टे श्री यशोज्ञसूरी ३४ तत्पट्टे श्री विमलचन्द्रसूरि
३५ तत्पट्टे श्री देवसूरि आपसे सुविहितपद प्रसिद्ध हुवा. ३६ तत्पट्टे श्री
नेमिचन्द्रसूरि ३७ ॥

तत्पट्टे श्री उद्योतनसूरीश्वर हुवे. आपने चौरासो गच्छोंको
स्थापना कर श्री वीर शासनका अनुपम उद्योत किया. देखिये:—

आप महानुभावकों एक अद्वैत विद्वान् समझकर अन्यत्रयासी मुनिराजों
के ०३ शिष्य आपकी सेवामें पठनार्थ हाजिर हुवें अब ये सर्व ठात्र सज्जन
आगमोंका अज्ञास जलीव प्रकार करते हैं क्रमशः मालव देशके श्री संघके
साथ पवित्र तीर्थराज श्री सिद्धाचलजीकी यात्रा कर अपने मानव ज-
वकों कृतार्थ किया, ऋषभ जिनेश्वरकों वंदना नमस्कारकर वापिस लौटते
समय सिद्धवरुके नीचे रात्रीमें स्थित रहै. मध्य रजनीमें आप क्या देखते हैं
कि रोहणी नक्षत्रके विमानमें बृहस्पति प्रवेशकर रहा है यह शुभ अवसर देख
आपने फरमाया कि इस वरुत ऐसा उत्तम योग है कि जिसके मस्तक पर
हस्त स्थापन किया जाय वह वही ही प्रसिद्धताको अत्रधारण करेगा. यह

सुवचन सुनके ७३ ही शिष्योंने नम्रता पूर्वक प्रार्थना की कि हे नाथ ! आप हमारे विद्यागुरु हैं हम आपहीके सेवक हैं कृपया हमारे पर ही हस्त स्थापन कीजियेगा तब सूरेश्वरजीने फरमाया वासक्षेप, लेआन उन शिष्योंने तत्कालही काष्ठ व कन्फेका चूर्ण कर हाजिर किया गुरुमहाराजने उस चूर्णको मंत्र कर उन ८३ योंके मस्तकपर प्रक्षेप किया पश्चात् आपत्रीने अपनी अ-प्यायुष्य ज्ञान प्रातःकालमें ही अनशनकर स्वर्गवास-पधार गए तदनन्तर आपके वासक्षेपीय शिष्य क्रमशः आचार्य, पदपाकर विचरने लगे इस प्रकार आपके निज शिष्य श्रीवर्धमान सूरेश्वर सहित ७३ मिलाकर चौरासी गद्य प्रचलित हुवे आप श्री उद्योतन सूरेश्वर चौरासीही महा प्रज्ञावशाली आचार्योंके संसृष्ट थे ३७ ॥

तत्पश्चे श्री वर्धमानसूरि हुवे आपने अपनी शक्ति द्वारा वरणेन्द्रों आराधन किया और श्री सिमैन्दिरस्वामिके पास जेजकर सूरि मन्त्र शुद्ध करवाया. ॥ ३८ ॥

तत्पश्चे महा प्रज्ञावशाली खरतर पद विरुद्धधारी जैन ग-गन मार्त्तण्ड श्री जिनेश्वरसूरि हुवे आपका कितनाक नियन्ध यहां-पर उद्धृत करता हूँ :

॥ एक समय आप अपने ज्ञाता बुद्धिसागरजी सहित मरम्यलसे निहार कर गुर्जर देश (गुजरात) आणहिल्लपुर पट्टणमें पधारे वहा पर डर्लज राजा का पुरोहित शिवशर्मा ब्राह्मण जो कि आपका पुर्व मातुल (मामा) था उसें एक शब्दों में ही चमत्कार दिखलाकर उसके घर सानद निवास करते गये

आपका शुजागमन सुनवहाके चैलवासी (जियिलाचारी) धरारा उठे उन्होंने यह सोचा कि ये वरुं जारी ज्ञानवान और क्रियावान है इन्हे, किमी तरह निकलना देना चाहिये वरुं अपनी बहरी डर्दशा होगी यह विचार ड-ल्लज राजाको जा निमाया कि महाराज ! आपके पुरोहितके यहा चौर लोग

दिखीसँ आकर रहे हुवे हैं उन्हें निकलवाना चाहिये सुनते ही राजाने तत्काल उस पुरोहितको बुलाकर पूछा कि तुमारे घरमें चौर हैं ऐसा सुना जाता है उसने उत्तर दिया स्वामिन् कहनेवाले ही चौर हैं वेतो परम संवेगी, परम त्यागी, ध्यानी योगीश्वर हैं यह सुन राजाने उनके शुद्धाचार विलोकनार्थ उन महात्माको बसे ही सत्कारके साथ पदार्पण करवाया गुरुमहाराजने राज सज्जामें पधारते ही रजोहरणसँ जूमि प्रमार्जन कर इर्या पथिक प्रतिक्रमी और अपनी कम्बली बिछाकर बिराज गए.

राजा इस श्लाघनीय आचारको देखकर आनंदित होता हुवा कहने लगा कि अहाहा ! सगुरु इसही प्रकारके होते हैं चैत्यवासियोंके पतिताचार देख आप पूज्यपादको प्रार्थना की कि हे जगत्पूज्य ! सद्गुरुका आचारोपदेश करियेगा गुरुमहाराजने फरमाया राजन् ! मैं अपने मुखसँ क्या कहूँ तुमारे सस्वती जलमरमें सर्व मतके स्वरूप प्रकाशक ग्रन्थ निद्यमान हैं अतः यदि तुमारी इच्छा है तो निर्मल जलसे स्नान की हुई कुमारी कन्या द्वारा मङ्गवाना समुचित होगा. राजाने उसही तरह कुमारीको सरस्वती जलमरमें जेजी अनायास दशवैकालिक सूत्र ही उपलब्ध हुवा मान्यवरों ! वगेर बतलाए हुवे ही अचानक साधु आचारका ग्रन्थ मिलना यह जी आपका एक सुप्रज्ञाविक चमत्कार है.

राज सज्जामें ग्रन्थ आते ही गुरुमहाराजने फरमाया कि यह इन चैत्यवासियोंके हाथमें देकर इनहीसे बचाया जाय. अब वे लोग बाँच रहे हैं किन्तु साधुओंके सदाचारवाले पत्रके पत्र ढोड़ने लगे यह विलक्षण घटना देख गुरु महाराजने फरमाया राजन् ! तुमारी सज्जामें दिनको ही चौर निवास करते हैं इत्यादि सुन राजाने कहा आपही बाँचियेगा. गुरुमहाराजने फरमाया इस अवसरमें मेरा बाँचना उचित नहीं तुमारे निष्पक्षपाती विद्वान् ब्राह्मणोंसे ही बचाओ.

ब्राह्मणोंने यथार्थ बाँचकर सज्जाको श्रवण कराया सकल समाज सहित

मुनेही राजाने अति प्रसन्न होकर कहा “अतिखराएते” ये वड़े खरे हैं (विशुद्ध दृढ हैं) इसही वस्तुसे अर्थात् वीर सम्बन्ध १५५० विक्रम सं. १७७७ में छत्रज महाराजाकी महा सन्नामें पराजय हुवे चैत्यवासियोंको “कुंवला” नामसे व्यपदेश हुवा और परम पूज्य गुरुवर्य श्रीमान् जिनेश्वरसूरिश्वरको खरतर विरुद्ध महा पदसे विभूषित किये ॥४७॥

तत्पट्टे श्री जिनचन्द्रसूरि आपने दिल्ली शहरमें बहुतसे श्रीमालियों को व कइएक राजबगियोंको प्रतियोग देकर शासनकी प्रजावनाकी जिन राज बगियोंको आपने श्रावक बनाये उनका महत्तियान् मौज स्थापन किया इस अवसरमें पराजती देवी प्रकट होकर प्रार्थना करने लगी कि हे पूज्य गुरुवर्य ! “जिनचन्द्र” यह नाम वनाही प्रजावशाली है अतः आपकी शुद्ध परम्परामें चाये पट्ट पर अवश्य देते रहियेगा ॥ ४१॥

तत्पट्टे आप महानुभावके लेंबु जाता महा प्रजावशाली श्री अजयदेवसूरेश्वर हुवे आपने शासन देवीकी प्रार्थनासे प्रजाविक जयतिहुण स्तोत्रकी अपूर्व रचना कर सम्मनक महा तीर्थ प्रकट किया तथा नौ अङ्गोकी अपूर्व संस्कृत टीका कर जैन समाजपर अविस्मरणीय उपकार किया आपने प्राकृत और संस्कृतके अनेक ग्रंथोंकी रचना की है ॥४७॥

तत्पट्टे श्री जिन वल्लभसूरि हुवे आपने संघ पट्टादि अनेक ग्रंथोंकी रचना की अनुमान दश हजार पागणियोंको प्रतियोग देकर श्रावक बनाए चित्रकूट नगरमें चण्डिका देवीको प्रतियोग दिया आपके सङ्घपदेशसे अनेक जिन जुवनोमें यह पृथ्वी विभूषित हुई इस प्रकार प्रजाविक समस्त शासन देवीने पूज्य गुरुवर्यसे यह प्रार्थना की कि अरसे आपकी पद परंपरासे आचार्यके नामके पूर्व प्रजावशाली “जिन” शब्द अन्वित करते रहियेगा

आप कृपावतारसे “मधुकर खरतर शाखा” प्रचलित हुई. यह प्रथम गच्छ जेद हुआ. ॥ ४३ ॥

तत्पश्चे चौरासी गच्छ शृंगारहार जंगम युगप्रधान जट्टारक दादासाहेब श्री जिनदत्तसूरिश्वर हुवे. उन प्रतापशाली वीर पुरुषका संक्षेपतः विवरण इस स्थल पर उद्धृत करनेका प्रयत्न करता हूँ:—

धंधुका नगर निवासी हुंवरु गोत्रीय बाह्यगमन्त्री पिताके कुलमें बाहरु-देवी मातेश्वरीके रत्न कुक्षीसे वीर सं० १६०९ विक्रम सं० ११३९में सोमचन्द्र नामक सुपुत्र समुत्पन्न हुवे. आपने परम वैराग्यतासे वीर सं० १६११ वि० सं० ११४१ में धर्मदेव उपाध्यायजीके पास दीक्षा अङ्गीकार की

एक समय सारङ्गपुर नगरमें आप गुरुवर्यने कुंअरपाल उपाध्यायजीको अनशन करवाया जिसके प्रतापसे वे देव पदकों संप्राप्त हुवे आचार्य पदवीके प्रथम ही उस देवने प्रकट होकर कहा कि सोमचन्द्रको आचार्य पदवी प्राप्त होगी उसके तीन मुहूर्त्त हैं प्रथम मुहूर्त्तमें मृत्युका योग है द्वितीयमें गच्छ जेद है और तृतीय अति श्रेष्ठ है यह कहकर अदृश्य हो गया. “यज्ञावितज्जयत्येव” इस न्यायसे जमवश द्वितीय मुहूर्त्तमें ही वीर सं० १६३९ वि० सं० ११६९ में चित्रकूट नगरमें श्री देवज्जशाचार्यजीने सूरि मन्त्र देकर आप श्रीको आचार्य पदसे विभूषित किये और “श्री जिनदत्तसूरीश्वर” इस नामसे अलङ्कृत किये. आप प्रतापशालीको द्वितीय मुहूर्त्तमें आचार्य पद संप्राप्त होनेसे देववचनानुसार वीर सं० १६९४ वि० सं० ११०४ जिन शेखराचार्यसे रुद्रपत्नीय खरतर शाखा प्रचलित हुई. यह द्वितीय गच्छ जेद हुआ. आप पूज्यपाद गुरुवर्यने अनेक प्रजावशाली कार्य किये जिनमें कितनेक नमुने इस स्थान पर उद्धृत करनेका प्रयत्न करता हूँ:—

एक समय आप पूज्य सूरेश्वरने अपने मन्त्र शक्ति द्वारा चित्रकूट नगरमें

दशगृहके वज्र स्तम्भमें रहा हुआ अनेक मन्त्रों की आम्नायक पुस्तक तथा उज्जयनीयमें महाकाल मन्दिरके स्तम्भमें रहा हुआ श्री सिद्धसेन दिवाकरजीका विद्याग्रन्थ ग्रहण किया ।

एक दिनका प्रस्ताव है कि आप उज्जैनमें व्याख्यान बाँच रहे थे उस समय श्राविकाओंका रूपकर चौपठ योगिनियें ठलनेके लिये आईं इन्हे श्रावकोंसे उपयोग किये हुवे ६४ पट्टों पर आप गुरुवर्यने मन्त्र द्वारा खीलदी उस पत्रत उन्होंने अति प्रसन्न होकर सप्त वरदान दिये तथा सातोंही उनके प्रयोग दिखलाए—तद्यथाः—

॥ सप्त वरदान ॥

(१) मत्स्येक ग्राममें सरस्वर गङ्गीय श्रावक दीक्षिमान् होंगे

(२) खरस्वर श्रावक प्रायः निर्धनन होंगे

(३) संघमें कुप्रण नहीं होगा

(४) अखण्ड शील व्रत पालन करनेवाली साध्वी कल्पति नहोंगी

(५) खरस्वर संघकों शाकिन्यादि नहीं ठलेंगी

(६) जिनदत्तमुरीश्वरका नाम स्मरण करनेमें विद्युत् (विजली) बगेरा

पतनादि उपसर्ग न होगा

(७) खरस्वर श्रावक विंधु देशमें जानेसे धनाढ्य होंगे

॥ सप्त वरदानके सप्त प्रयोग ॥

(१) विंधु देशमें जानेसे गठ नायकों पञ्च नटी साधना चाहिये

(२) मुरि पद धारकों नित्य दोसौ बार मुरि मन्त्रका जाप करना चाहिये

(३) मुनिराजकों नित्य दो हजार नमस्कार मन्त्रका जाप करना चाहिये

(४) खरस्वर श्रावकों दोनों काल सप्त स्मरणका पाठ करना चाहिये

(५) श्रावककों प्रति दिवस तीन खिचड़ी (एक मनके पर एक नमस्कार और एक उपसर्ग हर स्तोत्र) की माला गिनना चाहिये.

(६) खरतर श्रावककों एक मासमे दो आचाम्ल करना चाहिये.

(७) खरतर मुनिकों सति सामर्थ नित्य एकाशन करना चाहिये.

सातों वरदानोंके फलितार्थ उपरोक्त सप्त प्रयोग बतलाकर प्रस्थान करते समय यह कहकर रवाना हुई कि दिल्ली, अजमेर, मरुअब्द, उज्जैन, मुलतान, उच्चनगर और लाहौर इन सप्त नगरोंमें पूर्ण शक्ति रहित खरतर गठनायककों रात्री निवास नहीं करना चाहिये.

एक समय अजमेर नगरमें पादिक प्रतिक्रमणमें बिजली बार १ ऊबकती हुई बाधा पहुँचा रही थी उसही वरुत गुरुदेवने जलपात्रसे उसे दवा दी. प्रतिक्रमणके बाद पात्र उठाया बिद्युतने प्रसन्न होकर यह वरदान दिया कि आपका नाम जपनेवाले पर मैं कदापि न गिरुंगी.

एक समय आप वृद्ध नगरमें पधारे जैन शासनकी प्रज्ञावनाकों नहीं सहने वाले ब्राह्मणोंने मृतक गा जिन मंदिरमे पटककर हल्ला मचाया कि जैनियोंके देव हिंसक होते है इत्यादि. श्रावकोंके आग्रहसे गुरुदेवने व्यन्तरद्वारा उसे जीवित कर दी जिससे वह गौ शिव मूर्तिके ऊपर जा गिरी यह विशाल प्रज्ञाव देख ब्राह्मणोंकी बढी जारी हंसी हुई इससे वे लज्जित होकर गुरु देवसे प्रार्थना करने लगे कि आजसे आपकी परंपरावाले कोई जी आचार्य आवेंगे उन्हें परम महोत्सवसे हम नगर प्रवेश करावेगें इत्यादि. जैन धर्मकी विशाल प्रज्ञावना हुई.

एक समय जरुअब्द नगरमें आप पूज्य गुरुवर्यने मांस जहण बन्द करवाकर मुगल पुत्रकों व्यन्तर द्वारा ४ मास जीवित रक्का.

एक दिनका प्रस्ताव है कि नागदेव (अंबड़) श्रावकने गिरनार पर्वतपर

अष्टमत्पत्तं अंबिकादेवीकों आराधनकी और यह पृठा कि हे देवी ! इस वरुत जरतदेवमें युग प्रधान कौन है मैं उन्हें अपना गुरु करना चाहता हूँ देवीने तत्काल उसके हस्त पर एक श्लोक लिख दिया और कहा कि इसें जो पद देवही युग प्रधान समझना—

वह श्लोक अनेक आचार्यों कों बताया किन्तु कोई जी न वाच सका अखीर परिचयण करता हुआ पाटण नगरमें गुरु दयालके पास आन पहुँचा गुरु महाराजने उसके हाथ पर वासकूप करके शिष्यकों वाचनेकी आज्ञा ब-कीस की अतुल मतापी गुरुवर्यके आज्ञानुसार उसने उस श्लोककों वाचकर स्पष्टार्थ तत्काल प्रदर्शित किया यह सुन वह श्रावक परं श्रवणान् हुवा इस प्रकार आप परम पृज्य युग प्रधान निर्मल पदसें विजूपित हुवे वह अनुपम श्लोक वह है

(श्लोक)

दासानुदासाश्च सर्वदेवा यदीय पादाब्जतले लुवन्ति ।
मरुस्त्रली कटपतरु सजीयाद्युगप्रधानो जिनदत्तसूरिः ॥ १ ॥

एक परम आप श्री व्याख्यान बीच रहेये उस समय आपके एक परम जक्त श्रावकने अपनी जहार्जेकों समुझमें मूयती हुई जान आप गुरुदेवका स्मरण किया—तत्काल ही आपने अपने दीर्घोपयोगसें जान पक्षीका रूप बनाकर उसकी ससस्त जहार्जे तिरा दी—यह श्रवण कर समस्त जन समाजने जैन शासनकी महती प्रजावना की—आपश्री बहुरूपी विद्याके पूर्ण अनुजवि थे.

एक वरुत आप गुरु देव मुलतान नगरमें बसेही उत्सवसें प्रवेश हुवे उस समय पट्टननगर निवासी खरतर विरोधी अंबरु श्रावकने कहा कि हमारे अणहिलपुर पत्तनमें इस प्रकार पयारें तो आप चमत्कारी समझे जाय

बैरना “मिट्टीके नक्कारे और धरके बजानेवाले—खूब कूटते रहो”
गुरुमहाराजने फरमाया हम तो बेशक उसही तरह आवेंगे किन्तु उस समय
तू निर्धनावस्थामें नमक तैल लेकर सन्मुख मिलेगा.

ग्रामानुग्राम विकार करते हुवे बड़े महोत्सवसें पत्तन नगरमें प्रवेश हुवे
सन्मुख वही निर्धन अंबरु आया देखते ही गुरुमहाराजने फरमाया कि क्यों
अंबरु अहंकारका फल तूजे मिल गया ? यह सुन अंबरु शर्मिन्दा हुवा
अब क्रोधवश होता हुवा कपट धारी खरतर श्रावक बनकर उन पूज्यका स-
न्मान करने लगा और बड़ाही जत्त बना.

एक दिन उस वैषी अंबरुने ज़हर मिलाकर गुरुवर्यकों मीठा जल बहरा
दिया आप पूज्यने उसमें विष जान शीघ्रही जणशाली गौत्रीय आज्ञू नामक
श्रावकसें विषा पहार मुड़िका मङ्गवाकर निर्विष बनाया यह घटना सुन सब
लोगोंने अंबरुकी बड़ीही कदर्यना की कमसें वह काल करके व्यन्तर हुवा
वहांपर जी वैषवश गुरुवर्यका रजोहरण (ओवा) हरणकर लिया इस वखत
गुरुमहाराज कुछ खिन्न चित्त हुवे इसपर आज्ञू श्रावकने उस व्यन्तरकों कहाकि
गुरुदेवकों प्रसन्न करो मैं मैरा समस्त कुटुम्ब तुमकों अर्पण करूंगा इस व-
खत गुरुदेवने अपने ज्ञान बलद्वारा रजोहरण ग्रहणकर सकल कुटुम्बकी रक्षा
की, व्यन्तर इस व्यवस्थाकों देखकर जग गया.

एक वखत विक्रमपुर (उज्जैन) में मरकीका उपज्व (हेजा) जोरशो-
रसें चल रहा था उस समय गुरुमहाराजका वहां पदार्पण हो गया आपने
जैनियोंका रोग उपशान्त किया तब माहेश्वरियोंने प्रार्थना की कि हे पूज्य गुरु
वर्य ! हमारे पर जी कृपा कीजियेगा हम आपके श्रावक बन जावेंगे जो
श्रावक नहोगा वह अपने पुत्र पुत्रियोंका चौथा जाग आपके चरण
कमलोंमें जेट करेगा. यह सुन गुरुदेवने उनका उपसर्गनिवारण किया. इस
समय बहुतसे माहेश्वरी श्रावक हुवे जो न हुवे उन्होंने अपने पुत्र पुत्रियोंकों चढ़ाया

धन्य है गुरुदेवाल ! आपने पांचसौ पुत्र व सातसौ पुत्रियोंको दीक्षा देकर उनकी आत्माका कल्याण किया।

इसही तरह बहुतसे नगरोंमें नाहटा, राखेचा, जेणशाली, नवलखा, डागा, लूणिया वगैरा गोत्र स्थापन किये करीब एक लक्ष तीस हजार जन समाजको प्रतिबोध देकर श्रद्धावन्त जैन श्रावक बनाये।

आपने हाथी, साइलुणियाकों मुलतान नगरमें महा मङ्गलकारी "अजि-
तेशान्ति जिन स्तोत्र" अणहिल्लिपुर पट्टणमें बोंथरा गौत्रीय श्रावककों
"उवसग्गहरं स्तोत्र" प्रदान किया।

आपने पञ्च नदी पर पंच पीरोंकों साधन किये; आप पूज्यने संदेह दोन
इलावली, सजयउ, मयरीउ, सिंघमवहर स्तोत्र वगैरा अनेक ग्रन्थका रचना
कर संघ परमहदुष्कार किया।

आप परम पूज्य गुरुवर्य आपाद शुक्ल, एकादशी वीर, सं १६८१ वि.
सं १२११ अजमेर नगरमें अनशन करके प्रथम साधर्म देव लोकमें पधारे
आप पूज्यपाद वने दादासाहेवके नामसे प्रख्यात हुवे ॥ ४४ ॥

तत्पदे मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरेश्वर हुवे-आप श्रीमाल गोत्रमें
शाह रासलदे पिता और देहणादेवी मातामें वीर सं १६६७ वि सं ११९७
के ज्ञास्वपद शुक्ल अष्टमीकों अवतरित हुवे अजमेर नगरमें वीर सं १६७२
वि. सं. १२०३ का फाल्गुन कृष्ण ए कों श्री जिनचन्द्रसूरेश्वरसे दीक्षा ग्रही-
कार की तथा इन्हीं प्रतापशालीने आपको वीर सं १६८१ वि. सं १२११
वैशाख शुक्ल ६ को आचार्य पदवी प्रदान की।

एक समय आप श्री संघके आग्रहसे दिल्ली नगरमें पधारे वहा संघ पर
अनहद उपकार किया एक दिन आपने अपना आयुष्य निकट समझ कर

मदनपाल श्रावककों कहा कि मेरे मस्तकमें मणि है वह अग्नी संस्कारके समय उड़ेगी वास्ते एक निर्मल दुग्धका कटोरा पास रखना उसमें आगिरेगी. यह बात एक बुद्धिवान् योगीने ज्ञी सुन ली थी. इस तरह फरमांकर आप महा-नुज्ञाव वीर सं० १६ए३ वि० सं० १२२३ ज्ञाखण्ड कृष्ण १४ कों अनशन कर देव लोक पधार गए.

सर्व श्रावक लोग मिलकर गुरुमहाराजकी मण्डी माएक चोक तक ले आए और वहां विश्राम लिया बाद मण्डी वहांसे न ऊठ सकी बहुतेरे प्रयत्न किये किन्तु सर्व निष्फल गए चमत्कार समस्त शहरमें फैल गया तब बाद-शाह ज्ञी वहां आया और हुकुम दिया कि यह देव बन्दाही प्रज्ञावशाली है इनका स्थान यहीं पर होना चाहिये. सुनते ही सर्व श्रावकोंने गुरुमहाराजकी देहका अग्नी संस्कार वहीं पर किया अब इस समय वह मणि फ-टाका करती हुई उड़ी किन्तु वे सेठजी तो दुग्धका कटोरा लाना भूल गए और वह योगी जिसनेकी सुन रखवा था एक तर्फ दुग्धका कटोरा लेकर खड़ा था उसके कटोरेमें धड़कसे आगिरी योगी लेकर अपने मकानपर चला गया बाद में सेठको विज्ञात हुआ उस समय सकल संघने उसे उपालम्भ दिया अस्तु आप प्रज्ञावशालीका अब तक दिल्लीके बीचो बाजार स्थान मौजूद है बादशाह वगैराने बहु मान किया. अब तक ज्ञी आप द्वितीय दादा साहिबके नामसे मशहूर हैं. ॥ ४५ ॥

तत्पदे श्री जिनपतिसूरि हुवे. एक दिन आसापुरमें श्रीमाली हाजी-शाहने जिन मन्दिर बनवाया उसकी प्रतिष्ठा आपके हाथसे हुई प्रतिष्ठाके समय उस मणिके ग्रहण करनेवाले योगीने प्रतिमाजीकों भीतर प्रवेश करवाते समय स्तम्भित कर दिये. आपने गुरुदेव श्री जिनचन्द्रसूरीश्वरकों स्मरण किये गुरुमहाराजने प्रकट होकर उन्हें वासक्षेप प्रदान किया उससे जिनपति-सूरिने प्रातःकालमें प्रतिमाजी पर वह वासक्षेप प्रक्षेप किया कि प्रतिमाजी शीघ्रही उठकर अपने आसनारूढ़ हो गये यह चमत्कार जान उस योगीने वह मणि वापिस समर्पण कर दी. आदि अनेज प्रज्ञावशाली कार्य किये. ॥ ४६ ॥

तत्पट्टे श्री जिनेश्वरमूरि हुवे आपके वरुतमें श्री जिनसेनमूरिसें चार सं० १८०१ वि० सं० १३३१ में लघु खरतर शाखा प्रचलित हुई यह तृतीय गद्य जेद हुवा ॥ ४७ ॥ तत्पट्टे श्री जिनमबोधमूरि ॥ ४८ ॥ तत्पट्टे श्री जिनचन्द्रमूरि हुवे आपने चार राजाओंको प्रतिबोध दिया तबसे आप कलिकाल केवली पदसे विभूषित हुवे इसही समयसे खरतर गद्य राजगद्यके नामसे प्रसिद्ध हुवा आप एक विशाल प्रज्ञावशाली आचार्य थे ॥ ४९ ॥

तत्पट्टे प्रत्यक्ष प्रतापी श्री जिनकुशलसूरेश्वर हुवे मियाण नगरम चाजेड गोत्रावतंसी मन्त्रि जीरहागर पिताके कुलमें जपतथी माताके रत्न कुक्षीसें वीर सं० १८०० वि० सं० १२३० में अवतरित हुवे वीर सं० १८१७ वि० सं० १६४७ में इस असार संसारको त्यागकर जवोद्धारके निर्मल चारित्र ग्रहण किया वीर सं० १८४७ वि० सं० १३७७ जेष्ठ कृष्ण ११ को शुभ पुर्वमें श्री राजेन्द्राचार्यजीसें आचार्य पद संभास की पाटण निवासी शाह तेजपालने तथा देहली निवासी महतीयाणा गोत्रीय विजय सेन श्रावकेने बहु ह्य खर्चकर नंदी महोत्सव किया

वीर सं० १८५० वि० सं० १३८० में शाह तेजपाल श्रावक संघमें पवित्र तीर्थेश्वर श्री सिद्धाचलजीकी जियारत करके खरतर बीसी में सत्ताइस अहुल प्रमाण श्री आदिनाथ प्रतिमाकी प्रतिष्ठा की जोमपत्ति नगरे भुवनपालका बनाया हुवा बहुतर देव कुलसें गण्डित वीर चैत्य, जस लमेर नगरे जश धवलका निर्माण कराया हुवा चिन्तामणि-पार्श्वनाथ चैत्य, जालोर नगरे श्री पार्श्व जिन चैत्यादि अनेक जिन विगोंकी प्रतिष्ठा करवाई

आगरा श्री मधके अत्यन्ताग्रहस श्री शत्रुंजय तीर्थराजकी यात्रा करके ज्ञापद कृष्ण ७ को पाटण नगरको पवित्र किया आप पूज्य प्रज्ञावशालीके वारहसों मुनिराज तथा एकसों पोंच साध्वियोंके संग्र-

दाय हुई. आप पूज्य गुरुवर्यने विनयप्रज्ञादि सुशिष्योंको उपाध्याय पदवी प्रदान की इन्हीं विनयप्रज्ञोपाध्यायने अपने निर्धन भ्राता "सोजा" के लिये सिद्धार्थ मन्त्र गणित गौतम रासकी रचनाकर उसका दरिद्र दूर किया. इस प्रकार इन पूज्य प्रज्ञावशाली कुशलसूरीश्वरने अपने विशाल ज्ञानद्वारा जिन शासनका अनुपम प्रज्ञावनाकर अनेक श्रावक बनाये.

आप अपने पवित्र जीवनको सार्थककर देरावर नगरमें अष्ट दिवसका अनशन कर वीर सं० १८५९ वि० सं० १३८९ फाल्गुन कृष्ण अमावस्याके दिन स्वर्गवास पधार गए अपने देव गति जानेके पश्चात् पूर्णिमा सोमवार को प्रथम दर्शन दिये अतः यह दिवस विशेष आराधनीय है आप प्रतापशाली तृतीय दादा साहब के नामसे मशहूर हुवे. ॥ ५० ॥

तत्पट्टे श्री जिनपद्मसूरि ५१ तत्पट्टे श्री जिनलब्धसूरि ५२ तत्पट्टे श्री जिनचन्द्रसूरि ५३ तत्पट्टे श्री जिनोदयसूरि हुवे. आपके वक्तमें वीर-सं० १८९२ वि० सं० १४२२ में बेगड़ खरतर शाखा प्रचलित हुई. यह चतुर्थ गण जेद हुवा ५४ तत्पट्टे श्री जिनराजसूरि ५५ तत्पट्टे श्री जिनज्जसूरि आपके वक्त श्री जिनवर्धनसूरिसे पिप्पलिया खरतर शाखा जारी हुई. यह पञ्चम गण जेद हुवा. ५६ तत्पट्टे श्री जिनज्जसूरि ५७ तत्पट्टे श्री जिनसमुद्रसूरि ५८ तत्पट्टे श्री जिनहंससूरि. आपके समय मरुस्थल देशमें आचार्य शान्तिसागरजीसे आचार्य खरतर शाखा प्रकट हुई. यह षष्ठम गण जेद हुवा. ५९ तत्पट्टे श्री जिनमाणिक्यसूरि हुवे ॥ ६० ॥

तत्पट्टे अकबर प्रतिबोधक श्री जिनचन्द्रसूरीश्वर हुवे. मरुस्थल देशके बड़लु ग्राममें रहिड़ गौत्रके अन्दर श्री वन्त पिताके कुलमें, सिरीया देवी माताने वीर सं० २०६५ वि० सं० १५९५ में जन्म दिया और वीर सं० २०७४ वि० सं० १६०४ में आपने दीक्षा ग्रहण की तथा वीर सं० २०८२ वि० सं० १६१२ ज्ञापद शुक्ल नौमीको जेशलमेरमें आचार्य पदवीसे विभूषित हुवे.

एक समयका प्रस्ताव है कि आप संवेग रङ्गमें रङ्गे हुवे जैन, शासनकी अनेक विध प्रजावना कर रहे थे कि मन्त्री कर्मचन्दने बादशाहके खूब आ-पकी बड़ी जारी तारीफ की इससे पतशाह दर्शनार्थ प्राप्त हुवा आप गुरुव रने लाहोर नगरमें पधारकर अकबर बादशाहको "अहिंसा परमोधर्म" का प्रजावशाली उपदेश दिया इस समय उसमें महदुपदेशका इतना असर पहुँचा कि महा पर्वाधिराज श्री पर्यूपण पर्वमें आठों ही दिन सकल देशमें कोई जी हिंसा न कर सके यह फरमान पत्र समर्पण किया तथा अति प्रसन्न होकर गुरुपहरारामको "युगप्रधान" पदसे भूषित किये

एक वख्तका जिक्र है कि अकबर बादशाहने अपने पूज्य समज यह आर्जु किया कि ठग, चामारादि-राज चिन्हे, स्वीकार कीजियेगा चूके, आप राजगुरु (हमारे गुरु) पदसे मुशोजित है—गुरुवर्यने प्रत्युत्तरमें फरमाया कि हम फकीर (साधु) हैं हमें ये चीजें उतनी ही अशोजनीक हैं कि जैसे चक्र-वर्तीके सुवर्ण कण्ठमें हड्डियोंकी माला, इस लिये बादशाह ! श्रमण जग, कलङ्ककारी जवोजव मुखहारी हम परिग्रहमयी वस्तुओंका संसर्ग तक करना अधमाचार समजते हैं—आपके इन साहसिक वचनोंको सुनकर बाद-शाहको खामोशी अखत्यार करना पड़ी

बादशाहने श्री संघ सहित आपके शिष्य श्री जिनसिंहसूरिकों अ-सन्ताग्रह द्वारा दाक्षिण्यताके मुजालम डाल सर्व राज चिन्होंसे अलङ्कृत कर दिये—आप श्रीको मेजमूर होकर यह प्रदक्षि अङ्गीकार करना पड़ी—इस वख्त सर्व वस्तुएं श्रावक वर्गके ही स्वाधीन रहती थीं आपश्रीका डममें लेश मात्र भी संसर्ग नहीं था—बस यहाँसे श्री पूज्यएन (सपरिग्रह श्रमणालिङ्ग) मरत हुवा—

तदनन्तर शनैः १ परिग्रहका संमर्ग बढ़ता गया कच्ची कप कच्ची जियादे किन्तु हीन दशाका साम्राज्य विशाल विस्तीर्ण रूपमें फैल गया—भाज हमें श्री पूज्य व यतियोंकी हालत (कतिपय महा जागोंको ओढकर) देख कर

शोक सागरमें बलता दूबना पड़ता है—हमारा यह कथन औचित्य पंक्तिसे बा-
हिर न होगा की ये लोग सदगृहस्थोंकी सभ्य श्रेणीसे अमंख्य योजन दूर हैं
मैंने उन धर्म प्रेमियोंसे यह निवेदन है कि हृदयकों शान्तकर पुनरपि अपना
उद्धार कीजियेगा ताके वीर शासनका अनुपम उद्योत हो और आपकी आ-
त्माओंका भी कल्याण हो—किम् विशेषम्.

आपने बादशाहके असन्ताग्रहसे श्री जिनसिंहसूरिकों अपने हाथसे
आचार्य पदवी प्रदान की कर्मचन्द्र मन्त्रीने इस वक्त याचकोंको बहुत सादान
दिया आप गुरुदेवने पंच नदीके पाँच पीरोंको तथा मानजङ्ग, यक्षखञ्ज और
क्षेत्रपालादि देवोंको साधन किये.

एक वक्त सलेमपतसाहने किसी एक खास कारणसे यह हुकुम दिया
कि मैंने समस्त देशोंमें सर्व दर्शनीयोंको स्वीधारक बना दो उस वक्त
बहुतसे यतिवर्य (सयमी मुनिराज) अपने शील रक्षार्थ इधर उधर जगने
लगे कइ एक समुद्र पार हो गए कई एक भूमि गृहमें उतर गए इत्यादि नाना
प्रकारके संकट सहन कर रहे थे कि इधर परमोपकारी आप पूज्येश्वर मृनते
ही इस अहवालके शीघ्र ही अगरेमें पधारे और अनेक चमत्कार दिखलाकर
उस अनाचरिणी आज्ञाको खारिज करवाई और सब ब्रह्मचारी जी-
वोंको सुखी किये.

इस प्रकार जैनशासनकी अथाह प्रजावनाकर वीर सं० २१४० वि० सं०
१६७० में स्वर्गवास पधारे इनके समयमें वीर सं० ३०९१ वि० सं० १६९१ में
जाव हर्ष उपाध्यायसे जाव हर्षीय खरतर शाखा प्रचलित हुई. यह
सप्तम गङ्ग जेद हुआ ॥ ६१ ॥

तत्पट्टे श्री जिनसिंहसूरि ६२ तत्पट्टे श्री जिनराजसूरि हुवे. आपके वक्तमें
वीर सं० २१५६ वि० सं० १६८६ में आचार्य श्री जिनसागरसूरिसे लघु
आचर्यीय खरतर शाखा विजिन्न हुई यह अष्टम गङ्ग जेद हुआ.

तथैव आपके काल प्राप्तके एक वर्ष बाद यानी बीर सं० २१७० वि० सं० १७०० में पश्चिम तरङ्गविषगणोंसे रङ्गविजय खरतर शाखा प्रवृत्त हुई. यह नौमा गच्छ जेद हुआ. इसही शाखामेंसे सारोपाध्यायसे, श्री सारीय खरतर शाखा जिन हुई. यह दशम गच्छ जेद हुआ. प्रथम तो वृद्ध खरतर मूल गच्छ और दश शाखाएं एवं सर्व ग्यारह जेद हुये. ॥ ६३ ॥

तत्पट्टे श्री जिनरत्नसूरि ६४ तत्पट्टे श्री जिनचन्द्रसूरि ६५ तत्पट्टे श्री जिनसौख्यसूरि ६६ तत्पट्टे श्री जिनजक्तिसूरिश्वर हुये. आप गुरुवर्य बड़े ही प्रभावशाली थे. अनेक विषय जैन शासनका उद्योत किया अखीर बीरात् २२७४ वि० सं० १००५ जेष्ठ शुक्ल ॥ को स्वर्गवास पधारे ॥ ६७ ॥

श्री जिनजक्तिसूरिश्वरके वृद्धि विचक्षण परम बैरागी पटधर शिष्य पूज्यपाद गणिवर्य श्रीमान् प्रीतिसागरजी महाराज साहब हुये. इस वृहत्खरतर गच्छमें आपमें परम बैराग्य रङ्गरक्षित संवेग कल्प वृद्ध पुनरपि अपनी दिव्य कान्ति विस्तृत करता हुआ सकल शुद्धाचार-रूपी लतासे विभूषित हुआ जिसका किञ्चित् निबद्ध पाठक प्रेमियोंके अ-निमुख करता है:—

आप महानुभावके एक लघु गुरु भ्राता श्री लक्ष्मीलाल थे. आप एक बड़े ही सज्जन पुरुष थे आचार्य पदमें आपका नाम श्री जिनलालसूरि हुआ.

श्री जिनजक्तिसूरिश्वरके काल प्राप्त पश्चात् यति महानुभावोंने यह सोचा कि इस वस्तुतः किया बहुत शीघ्र हो रही है इसलिये यदि गुरुवर्य श्रीमान् प्रीतिसागरजी महाराज साहबको तत्तत्खतनशीन (पट्ट स्थापन) करेंगे तो क्रियाका पालन छप्कर हो जायगा चूँके वे परम बैरागी त्यागी और उत्कृष्ट क्रियाको पालन करने वाले हैं अतः लघु भ्राता लक्ष्मीलालजीको

ही पट्टधर बनाना ठीक है यह सौच आचार्य पदवाके समय असंयम प्रेमी यतियोने उन बड़जागोंको एक कोटड़ीमें बंदकर कुलुफ (ताला) लगा दिया और लक्ष्मीलालजीको गद्दी पर स्थापन कर उनकी आणा (आज्ञा) प्रवृत्ता दी. यह विचित्र घटना देख श्रीमानने कोटड़ीमेंसे ही फरमाया कि यदि लक्ष्मीलालजीको गद्दीधर बनाया तो कोई हर्ज नहीं वह जी मेरा ही लघु भाई है इसादि कहनेसे उन्हें बाहिर निकाले. उनका इस प्रकार तेज प्रताप था कि एक बार समस्तको लज्जा महाराणीके अधीन होना पड़ा अस्तु.

वे पूज्येश्वर तो महान् दयालु थे आखिल संसारका हित करनेमें एक अ-नूठे कृपावतार थे आपने अपने लघु भ्राता श्री जिनलालसूरिजीसे सम्मति लेकर अनुमान इसही वीर सम्वत् २२७४ वि० सं० १८०४ में परम पवित्र तीर्थराज श्री सिद्धाचलजी पर सर्व त्यागकर पञ्च महाव्रत अवधारण किये और सकल समाज पर अनुपम उपकार किया.

आपने वैरागी, त्यागी पाम संवेगीके पहिचानके लिये व कितनेक अन्य कारणोंसे कथ्ये चूनेमें वस्त्र रङ्गना प्रारंभ किया. पवित्र खश्तर गहमें आप महानुभावसे कथ्याई वस्त्र प्रारंभ हुवे.

हमने उपरोक्त विवरण जिस प्रकार परंपरासे सुना है वैसाही उद्धृत किया है. कितनेक लोगोंका यह जी कथन है कि आप परम वैरागी योगी-श्वर श्री मान्प्रीतिसागरजी महाराज साहब निष्कारण ही केवल अपनी वैराग्यावस्थामे रमण करनेके हेतु संवेगी श्रमण नामसे विभूषित हुवे तथा कथ्याई वस्त्र आपके प्रशिष्य श्रीमान् कामाकल्याणजी महाराजसे प्रचलित हुवे हैं. हम नहीं कह सकते कि दोनोमेंसे तथ्य क्या है अतः " तत्त्वं केवली गम्यम् " इस न्यायका अङ्गीकार करना ही समुचित है.

आप अद्वैत मुनि पुद्गलजन समाज पर अवरणीय उपकारकर वीर सं० २३२१ वि० सं० १८५१ के माघ शुक्ला ८ को स्वर्गवास पधारे. वृहत्खरत्तर

गठमें पुनरपि परम सागविर्याको अवधारण करनेवाले आप प्रथम मुनि-
वर हुवे है तथा पद परंपरानुसार अरुमठवे पदधर हुवे ॥ १ ॥-॥ ६८ ॥

तत्पदे परं वैरागी वाचनाचार्य श्रीमान् अमृतधर्मजी महाराजसाहव हुवे
आप परम आत्मायी और जन्यजन प्रतिबोधमें एक अनुठे महात्मा थे ॥५॥
॥ ६९ ॥ तत्पदे अवैत विद्वान् महा महापाध्याय श्रीमान् कृमाक
व्यासजी महाराजसाहव हुवे उनका यत्किञ्चित्स्वरूप इस प्रकार है:-

- आप पूर्वमें जति* थे श्री जिनहर्षसूरिजीके समय अधिक गिथिलाचार
देस परं वैरागी सिरेगी सोधु हुवे आप श्री पेंतालीश आगमोके पूर्ण
पेक्षा थे तथा अनेक प्रकरणादिके सुविज्ञ थे तथैय संस्कृतके एक प्रखर
विद्वान् थे आप महानुभाव श्री जिनहर्षसूरिजीके पाठक (विद्यागुरु)
थे अतः आप महा महापाध्यायको पदवीसे विज्ञापित थे

महुतसे श्रावक श्राविका गिथिलाचारियोके अनुरागी हो रहे थे उन्हें जैन
तत्त्वज्ञान वताकर शुद्ध धर्ममें संलग्न किये पूज्यपाठ प्रीतिसागरजी मा.
सा. के बोये हुये बीजकों इस कदर सीचन किया कि जो हमारी लेखनीसे
गहिर है आपका अवर्णाय उर्पगार जैन समाजको सदैव स्मरणाय है ।

आपमें सर्वसे त्रिशिष्ट गुण यह ऊजकता या कि गुण ओहियोंको ठोस
कर सकल जैन समाज आपको पूज्य दृष्टिसे अवलोकन करता था इतनाही
नही किन्तु उनके परमार्थी मधुर वचनोंको शिरोधार्यकर अपनी आत्माका
कल्याण करता था

आपने अनेक संस्कृत व ज्ञापाके ग्रन्थ बनाकर जन समाज पर अ-

* वर्तमान कालमें क्रियासे विहीन होकर केवल वेशकों धारण करनेवालेको
“जति” कहते हैं

वर्णीय उपकार किया. आपश्रीके बनाये हुवे जितने ग्रन्थ हमें उपलब्ध हुवे हैं उनके नाम इस स्थल पर उद्धृतकर गुणानुरागियोंकों आपके महत्त्वका परिचय दिलाते हैं:—

१ वारह पर्व संस्कृत २ आत्म प्रबोध संस्कृत ३ गुर्वावली संस्कृत ४ साधु समाचारी जाषा ५ अनेक शास्त्रोंसे उद्धृतकर महोपयोगी मेरुसो बोल जाषा ६ वैराग्य व तत्त्वगर्जित अनेक स्तवन सजायादि जाषा ७ चतुर्विंशति तीर्थ-करोंके चैत्यवन्दन संस्कृत ८ गुरु महाराजोंके अष्टक संस्कृत ९ विधि विधान चर्चा जाषा १० श्री पार्श्वनाथ स्तुति संस्कृत ११ श्री जिन चतुर्विंशति स्तुति संस्कृत १२ प्रश्नोत्तरसार्द्ध शतक संस्कृत. इस प्रकार अनेक ग्रन्थोंकी रचनाकर अपनी अकथनीय उपकार बुद्धिका विशाल प्रभाव प्रदर्शित किया. धन्य है ! गुरुदयाल आपके अपूर्व ज्ञानकों पुनः २ धन्य है.

आप मात्र विद्या प्रेमीही नहीं थे किन्तु एक प्रबल प्रत्यक्ष चमत्कारीजी महात्मा थे—मेरे प्यारे पाठकों देखियें आप पूज्यका चमत्कारीय अलौकिक दृश्य:—

(१) एक वस्तुका जिक्र है (जब कि आप जेसलमेरमें विराजमान थे) कि योधपुर महाराजा अपनी चतुरङ्गी सेना सजकर जेसलमेरको आन घेरा नगराधीश (जेसलमेरपति) रावलजी क्रोधित होकर रणजूमि पर जा चढ़े—परस्पर घोर युद्ध हुवा—हाथियोंने विलन्द चीकारी शब्दोंसे युद्ध क्षेत्र गुञ्जा दिया घोंगें हिन हिनाने लगे रथोंका झंकारा व ऊरनाट करने लगा योद्धा लोग जूजावलसे एक दूसरे पर टूट पड़े. तलेवार, जाले और बाणियोंकी धना धनी चलने लगी बन्दूककी गोलियें धड़ाधड़ बूटने लगी तोपोंके गोलोंकी अविरल बरसा होने लगी सैकड़ों योद्धा पृथ्वीतल पर लोटपोट हो गये अर्थात् सर्व जङ्गीके मुखमें प्रवेश हो गए.

इस वस्थाकों जान महारावलजीकों बड़ा जारी पशोपेश हुवा. शीघ्र ही पूज्यपाद गुरुवर्यके चरणोंमें सादर वंदना नमस्कार कर सनम्र अपनी आफ-

तका किस्सा प्रार्थना रूपमें निर्मित किया और यह विनय करने लगे कि स्वामिन् ! इस समय लज्जा रखना आपके आवीन है यह सुन दयासागर श्रीमान्ने शीघ्रही एक नकारा मङ्गवानेकी सूचना की राजाने तुरन्त ही हाजिर किया मन्त्र, तन्त्र, जन्झादिवेत्ता महानुज्ञावने तत्कालही उस नकारे पर सर्वतो ज्ञद्र यन्त्र लिख दिया-गुरुमहाराजका पूर्ण विश्वासी राजा तत्कालही सेना सजकर अपने गनीमों पर दूट पड़ा नकारे पर धनाधन रंके पढ़ने लगे युद्ध क्षेत्र गुंझाररवमें गूँझ उठा-शत्रुओंकी सकल सेना जाग गई गुरुमहाराजके प्रज्ञाविक यन्त्रसें रावलजीकी विजय हुई-इसमें जिन शासनकी महती प्रज्ञावना हुई और जेशलमेरका राजा दृढ जैन धर्मी बन गया.

(१) एक दिन सेनाके मन्त्रमें रावलजीने ज्योतिषीको अपनी उमरका निर्णय करनेको कहा-उसने उत्तरमें यह निवेदन किया कि आपकी, केवल सातही वर्ष शेष आयुष्य है राजाने सविनय गुरुमहाराजसें निर्णय करने के वास्ते विनती की-पूछपाढ़ने कृपा पूर्वक ज्योतिष सहायद्वारा वृक्षके साहचर्यसें रावलजीकी सत्तरह वर्षकी उमर बताई सज्जनों ! महा पुरुषोंके वचन कभी खाली जाते हैं क्या ? ठीक सत्तरह वर्षमें राजा परलोकमें कूच कर गए इससें यह प्रत्यक्ष सिद्ध है कि आप ज्योतिष ज्ञानके भी एक पूर्ण वेत्ता थे

आपके स्वर्गवास पर्वारनेके पश्चात् जी आपने एक आश्चर्यजनक चमत्कार दिखलाया:—

जब आप बीकानेरमें अपनी आयुष्य पूर्ण कर स्वर्गवास पंजरे उसही दिन आपके एक परम ज्ञात साम्प्रतिराम व्यासको जेशलमेर और लौडवपुर पट्टन महा तीर्थराज (लौडवपुर जेशलमेरसें दश माइल है) बीचमे दर्शन दिये उनके आपुसमें कुछ वार्त्तालाप हुआ नदनन्तर यह व्यास एक दो दिन बाद जेशलमेरमें आया तो आपके स्वर्गवासकी खबर सुनी उसने अपने दर्शनके हाल श्री संघके मामने जाहिर किये उस आश्चर्यभूत अहेवालको सुन सकल संघको विवश होकर बलात् आनंदसागरमे निमग्न होना पड़ा

महानुजावों ! कहां तक निवेदन करूं मेरी यह सामर्थ्य नहीं कि आपके सर्व चतकारोंका उल्लेख कर सकूं आप पूज्यने अपने अनेक विशाल प्रज्ञाव-
शाली कार्य कियेहै धन्य हो गुरुदयाल ! आपका अनुठा जीवन प्रशं-
सनीय है—

आप कृपावतार श्री संघपर अविस्मरणीय उपकारकर वीर सं. १३४१
वि. सं. १८७१ के पौष क० १४ के शुभ दिवसकों इस जयसे प्रस्थानकर उच्च
गतिकों पधार गये. ॥ ३ ॥ ७० ॥

तत्पट्टे श्रीमान् धर्मानंदजी महाराज हुवे. आप एक पूर्ण विद्वान् थे. आ-
पने आत्म ज्ञानके साथही साथ श्री संघपर अनहद उपकार किया:॥४॥७१॥

तत्पट्टे श्रीमान् राजसागरजी महाराज हुवे. आप एक प्रचण्ड
विद्वान् थे. आपने अपने ज्ञान बलद्वारा मिथ्यात्व गूढ़रहित जीपम प-
न्थकों त्याग कराकर सैंकड़ों लोगोंको शुद्ध जैन धर्म अवधारण करवाया तथा
अनेक मांस मदिरादिमें आसक्त हुवे प्राणियोंको डर्व्यसनोसे मुक्त कराकर अ-
पने निर्मल चरणकमलोंका शरण दिया. आदि अनेक विध उपकारकर अपनी
आत्माका कल्याण किया. ॥ ५ ॥—॥ ७२ ॥

तत्पट्टे असाधारण विद्वान् श्रीमान् ऋद्धिसागरजी महाराजसाहब
हुवे. पाठकवरों ! ये बेही पूज्य हैं कि जिन्होंने प्रवित्र तीर्थराज श्री आवूकी
रक्षा की है अर्थात् वहांकी अनेक आशातनाओंको दूर करवाई है आपने
डर्वार उपसर्गोंके प्रबल आक्रमण होने पर जी अपने तीव्र मन्त्र ज्ञान द्वारा
विजयकर गवर्मेन्टसे ग्यारह नियम (Rules) प्रवृत्त कराए हैं. यह जैन
समाजसे ठिपा नहीं है अर्थात् पब्लिकमें रोशन है. आपने इन नियमोंको वि-
नयवश होकर अपने वृद्धगुरुजार् प्रीतिसागरजी मा. के नामसे जारी करवाएहैं.

यह तो निसंदेह है कि कृतघ्नोंके सिवाय समस्त जैन समाज

इस अवर्णीय, उपकारको, हरमीज नहीं भूल सकता, इतनाही नहीं, किन्तु गुणानुरागी लोग अब तक जी आपको पूज्य दृष्टिसे अवलोकन कर अपने मुक्त कण्ठसे प्रशंसा करते हैं ।

आप संस्कृतमें पूर्ण विद्वान् थे मन्त्र जन्त्र और यन्त्रादिमें में तो एक आनेव ही अनुजवि महात्मा थे आपने बहुतसे जिन भूवनोंकी ऐंसेष्ट उत्तम मुद्राओंमें प्रतिष्ठा करवाई है कि जिनकी दिनबदिन तरकी होती हुई दृष्टिगोचर हो रही है

आप श्री संघ पर अनुपम उपकारकर वीरात् ७४५५ वि० सं १९५५ में देवलोक पधार गये ॥ ६ ॥—॥ ७३ ॥*

तत्पद्वे श्री सरतम्भ गंगनमार्तण्ड विशाल ज्ञानी गंगाशिवर श्री य-
ज्जैनाचार्य अखिल स्मरणीय पूज्यपाद गुरुवर्य श्रीमान् सुखसागरजी
महागजसाहब हुये, आप पेटालीस आगमोंके पूर्ण वेत्ता थे तथैव अ-
नेकानेक प्रकरणोंके सुविज्ञ थे

* कई एक मम्य पुरुष गभीर आशयमें पथक होकर अवश्य इस प्रश्नमें जिज्ञासु
होंगे कि अन्य कर्त्ता एक स्थान पर तो श्रीमान् राजसागरजी ऋजुसागरजी या कौं
“कर्मवश शिथिल होना पड़ा” ऐसा लिखा है और इस सूत्र पर बड़ीही पूज्य
दृष्टिसे पेश आना है यह विपवाद स्वीकृत श्रेणीमें क्योंकर शुमार किया जायगा

महानुभावों! उत्तरमें जनाही निवेदन है कि मैं हर दो पूज्योंको सर्व पूज्य दृष्टिसे
हैं अवलोकन करता हूँ मैंने “कर्म व शिथिल होना पड़ा इत्यादि” केवल इस ही
आशयको प्रकट करनेके हेतु लिखा है कि पूज्यपाद गुरुवर्य श्रीमान् सुखसागरजी या
मा कौं पृथक् क्योंकर होना पड़ा तथा आपके नाममें भिर्रोमा क्योंकर प्रभिन्न
हुया—आत्र तीर्थगजादिके कारण यदि कियामे यत्किा ता तदर्थ होना भी पड़ा ही तदपि
अनुचित श्रेणीमें अवश्य ही विमुक्त हैं पाठक प्रेक्षकोंको यदि इनके पर भी मनोप न होगा
तो द्वितीयावृत्तिमें परिश्रम करनेमें प्रयत्नशील होनेका विचार रक्खगा.

आपके निज शासनमें ५ मुनिवर्य तथा १४ साध्वियोंजी हुई.

आपके समुदायमें आज दिन पर्यन्त सर्व ३२ मुनिराज हुवे जिस्मेंसे १६ मुनिवर्य काल प्राप्त हुवे. ३ वेप ठोमकर चन्न गये वा यति ठां गये १३ इस वख्त मौजुद् हैं. कौन ५ महानुजाव किस ५ के सुशिष्य हैं यह वंश वृक्षसे जानना चाहिये. तदपि विशेष खुलासा इस स्थल पर उक्त कर यन्त्र रूपेण पाठक प्रेमियोंके अजिमुख करता हूँ:— देखो मुनि समुदाय यन्त्र.

तथैव आजतक आपके संघारमे १७६ साध्वियोंजी हुई. जिस्मेंसे ३१ काल प्राप्त हुई १४५ इस वख्त मौजुद् हैं. कौन ५ किस ५ की शिष्याएं हैं वगेरा विवरण अन्यत्र स्थानसे जानना.

आप वीरात् १३९१ वि. सं. १९११ से ४१ तक अर्थात् १० वर्ष अटल धर्म राज्य कर माघ कृष्ण ४ वीर सं. १४११ वि. सं. १९४१ शनिश्चर वार व मुजिव ताराख १३ जान्यूआरी सन् १८८६ के प्रातःकालमें परजव पधार गये. धन्य हो ! मुनि पुद्गव आप कृत पुण्य हो !! आपका पवित्र नाम चिरकाल जयवन्ता वर्त्तो. ॥ ७ ॥—॥ ७४ ॥

तत्पट्टे विद्वर्यगणनायक श्रीमान् भगवान् सागरजी महाराज साद्व हुवे—आप योधपुर राज्यान्तरगत रोहिणा ग्रामके उत्तम *जाट जसाजीके सुपुत्र थे. आप जगवान् दासके नामसे शोचित थे.

आप श्री वीरात् १३९५ वि. सं. १९१५ में योधपुर राज्यान्तर गत फल वर्धिकामें पधारे इस अवसरमें पूज्यपाद गणाधेश्वर श्रीमान् सुखसागरजी मा. सा. के प्रज्ञावशालो सङ्पदेशसे वैराग्य रङ्गरङ्गित होकर इसही सम्बत्में दीक्षा अङ्गीकार की. आप श्री पूज्यपाद चरित्र नायकके

* ये वेही उत्तम जाट हैं कि जो मांस मदिरादिसें सदैव तटस्थ रहते हैं एवं जिनके हाथका ओसवाल कच्चा जोजन खाते हैं.

प्रथम शिष्य हुवे नाम जगवान्सागरजी रक्ता गया. आप शास्त्रोंके के ही सुविद्ध थे—तथा परोपकारमें परिपूर्ण प्रयत्नशील थे

आप वीरात् १४११ वि स १९४१ मे गणनायक पदवीसें सुशोजित हुवे आपके शासनमें ७ मुनिराज तथा ४१ साध्वियोंजी हुई आपने अपने शासनमें समुदायका प्रशंसनीय निर्वाह किया आप १४ वर्ष ४ माह १० दिन अटल धर्म राज्य कर वीर सं १४७७ वि. सं १९५७ के जेष्ठ कृष्ण १४ को परलोक पधार गये. ॥ ७ ॥—॥ ७५ ॥

इसके म-यमें गणनायक रूप महा तपस्वी श्रीमान् ठगनसागरजी महाराजसाहब हुवे

आप-श्रीमान् मरुस्थलके मुमसिब् शहर योवपुर राज्यान्तर गत फलोदीमें, औश वंश सुशोजित गोलेठा (राठोर) गौत्रमें श्रेष्ठीवर्य सागरमलजीके कुलमें, चंदनवाई की रत्न कुहीमें वीरात् १३६६ वि सं १७९६ में समुत्पन्न हुवे आप गृहस्थाश्रममें ठोगमलजीके नामसें सुशोजित थे आपकी शादी अखेंचन्डजी जावरुकी सुपुत्री चुन्नीबाईके साथ हुई थी आपके तीन पुत्र तथा एक पुत्री समाप्त हुई

आपने स्वयं वैराग्यवश होकर तथा रत्नमुनिजी आदि मुनिवरोंके व्याख्यानादिसें एवं श्रीमति पुण्यश्रीजीके श्लाघनीय प्रयत्नसें वैशाख शु १० गुरुवार वीर सं १४१७ वि सं १९४१ में श्रीमान् जगवान्सागरजी मा सा. के हस्तरूपसें फलोदी नगरमें दोनों दम्पतिने दीक्षा अर्द्धीकारकर अपने मानवजनोंको कृतार्थ किये आपको पूज्य स्थान सागरजी मा सा के सुशिष्य बनाये नाम ठगनसागरजी रक्ता गया आपकी बृह दीक्षा लोहावट ग्राममें इसही सम्बतके जेष्ठ शु ७ को हुई

श्रीमान् जगवान्सागरजी मा. सा के काल प्राप्त पश्चात् सगस्त समुदा

यने तथा आगेदान गृहस्थोंने मिलकर समुदायका निर्वाह आप महानुज्ञा-
वकों समर्पण किया. आप श्रीनै वीर सं. १४३७ वि. सं. १९७७ जे. शु. १४
से समुदायका निर्वाह करना प्रारंज किया.

आपने इस पवित्र समुदायमें सर्वसे अधिकांश संस्कृतका विशिष्ट
प्रचार किया. तथा शास्त्र पठन पाठनादि अनेक सुकार्योंमें हौसियार किये
यह आपका अवेणीय उपकार सदैव स्मरणीय है.

आप पैतालीश आगमोंके पूर्ण वेत्ता थे तथा आगमोंके मथन करनेमें
एक अनुष्ठे ही प्रयत्नशील पुरुष थे आपकी तपस्या पर इस कदर प्रबल
इत्थायी कि जो हमारी लेखनीसे बाहिर है तदपि यत्किञ्चित् उल्लेख करते हैं.

वीर सं. १४११ वि. सं. १९४१ में अर्थात् प्रथम चातुर्मासके प्रारंजमें ही
योधपुर राज्यान्तरगत नागौर नगरमें ५ उपवास किये इसका पारणा करके
साथही साथ १५ उपवास किये. तथा कार्तिकमें मासक्रमण कर अपने कमोंकी
निर्जशाकी-तथैव आपने अपने जीवनमें कई एक मासक्रमण, पक्षक्रमण, अष्टा-
ईयें, पाँच, चार और तेले किये. और उपवास तो बेगुजार किये होंगे.

आपने वीर सं. १४१३ वि० सं० १९४३ में पवित्र तीर्थेश्वर श्री सिद्धा-
चलजीकी यात्रा कर अपने मानवजवकों कृतार्थ किया.

आपका प्रथम चातुर्मास अर्थात् वीर सं. १४११ वि० सं० १९४१ का ना-
गौर हुआ. ४१ का शिरोही ४४ का बीकानेर ४५ फलोदी ४६ का बीकानेर
४७ का पाली ४८ का नागौर ४९ का लोहावट ५० का कलोदी ५१ का लो-
हावट ५२-५३ का फलोदी ५४ का लोहावट ५५ फलोदी ५६ का लोहावट
५७ से ६५ तक कलोदी* ६६ का अन्तिम चातुर्मास लोहावट हुआ.

आपके निश्राईमें मुनिराज तथा ६८ साध्वियोंजी दीक्षित हुई आपने समु-

* वृद्धावस्थाके हेतु तथा शारीरिक व्यथाके कारण एकदम इतने चातुर्मास एक
न पर हुवे है.

टाँकेकी प्रशस्तीय निर्वाह किया तथा अनेक जिन्यात्माओं पर अनुपम उपकार किया

आप ९ वर्ष ३ माह ७ दिन धर्म राज्य कर जगत्प्रशस्तनीय पुष्ट उप-
वासोंका संश्रारा अवधारण कर लोहावट नगरमें द्वितीय श्रावण शुक्र ६
वीर सं ३४२६ वि० सं १९६६ में स्वर्गवास पधारे

आपने ५२ उपवासोंमेंसे ४० तो त्रिविहार किये शेष १२ चौविहार किये
६ चालीस उपवासों तक सैकड़ों लोगोकी सन्नामें सिंहनाद रूप धर्म दे-
शना दी उस वस्तुका महोत्सव दृश्य एक दर्शनीय ही था गुरुदयाल !
आप हमेशा जयवन्ता वृत्तों.

श्रीमान् जगवान्सागरजी मा. सा. के विद्यमान पट्टधर विज्ञाते
स्मरणीय शान्त मूर्ति पूज्यपाद गणाधिपति गुरुवर्ष श्रीमान् त्रैलोक्यसा-
गरजी महाराज साहब अपना अटल धर्म राज्य कर रहे हैं

आप श्रीमान् जेतलभेर राजवान्तरगत गिरासर ग्राममें बृहद् औसवंश
पारख गौत्र (राठोड़) विभूषित जीतमजजीके कुलमें कुणना देवाके रत्न
सूक्तिसँ शुभ्र मिती श्रावण शुक्रा १॥ वीर सं २३९८ वि० सं १९१० में
अवतरित हुवे आपका नाम चुन्नीलालजी था.

आपके गृहस्थाश्रमकी सहोदर बृहन्नगिनी पन्नीवाई (पुण्यश्रीजी)
के सुहृद् प्रपत्निसँ आवाल ब्रह्मचारी महत्पदसँ विभूषित होते हुवे परम वैरा-
ग्य रत्नरहित होकर गुजरात देशान्तर गत पाटणमें वीर सं ३४३२ वि०
सं १९५२ प्रथम जेष्ठ शु० ७ को जवोच्चरक निर्मल चारित्र अवधारण
कर अपने मानवजबको कृतार्थ किया आप श्रीमान् गणनायक श्री ज-
गवान्सागरजी मा. सा. के सुशिष्य हुवे नाम त्रैलोक्यसागरजी

रखवा गया. आपकी वृहद्दीक्षा माघ शु. १३ वीरान् २४२५ वि० सं० १९५५ में फलोदी नगरमें हुई.

श्रीमान् ठगनसागरजी मा. सा. ने अपने काल प्राप्त समय पूज्य पाद गुरुवर्यको द्वितीय थावण शुक्ला ६ वीर सं. २४३६ वि. सं. १९६६ को समुदायका स्वामी पद प्रदान किया अर्थात् इस शुभदिनसे आप श्रीमान् गणाधिपतिके सुपदसे विभूषित हुवे उसही दिनसे आपने अपना धर्म साम्राज्य करना प्रारम्भ किया.

आपके शान्त साम्राज्य में, सत्ताका खुलना, संघका निकलना, नवीन व पुरातन ग्रन्थोंका प्रकाशित होना इत्यादि अनेक कार्य प्रचलित हुवे जिनका संक्षिप्त विवरण इस स्थल पर उल्लेख कर पाठक मेमियोंके अग्निमुख करता हूँ:—

जैन समाजमें एक अग्रेसरी श्रेष्ठीवर्य रायबहादुर केसरीसिंहजी बापना (पंवार) के अत्यन्ताग्रहसे वीर सं. २४३९ वि. सं. १९६९ में आपने पाँच मुनि रत्नों सहित कोटा नगरमें चातुर्मास कर जैन शासनका अनुपम उद्योत किया आपकी पवित्र सेवामें पुण्यश्रीजी आदि १६ साध्वियोंजीने ज्ञी चातुर्मास किया था. इसही चातुर्मासमें अपने शिष्य समुदायके प्रौढ प्रयत्नसे “श्री ज्ञानसुधारस धर्म सत्ता” खोली गई जिसके जरिये समुदायकी बहुतसी त्रुटिमें दूर कर उत्तम आचारोंका आन्दोलन किया अब तक ज्ञी ये परोपकारिणी सत्ता बहुत कुछ काम कर रही है. आशा है की गुरुदेवकी पृष्ठपासे जविष्यकालमें इस सत्तामें कइ एक अनुपम गुणोंकी संप्राप्ति होगी.

वीर सं. २४३९ वि० सं० १९६९ वैशाख कृष्णमें आपके व आपकी शिष्य शिष्याओंके सदुपदेशसे सुप्रसिद्ध मालव देशमें पद्माशाली तीर्थरा-

जकी जियारत (यात्रा) करनेके लिये ढग, गढ़धार और सीतामढ़के तीन संघ निकलवाए गए—तथैव आपके सदुपदेश द्वारा विमलश्रीजीके सुप्रसन्नसे वीर सं० १४४० वि० सं० १९७० में तीर्थराज श्री जेशलमे-रका संघ निकलवाया गया

इसके अतिरिक्त चतुर्विध संघके साथ बड़ेही समारोहमें अनेक यात्राएं की यथाः—पालर देशमें सेमलिया, बिबडोद, करोंदी बगेरा कोटाके समीप दादावाड़ी मरु स्थलमें, पालीके पास जाकगी—खीचन ये सर्व यात्राएं आपके साथ हुई आपके आह्वानुसार हर्षानंदसागरादिके वीर सं० १४४० वि० सं० १९७० के चातुर्मासमें बीकानेरके समीप नालदादाजी, जीनासर, शिववाड़ी, उडामर, गढ़ासर बगेराकी यात्रा बड़ेही धूमधामसे हुई अखीर सुजानगरकी प्रतिष्ठा वनवमो जैन श्वेताम्बर कॉनफरन्समें शरीक हुए पश्चात् फलोदी पार्श्वनाथकी यात्रा की तथैव सेमानंदसागरादिके वीर सं० १४४३ वि० सं० १९७० के चातुर्मासमें जयपुरके समीप माँगानेर, आपेर और स्टेशन पर मन्दिरकी यात्रा की महोत्सवके साथ सांजाग्य समाप्त हुआ कहाँ तक लिया जाय यात्राओंका ऊलाऊल ठाठपाट व धूम धाम अपार हैं.

आपके शासनमें अब तक इतने ग्रन्थ प्रकाशित हुवे न हो रहे हैं:—
॥ नवीन ग्रन्थ ॥

नंवर.	नाम ग्रन्थोंके.	रचयिता.	प्रति.
१	सप्त व्यसन निषेध प्रथमा वृत्ति	वीर पुत्र आनंदसागर.	१०००
२	मोह जीत चरित्र संस्कृत.	मुनिराज श्री क्षेमसागरजी.	५००
३	*सप्त व्यसन निषेध द्वितीयवृत्ति.	वीर पुत्र आनंदसागर.	१५००
४	गुण स्थान दर्पण.	श्रावकवर्य शेरसिंहजी जैन.	१०००
५	*सप्त व्यसन निषेध तृतीयावृत्ति.	वीर पुत्र आनंदसागर.	१०८०
६	सुख चरित्र.	वीर पुत्र आनंदसागर.	१०००

॥ प्राचीन ग्रन्थ ॥

१	वारह पर्व संस्कृत.	महामहोपाध्याय-श्री क्षमाकल्याणजी मा.सा	१०००
२	जयति हुआण स्तोत्र त्रिपाठ.	नवाङ्गीवृत्तिकारक-श्री अजयदेवसूरीश्वरादि.	१०००
३	जिन स्तोत्र ज्ञानमार्ग प्राकृत-संस्कृत.	अनेकाचार्य.	१०००

* सप्त व्यसन निषेधकी तीनों आवृत्तियोंको पृथक् २ नम्बरसे विभूषित की इसका यह प्रयोजन है कि एकसे दूसरीमें इसही प्रकार तीसरीमें व्यसनोंको विस्तृत रूपेण प्रदर्शित किये हैं इत्यादि.

इसके शिवाय "कर्म विचार" नामक ग्रन्थ जो कि, कैमानंदसागरने जगवति सूत्रमें उद्धृत किया है उसकी पाचसौ काँपी तथैव पञ्च प्रतिक्रमण सूत्रकी एक हजार और देवशीराई प्रतिक्रमण सूत्रकी दो हजार काँपीये उप रही है ये शीघ्रही प्रकाशित होने वाली है

1. जिमला नव हजार ग्रन्थ तो प्रकाशित हो चुके हैं तथा सादेतीन हजार उपनेवाले हैं एवं सर्व ग्रन्थ साडेबार हजार आपके पवित्र शासनमें आजतक प्रकट हुये ये सकल ग्रन्थ वगैरे न्योठरावलही जेट दिये गये व दिये जाते हैं व दिये जायेंगे यह आपकी उदार वृत्तिका एक विशाल परिचय है

आप बहुतमें सूत्रोंके तथा अनेक प्रकरणादिके सुवेत्ता हैं आपको शास्त्रोंकी सेकड़ों वाते कण्ठस्थ स्मरण है आप पठन पठनादिके पूर्ण प्रेमी है या यों कहियेगा कि आप एक अछैत रसिक है

आपके शासनमें साधु साध्वी बडेही, आनदसे निवास करते हैं, और शान्तता पूर्वक मंत्रम पावन करते हुवे अपनी आत्माका कल्याण कर रहें तथा जगत्प्राणियोंका अनुग्रह उपकार करते हुवे उन्हें कृतकृत्य कर रहे है आप श्रीगान्ध्या, हमारे समुदायके सकल कृतज्ञ महानुभाव सतशः धन्यवाद देने हुवे अपने-देवगुरुसे अहर्निश यह प्रार्थना करते है कि सुशिक्षारूपी अमी रसका पान करानेवाले एमे शान्तपूति पूज्यपादगुरुवर्य विद्यमान जवमें हमारे पर अटल शासन वर्तति रहे इतनाही नहीं किन्तु जनोन्नयमें हमारे शरण-भूत होवो सब है ? अछैत सुखदाताकी सवही याँछा करते हैं

आप महोदयका वीर स० २४२० वि० स० १९५२ अर्थात् प्रथम चातुर्मास व द्वितीय चातुर्मास फलोदीमें हुवा ५४ का लोहावट ७५ का फलोदी ५६ लोहावट ५७ में लेकर ६२ तक फलोदी विराजे* ६४ का योधपुर ६५

* आपका इनने वर्ष एक स्थान पर विरानेका कारण यह था कि आपके पूज्यपाद गुरु जय नया महा तपस्वी श्रीमान् जगनमागरजी मा सा की वृद्धावस्था थी तथा आप भी शरीरमें कुछ लाचार थे

का नागौर ६६ का लोहावट ६७ का फलोदी और ६८ का मालवदेश रत्न-पुरी (रतलाम) में हुवा।

आप श्रीने परमदयाला कर इसही सम्बत्के वैशाख शुक्ल ११ बुधवार वीरात् १४३७ विक्रम सं. १९६८ तारीख १० मे सन् १९११ को लघु दीक्षा तथा आषाढ शु० २ बुधवार तारीख २८ जून सन् १९११ को बृहदीक्षा देकर मुझ अधमकों अपने सुखदाता चरणकमलोंका शरण देकर पावन किया अर्थात् इस शुभ दिवशकों ज्ञवोद्धारक दीक्षा प्रदान की हे नाथ ! आपका यह अवर्णीय उपकार सदैव स्मरणीय है। निरन्तर आपकी कृपाशुभा शरण हो। यही हार्दिक वांछा है—६९ का कोटा ७०—७१ फलोदी ७२ का चातुर्मास पाली हुवा।

ये आप परमोपकारीने कोटेके चातुर्मास पश्चात् लोहावट नगरमें संवत् १९७० के वैशाख मासमें स्वर्गस्थ पूज्यपाद महा तपस्वी श्री उगनसागरजी माण सा० के चरण संस्थापन करवाए।

इमही वरुत्त आपने श्री उगनसागर जैन पाठशाला खुलवानेका अनुपम उपदेश किया—फल बद्धिकाके दोनो चातुर्मास करनेके पश्चात् जब आप वापिस लोहावट पधारे उस समय पाठशालाका कार्य प्रचलित करवाया। आप पूज्य गुरुवर्यका यह परमोपकार चिर स्मरणीय है।

आप कृपावतारका गत चातुर्मास समय अपने ६ मुनि रत्नोंके मरु स्थलके सुप्रसिद्ध शहर विक्रमपुर (विकानेर) में हुवा।

आप यहोदयके पवित्र शासनमें आजतक ४ मुनिराज ५३ साध्वियोंजी सुदीक्षित हुईं।

अखिरमें यही प्रार्थना करता हूँ कि आपका धर्म साम्राज्य चिरकाल अटल प्रवर्तता रहो हे स्वाधिन् ! आपका पवित्र नाम सदैव जयवन्ता वर्त्तो।
॥ ए ॥ ७६ ॥

पाठकवरों ! अब मैं आपके पवित्र शासनमें रहे हुवे कतिपय अग्रेसरी मुनिराजों व साध्वियोंकी परिचय दिलाता हूँ.

श्रीमान् हरिसागरजी महाराज तथा हेमसागरजी महाराज एक अग्रेसरी मुनिराज है.

आप हर दो मुनिराज प्राकृत, संस्कृत, देवनागरी और गुजराती वगैरा जापायों (Languages) से परिचित हैं अर्थात् कितनेक सूत्र आपके अबलोकन किये हुवे हैं तथैव व्याकरणों, काव्य, कोष वगैराके वेत्ता हैं आपमें लेख लिखनेकी वा ग्रन्थ रचनेकी जी सामर्थ्य है. यद्यपि आप 'विद्यार्थी-जीवन (student life)' में निवास कर रहे हैं तदपि यथा समय शासनकी जी सेवा वजाते रहते हैं आप श्रीमानोंका मुग़लपरबड़ाही धर्म प्रेम है यहाँ तक कि मैं आपसे दीक्षा पर्यायमें लघु जी हूँ तदपि आपमुझे हमझोलीका ही समझ उत्तम व्यवहार रखते हैं यह आपके वरुपनका एक विशाल परिचय है. मैं यही इच्छता हूँ की आप लोग हमेसां मुझ पर महरवान रहें

वर्तमानमें सबसे बड़ी साध्वीजी लक्ष्मीश्रीजी हैं यह महानुज्ञावा बड़ी ही शान्तमूर्ति हैं तथा पठन पाठनादि विषयोंमें पूर्ण निपुण हैं एवं अपनी आर्या-वर्गकों हृदयसे लगाकर बड़े ही प्रेम पूर्वक पालन करती हैं इनकी प्रशिष्या-पुण्यश्रीजी एक विशाल पुण्यात्मा हैं तथा शिष्या सिं-हश्रीजी एक प्रबल धर्मात्मा हुई है.*

* सिंहश्रीजी यद्यपि इस वस्तु विद्यमान नहीं हैं तदपि पुण्यश्रीजी व इनका युगल सम्बन्ध होनेसे इनका भी उल्लेख कर दिया गया है—

प्रशिष्याका नाम प्रथम लिखकर पश्चात् शिष्याका लिखता गया इसमें हमारे कतिपय पाठकवरोंको अवश्य यह प्रश्नमय उमङ्ग लहरे उठलेगी कि ग्रन्थकर्त्ताने किस आश

पुण्यश्रीजी अनेक सूत्र सिद्धान्तोंको अवलोकन की हुई हैं सैंकड़ों बोल-चाल कण्ठस्थ हैं पठन पाठनमें इनकी पूर्ण दिलचस्पी है. तपस्याकी एक अद्वैत प्रेमणी है आप महानुच्चावाने अपनी आत्माका कल्याण करते हुवे ज्ञव्य जनो पर अनुपम उपकार किया. यहांतक कि जनसमुदाय अपने मुक्त कण्ठसे इन श्रीकी प्रशंसा करता है.

सिंहश्रीजी कइएक सूत्र सिद्धान्तोंकी वेत्ता थीं बहुतसैं बोलचाल दिव्य याददास्त थे पठन पाठनकी दिली प्रेमणी थी अपनी गुरुवर्याकी सेवामें अनु-पम दिलचस्वीको अवधारण करनेवाली थीं आप महानुच्चावाने प्रशंसनीय उपकारके साथही साथ अपनी आत्माका कल्याण किया.

पाठकवरों ! आप हर दो साध्वियोंजी पर पूज्यपाद चरित्र नायका असीम उपकार है इसही लिये ये ये दोनो सुयोग्यताको संभास हुई हैं.

इन हर दो साध्वियोंजीके निश्चार्इमें रही हुई आगेवान् साध्वियोंजी चारों और जैन शासनका उद्योत करती हुई अपने परमोपकारी गुरु महाराजका पवित्र नाम दे दिव्य कर रही हैं. इनमें कइएक सूत्र सिद्धान्त, प्रकरणादि व्याकरण, काव्य, कोष न्यायादि व अनेक बोलचालोंकी वेत्ताएं हैं. कइएक बाल शिष्याएं पृथक् २ विषयोंका अभ्यास कर रही है आशा है कि वे शीघ्र ही उच्च स्थितिकों पहुँचेंगी.

वाचक वृन्दों ! जिस क़दर मुऊसे बना सका परमोपकारी गुरुमहाराजकी पवित्र सेवा बजाकर अपने मानवजन्मको सफल किया. आप पाठक प्रेमियोंको यह जलीं व प्रकार सुविज्ञात होगा कि गुरु महाराजकी सेवा एक ऐसी उत्तम पदार्थ है कि जिससे ज्ञान, ध्यान, तप, यसे लिखा है प्यारे सुमुखों ! इसमें इतनी ही समाधानी संतोषप्रद होगी कि श्रमण मार्गमें चरित्र पर्यायसे बड़ा छोटा समझा जाता है नतु सन्तान परंपरासे अतः प्रशिष्याका नाम प्रथम उल्लेख किया है चूँके वे दीक्षा पर्यायमें बड़ी है.—

जप यांगादि सकल सिद्धिमें संप्राप्त होती है इतनाही नहीं किन्तु पूज्यपाद गुरुवर्यके गुण गानेमें अनादिसँजखड़े दुबे पापकर्म तत्काल विध्वंस हो जाते हैं जिसमें दिव्य आस्वत् सुखमें रमण करते हैं अर्थात् अनत सुखोंमें झिलानेवाले मोक्षपदको संप्राप्त करते हैं—देखिये किसी अनुजबि महात्माका कथन है:—

(सवैया)

ज्ञान घटे जड़-मूढ़कि सङ्गत,

ध्यान घटे विन धीरज आए ।

मान घटे जबही कठु माझ हूं

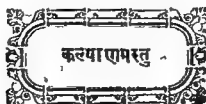
चाह घटे नितके घर जाए ॥

प्रीति घटे जुं कठोर बे बोल हूं,

रीति घटे मुँह नीच लगाए ।

उद्यमसे दारिड घटे सब

पाप कटे गुरुके गुण गाए ॥१॥



प्यारे पाठकवरों ! अब मैं ग्रन्थकी पूर्णाहुतीमें कतिपय दोहरोंकी रचना कर ग्रन्थको सम्पूर्ण करता हूँ

(दोहरे)

घट घट अन्तरमें वशे । सुखसागर गुरुराय ॥
 चरणकमल प्रतिदिन नमु । झुक झुक शीश नमाय ॥ १ ॥
 तस्य शिष्य गुण शोभता । जगवान् गुरु सुखकार ॥
 तस पटधर जग दीपता । त्रैलोक्य गुरु आधार ॥ २ ॥
 इनके अतुल पसायसैं । ग्रन्थ रचा सुविचार ॥
 सुख चरित्र सुख देत है । मोक्ष मार्ग दातार ॥ ३ ॥
 गुरु सेवामे लीन हो । जो कुछ किया विचार ॥
 सफल हुई मन कामना । जगमें जयजयकार ॥ ४ ॥
 चौबीस्से बाया लिशे । चैत्र पूर्णिमा सार ॥
 पूर्ण किया ये ग्रन्थ हम । वीकानेर मजार ॥ ५ ॥
 सगुरु गुण गाया हमें । सकल जीव हितकार ॥
 दासानंद इम वीनवे । कृपा करी मुऊ तार ॥ ६ ॥
 झूल झुक यदि होय तो । शुध कर लीजो दह ॥
 हांस न करजो चतुर जन स्वल्प बुद्धि हम लह ॥ ७ ॥

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

सर्व मङ्गल माङ्गल्यं । सर्व कल्याण कारणम् ॥
 प्रधानं सर्व धर्माणां । जैनं जयति शासनम् ॥ १ ॥



ANANDSAGAR.

Bikaner—(Rajputana.)

(३११)

॥ ॐ ॥

॥ श्री बीतरागेभ्यो नमः ॥

॥ श्रीमत् सुखसागर सद्गुरुभ्यो नमः ॥

(मुनिराज श्री माणिक्य मुनिजी कृत)

॥ गुरुगुणाष्टकम् ॥

संजातः सरसापुरे सुवर्देन कान्तारतोनोरतो
पुण्यौघः पितरं वरं मनसुखं लब्ध्वा सुसेवा कृतः ॥

यः श्राद्धौघं विजृम्भणं शुभमतिर्गोत्रं वरंदूगुणं
संप्राप्तः सुखनागरं सुजननी जेतो मनोजोष्ठवः ॥१॥

लब्ध्वान्यायधनं पुराजयपुरे संतोषवृत्तिं धृतो
बुध्वा वैवराजसागरमुनेर्बोधात् तदा दीक्षितः ॥

पूज्यो यस्य वरद्विंसागर गुरुः संसारपङ्कोद्धृतो
धन्यास्ते गुरवः सदैवमुनयः किन्तु स्पृहोन्नेदकाः ॥२॥

प्राप्येत्पुण्यनिर्दानं सुबोधनिख्यं तीर्थं शार्ङ्गं वा क्वयामृतम्
लब्ध्वा तीर्थपतेर्वचो गुरुमुखात्संसारं दुःखौघहृद् ॥

वैराग्यं निजचित्तसौख्यजनकं मन्येन्न क्रियः कृतिः
ब्रान्त्वाऽऽन्यविसारं दुःखनिकरं संसारचक्रजनः ॥३॥

किं श्रेयं जचिनां सदैवहितदं बुद्ध्या जनो मृश्यति
सम्पत्त्वं सुगतिप्रदं कथन्नवृणुते ज्ञानं द्वितीयं तथा ॥

येनात्रैव हिताहितं शुचिमतिर्विज्ञायहेयाश्रवम्
त्यक्त्वासंवरशुद्ध रूपममलं बुद्धोऽश्रयत्तज्जुरुः ॥ ४ ॥

साधुश्रेष्ठ गुणौघधारक मुनिर्मोक्षार्थ दीक्षारतो
ज्जव्यानांहितचिन्तकः शिवरुचिर्दृष्ट्याच पीयूषदः ॥

जित्वाकर्म समूहमूलजनकं कामंनृणांभ्रान्तिदम्
लीनोवीरविज्ज्ञौ गुरौचशमद्वेध्येयोनकिंप्राणिभिः ॥५॥

तीर्थोद्योतकरो गुणाविनिलयो शुद्धात्मरूपंश्रितः
पंचाचारतः सदैवविरतौ चित्तंचचक्रे स्थिरम् ॥

पश्चात्कर्मविनाशकं शुचितपस्तद्व्याऽज्जवन्निर्मलः
स्मर्तव्यः श्रमणैःसुखान्तिरुचिज्ज्ञिः श्राद्धैस्तथाकिन्नसः॥६॥

धृत्वायत्सुगुरो सुपादममलं दुःखार्णवेतारकम् ।
सौख्यार्थं लज्जतेस्मयत्सशमदः पूज्योऽज्जवत्सर्वदा ॥

पश्चाद्वै विनयीतथैव शिवदंसाधुं निरीदंश्रितः
यस्मात्शान्त सुदान्तशान्तिजनकः साधुजनैःसंस्तुतः ॥७॥

जंतूनांहितकारणान्मुनिगुणान् श्रुत्वामयाग्रथिता
ज्जव्याना प्रमुदेजनाः कथयतस्युः किंनतेशान्तिदाः ॥

यद्वायेसुखसागरान् मुनिवरान्मुक्त्यर्थलाज्जाश्रितः
स्तेपांवैखलुमोदकं सुरचितं साधूष्टकं सौख्यदम् ॥८॥

मोक्षायमान्योऽज्जविज्ज्ञिर्गुरुर्वै । हत्वाचकर्मारिचि मूंचनूनम् ॥
नत्वाजिनेशं सुगुरुंचहर्षं । शैवायमाणिक्य मुनिर्वज्राणे ॥ ९ ॥

॥ ॐ ॥

(श्रीमान् हेमसागरजी महाराजकृतः)

॥ सद्गुरुगुणाष्टकम् ॥

नमामिपूज्यैश्च नमामि नित्यम्
 वक्ष्यामि नक्त्याप्रणतान्तरात्मा ॥
 यथाज्ञिधान किलसद्गुणीयं
 तस्यस्वरूपं शुभ्रज्ञावज्ञाव्यम् ॥१॥

पिताकुलीनेश्च मनः सुखारूपः
 सुगीलधर्त्री जननीहिजेती ॥
 श्राद्धोदयवंश्यः सुखलाल संज्ञः
 ग्रामः प्रसिद्धः सरसेतिनाम्ना ॥२॥

आ ब्रह्मचारी जिन धर्मरागी
 सम्यक्तव धारी विरति प्रज्ञावी ॥
 संत्यज्य संसार-मसार-मृद्धि-
 रत्नाकराख्यस्य गुरोश्च पार्श्वेति ॥३॥

चारित्र-मादायसदा विद्वारी
 विनातिचारं यति धर्मधारी
 श्रीमाज्ञिताहो गुणभूतपोतम्
 संसारपाराय परंदधार ॥ ४ ॥

सुबुद्धि सङ्गी कुमति प्रणांशी
 खलप्रबोधी शुन्न मार्गदर्शी
 सार्थाणि सूत्राणि पपाठ धीरः
 गजेन्द्र तुल्यो वचनेषु वीरः ॥ ५ ॥

रराज नित्यं करुणैक पात्रम्
 जीवोपकारी सुखसागराख्यः
 सत्यार्थवक्त्या सुजनान्निनन्धः
 साधुप्रज्ञावोज्झितमोहमायः ॥ ६ ॥

अन्तारिपून्वाह्य परिग्रहारी—
 न्त्यागी निरागी ज्ञविशर्मकारी
 जगत्प्रसिद्धो बहु मान धाम
 एजिर्गुणैः सत्यमाजगाम ॥ ७ ॥

त्रैलोक्यसिन्धो ! हरितामुपेत !
 आनन्दकारी शुन्नज्ञावन्नक्तिम्
 कुर्वन्तिलोका नवतत्त्वसिद्धिम्
 तेवह्नन्नावैदुत—माप्नुवन्ति ॥ ८ ॥

बुद्धन्तीं वीक्ष्यामू—मतिशुन्न गुणाचार तरणीम् ॥
 गणाधोऽ स्वामिन् ! युगपदवदध्रे जवजले ॥
 कथन्नोपास्यामेतव शुन्नगुणाः मङ्गलकराः
 गुरोः पूर्णाब्धेर्वैचरण युगले केमनमनम् ॥ ९ ॥

मुनि केमसागर.

मु. बाकानेर.

(वीर पुत्र श्रीमान् आनन्दसागरजी महाराज कृत.)

॥ सद्गुरुगुणाष्टकम् ॥

(अनुष्टुप छन्दः)

यथाप्राणानराधारा—स्तथैव सुखसागरः ॥

नित्यं नमामि नाथत्वां । त्वमेव शरणं मम ॥ १ ॥

चखान 'दुष्ट' कर्माणि । दिव्यज्ञान दिवाकर ॥

चारित्र रत्नजण्डार । दर्शनं विमलं कृतम् ॥ २ ॥

दानशील तपोजाव । अष्टमातृ परायणः ॥

आ बाल ब्रह्मचारी च । ज्ञाविता ज्ञावना सदा ॥ ३ ॥

कषायमद निद्रादि । पञ्चेन्द्रियाणि शेषतः ॥

जितानि हास्यजिन्नूनं । वेरिणी विक्रया जिता ॥ ४ ॥

निर्जितौ काममोहौ च । रागद्वेष विवर्जित ॥

धौतं सकल मिथ्यात्वं । सम्यक्तव रागरङ्गित ॥ ५ ॥

नयनिक्षेप संवेत्ता । गुणस्थानं विशेषतः ॥

विजानोति गुणग्राहिन् । स्याद्वादश्च महारसम् ॥ ६ ॥

त्वमेव प्राणकाधारः । त्वमेव हितकारकः ॥

त्वमेव सुखसौन्दर्यः । त्वमेव जवतारकः ॥ ७ ॥

पवित्रनाम जापेन । ज्ञानादि सकलं फलं ॥

लज्जन्ते सर्व धीमन्तः । नैवात्रकोपि संशयः ॥ ८ ॥

त्रैलोक्यसिन्धोर्नवतापहर्तु—

गुरोः प्रसाद प्रप्नुताङ्गितान्तः ॥

तस्यैवसानन्द सुखाम्बुराशेः ।

पादौ सदानन्दरसेन नौमि ॥ ए ॥

॥ शुभम् ॥

ANANDSAGAR.

॥ ॐ ॥

(श्रीमान् हरिसागरजी महाराज कृत)

॥ गुरुवर्य प्रशंसा ॥

॥ शिखरणी वंद ॥

सुः— सुधारसकों पीते शुद्ध ज्ञाव हृदय धरके

खः— खयोपशम श्रेणी ध्यान धरते सुखद होके

साः— सामर्थ्य रक्कते थे कर्म अरिको नष्ट करके

गः— गम्यागम्य वस्तु मनन करते हर्ष धरके ॥१॥

रः— रटन करते थे मुक्तिपुरीका अदनिश ही

जीः— जीवोंको बचाते थे अज्ञय देके आप खुद ही

महाः— महा क्रोधादि रागद्वेषको दूर करते

राजः— राज पुंजधारी चरण आके नमन करते ॥२॥

॥ ३ ॥
॥ दोहरा ॥

सुखसागर मुनिराजके चरण करूं प्रणाम ॥
गुण गावुं तिनके सदा अक्षर २ नाम ॥ १ ॥

सु:- सुगुरु गुण है अति सदा । सुखसंपत्ति दातार ॥
सुज्ञ मार्गकों धारते । सुमती यज्ञ जंडार ॥ २ ॥

ख:- खरतर गठकों धारते । खसम अती विस्तार ॥
खप करते थे मोक्षकी । खणते कर्म विकार ॥ ३ ॥

सा:- साधु धर्मकों पावते । साधे तप विधि वार ॥
सावधान मनकों करि । सागर तरे संसार ॥ ४ ॥

ग:- गहिरे सकल समुद्रे । गमन करे जव पार ॥
गमनागमन निवारके । गहे मुक्ति दरवार ॥ ५ ॥

र:- रमण करे निज ज्ञावमे । रहे सदा एकांत ॥
रम्य वस्तु विचारते । रत्नत्रयी सुख शांत ॥ ६ ॥

जी:- जीते मन वच कायकों । जीव दया धरनार ॥
जीव तत्वको धारते । जीवन प्राणाधार ॥ ७ ॥

म:- ममताकों मारे गुरु । मनकों वश करनार ॥
मगन ज्ये शुद्ध ध्यानमें । मन वांछित देनार ॥ ८ ॥

हा:- हारे तिनसे कर्म हैं । हार गये सबी डुष्ट ॥
हाम धरी गुरु वंदीये । हाथ जौरु धर मिष्ट ॥ ए॥

रा:- राखे षट् काया प्रति । रागद्वेष करी दूर ॥
राचे नहीं मोह राजसैं । राख सदा मुज सूर ॥ १०॥

ज:- जन्म मरणको मेटते । जराकों दूर निवार ॥
जग मांही दीपे सदा । जयजय करुणा धार ॥ ११॥

उन्नीसे सीतरमें माघ मास गुरुवार ॥
कृष्ण पक्ष दिन चौथको फलवर्द्धिनगर मझार ॥ १२॥

यह गुण गाया है सही तुठ मति अनुसार ॥
हरिको शरणे राखिये दीजिये दरिशाण सार ॥ १३॥

मुनि हरिसागर.

मु. बीकानेर.

॥ ॐ ॥

॥ श्री बीतरागेभ्यो नमः ॥

॥ श्रीमत् सुखसागर सद्गुरुभ्योनमः ॥

(मुनिवर्य श्रीमान् हरिसागरजी महाराज तथा वीर

पुत्र आनंदसागरजी महाराजादि कृत.)

॥ सद्गुरु गढ़ूली संग्रह ॥

हम कल्याण गुरु वंदो मोरे प्यारे ॥

वंदत हो आनंदो मोरे प्यारे ॥ टेक ० ॥

जन्म जीव उपकारके हेतु । दिव्य चारित्र तुमारो ॥
निर्मल कीनो दर्शन तुम गुरु । ज्ञान तणो जंमारो ॥ मोरे० ॥ कृपा० ॥ १ ॥

बाल ब्रह्मचारी गुरु शोने । महिमा अपरंपारो ॥
यति धर्म करी दीपता गुरुवर । देशना अमृत धारो ॥ मोरे० ॥ कृपा० ॥ २ ॥

सायर सप गंजीर गुरुवर । रवि सम तेज प्रतापो ॥
शशि समान है शौम्यता गुरुकी । मणि सम तुम गुरु दीपो ॥ मोरे० ॥ कृपा० ॥ ३ ॥

अष्टापद सम मूरवीर गुरु । डर्यर कर्म हटावो ॥
आतम ध्यानमें मग्न होयके । मोह नगरको द्वावो ॥ मोरे० ॥ कृपा० ॥ ४ ॥

बीकानेरमें आप विराजो । दर्शन कर दुलसायो ॥
दिलमा, हर्ष न भावे गुरुवर । आनंद, संघमा, जायो ॥ मोरे० ॥ कृपा० ॥ ५ ॥

बीर चौबीस्से बायालिस माही । श्रावण मास सुहायो ॥
कृष्ण बीज गुरुवार सुहावे । हरप १ गुण गायो ॥ मोरे० ॥ कृपा० ॥ ६ ॥

गुरु सम अवर न दूजो जगमें । चरणोंमें शीस नमायो ॥
दास आनंद आनंदमें, जीले ॥ मन बाँठित फल पायो ॥ मोरे० ॥ कृपा० ॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

सुखसागर गुरु बढीये । शुज जाव घरीने ॥ हाँहारे शुज जाव घरीने ॥
सुमती गुप्तीकों पालते । बहु हर्म घरीने ॥ हाँहारे बहु हर्म घरीने ॥ १ ॥

पच महाव्रत धारिया । पाले पद काया ॥ हाँहारे पाले पद काया ॥
जीहा दोष निवारता । सहुको मन जाया ॥ हाँहारे सहुको मन जाया ॥ २ ॥

जन्म जीव उपदेश दे । शुज पंथ बताया ॥ हाँहारे शुज पंथ बताया ॥
तारे कोई नरनारको । ज्ञानी गुरुराया ॥ हाँहारे ज्ञानी गुरुराया ॥ ३ ॥

खरतर मठमें दीपता । गुरु गुणका दरिया ॥ हाँहारे गुरु गुणका दरिया ॥
संयम सतर प्रकारसे । शुज सपदा बरिया ॥ हाँहारे शुज सपदा बरिया ॥ ४ ॥

सतावीश गुणें करी । सोहे महाराया ॥ हांहांरे सोहे महाराया ॥
तिणकें चरण सरोजमें । नमतां सुख पाया ॥ हांहांरे नमतां सुख पाया ॥५॥

वीर जिनंदके पाठमे । सुविहित पक्ष धरिया ॥ हांहांरे सुविहित पक्ष धरिया ॥
श्रद्धा सूत्र सिद्धांतपे । करते हित करिया ॥ हांहांरे करते हित करिया ॥६॥

ऐसे गुरुको वंदना । करिये जवि प्राणी ॥ हांहांरे करिये जवि प्राणी ॥
रिखि समृद्धि सुख संपदा । वरिये चित आणी ॥ हांहांरे वरिये चित ॥७॥

संवत् उन्नीसे इकोतरे । वदि माघ सवाया ॥ हांहांरे वदि माघ सवाया ॥
चौथ दिवस मनोहरूं । मंगल वरदाया ॥ हांहांरे मंगल वरदाया ॥ ८ ॥

गाय हरि जक्ति जरी । गुरु गुण मणि माला ॥ हांहांरे गुरु गुण मणि ॥
वंछित फलको दीजिये । मांगु सुविशाला ॥ हांहांरे मांगु सुविशाला ॥ ९ ॥

॥ ॐ ॥

आ ठे लाल—यह देशी ॥

सगुरु बंड पाय । आनंद अङ्ग न माय ॥

गुरुराज सुखसागर । गुरु वंदियेजी ॥ १ ॥

दिव्य ज्ञान जंमार । दर्शन निर्मल धार ॥

गुरुराज । चारित्र महिमा अति वणजी ॥ २ ॥

मनमोहन दीदार । देशना अमृत धार ॥

गुरुराज । ज्ञान्य जीव प्रति बोधियाजी ॥ ३ ॥

नय निक्षेप श्रीकार । गुण स्थान सुविचार ॥

गुरुराज । स्यादाद रस जीलताजी ॥ ४ ॥

धर्म धुरंधर नाथ । सुमति सखीके साथ ॥

गुरुराज । कर्म रिपुको जीतियाजी ॥ ५ ॥

एक सुनो अरदास । मैं हूँ तुमारा दास ॥

गुरुराज । मन वांछित पूरो सदाजी ॥ ६ ॥

(३३१)

कृपा करी मोय तार । जीवन प्राण आधार ॥
 गुरुराज । तुम सम शरण अबर नहीजी ॥ ७ ॥
 बोकानेर मझार ॥ धरु श मझलचार ॥
 गुरुराज । जय श वरत्या चहुँ दिशीजी ॥ ८ ॥
 बीर चौबीस्से सार । इकतालीस गुणवार ॥
 गुरुराज । जयगंता बर्तो सदाजी ॥ ९ ॥
 मातृकृष्ण जोमवार । चौथ दिवस जयकार ॥
 गुरुराज । आनद हर्ष वरामणाजी ॥ १० ॥
 दिव्य जक्ति चित लाय । चरणों में शोस नमाय ॥
 गुरुराज । दास आनंद गुण गावियाजी ॥ ११ ॥
 ॥ १२ ॥

(गुरु गुण गहूली)

जगतमें गुरुपद मुखकारी गुरु जगवान है उपकारी—टेक०

मुखसागर गणनाथ थे । ताके पठधर खास ॥
 गणनाथक गुरुराय थे । जक्त जनोमें वास—जगत० ॥ १ ॥
 मद पाँचोको दूर हटाया । सस्रप गुणके धार ॥
 जव्य जनोको मार्ग दिखाया । जगजीवन आधार—जगत० ॥ २ ॥
 सकल कर्ममें मोह कुराला । अद्भुत गति है जारी ॥
 याको मंद किया सुविशाला । जगमें जयजयकारी—जगत० ॥ ३ ॥
 तीन रत्नको निर्मल करके । पाया अनुजव सार ॥
 बीतरागमें व्यान लगाके । करलियां नव निस्तार—जगत० ॥ ४ ॥
 कर्म रिपुने धूम मचाया । है जे जयझर जारी ॥
 रूप देवकर थरहर काषा ॥ कहेता न आवे पारी—जगत० ॥ ५ ॥

मैं अज्ञानी अधम अपावन । कैसे होऊँ जवपारी ॥
 दूर करो गुरुदेव ये डर्मन । शरण ग्रही हितकारी—जगत० ॥६॥
 सुखकारी आनन्द दिवाकर । तीन लोक सुखकारी ॥
 आनंदकी वरषा जगसुखकर । आनंद आनंदधारी—जगत० ॥७॥

॥ ॐ ॥

छगन गुरु सुन्दर दरश दिस्वाया ।
 गुरु उग्र तपस्वी कहाया—ठगन० ॥ टेक० ॥

नगर लोहावट दर्शन पाया ।
 चरण कमल सुख दाया ॥
 आनन्द ठाया हर्ष न माया ।
 बाल हृदय हुलसाया—ठगन० ॥ १ ॥

दानशील शुभ्र जाव ना जाया ।
 वावन व्रत्त सुहाया ॥
 दिव्य तपस्या अङ्ग जराया ।
 जगमें जय वरताया—ठगन० ॥ २ ॥

आगम अनुपम धर्म दिपाया ।
 तत्त्वज्ञानसे रङ्गाया ॥
 अति उत्कट संयम आचरिया ।
 निर्मल दरशन धरिया—ठगन० ॥ ३ ॥

अष्टपञ्च षट् सप्त हटाया ।
 दश गुण अङ्ग रमाया ॥
 तीन तत्त्वसे भेम लगाया ।
 जगमें धर्म दिपाया—ठगन० ॥ ४ ॥

काम मोहको मार जगाया ।
 परमारथ पद व्याया ॥
 शुद्ध स्वरूप रमणता रमिया ।
 आतम अनुभव वरिया-ठगन० ॥ ९ ॥

अष्टमी शुक्रा चैत्र वधाया ।
 शुक्रवारको आया ॥
 दम्भगति सम्बत् जिनराया ।
 परमानन्द वरपाया-ठगन० ॥ ६ ॥

मुख दाता जगवॉन आदरिया ।
 तीन लोक गुण दरिया ॥
 आनन्दकारी आनन्द ठाया ।
 आनन्द आनन्द पाया-ठगन० ॥ ७ ॥

॥ आनन्द परम-मुखम् ॥

॥ ॐ ॥

(पूज्य गुण गह्वली)

त्रैलोक्य गुरु-विरह सखी नहीं जाय कृपा करतारीये ॥
 डर्लन दर्शन-हम डःखिये निरावारको जल्दी दीजिये-टेक
 गुरु आप वने ठपकारी ये । अद्वैत ज्ञान गुण धारी ये ।
 सयम दर्शन मुखकारी ये—त्रैलोक्य० ॥ १ ॥

गुरु करुणारसके सागर थे । मुनि गुण रत्नोंके आगर थे ॥
 गुरु सन दम मुख जंदार थे—त्रैलोक्य० ॥ २ ॥

गुरु चमत्कार एक जारी था । दर्शन कर्त्ता डःखहारी था ॥
 जाका रोम १ दुलसारी था—त्रैलोक्य० ॥ ३ ॥

गुरु ज्ञान बिना कैमे जीवें । यह आप बिना कैसे पावें ॥
यह दुःख अनन्त कैसे सेवे—त्रैलोक्य ॥ ४ ॥

गुरु शरण समो नहीं कोई है । जिनको आज्ञाव जो होई है ॥
वह जीवित मृतक समो ही है—त्रैलोक्य ॥ ५ ॥

मैं शुध उपयोगसें जूला हूँ । गुरु कृपा करो मैं चूका हूँ ॥
मैं अशरण जावना जूला हूँ—त्रैलोक्य ॥ ६ ॥

मैं अरजी आन गुजारी है । आनंदको आनन्दकारी है ॥
आनन्द परमानन्द धा ी है—त्रैलोक्य ॥ ७ ॥

॥ शुभम् जुयात् ॥

॥ ॐ ॥

बंदो २ रे त्रैलोक्य गुरुरायकोंजी ।

बंदो त्रैलोक्यसिंधु आधार-गणपतिरायकोंजी ॥ टंक ॥

सुन्दर दर्शन कर दीदार ॥

दिलमें आनन्द हर्ष अपार ॥

प्रणमुं चरण शरण सुखकार-बंदो ॥ १ ॥

ज्ञानी जैन समयके जान ॥

तैसे पर दर्शन विज्ञान ॥

तात्त्विक गुण रत्नो की खान-बंदो ॥ २ ॥

गुरु सम दम रस गुण धार ॥

ये है सकल धर्मका सार ॥

याते तुम जगके आधार-बंदो ॥ ३ ॥

अनुभव आत्म गुण हितकार ॥

उसमें रमते वारंवार ॥

जगमें वरते जय २ कार-बंदो ॥ ४ ॥

‘गुरु एक अतिशय ज़ारी ।’

जगमें तुमरी है बलिहारी ॥

गुरु शान्त मुझ प्यारी-बंदो ॥ ५ ॥

जो करजोड़ी गुणकों गावे ।

ताके पाप सकल मिट जावे ॥

निर्मल जावनो दिलमें जावे-बंदो ॥ ६ ॥

आनंद सदानंदका गावे ।

आनंद सय जग ध्यावे ॥

आनंद परमानंदको पावे-बंदो ॥ ७ ॥

॥ आनन्दः परमं सुखम् ॥

॥ ८ ॥

दिलजर दर्शन दो हो स्वामी ॥ तुम हो दीनदयाल हो स्वामी ॥ टेक ॥

खरतर गठमा दीपतः स्वामी । सुखसागर मुनिराया हो स्वामी ॥

मूनि जहाजको तारी हो स्वामी । मोक्ष मार्ग बताया हो स्वामी-दिल ॥ १ ॥

तसपटधर जगवान् गुरुके । त्रैलोक्य सागर गुरुराय हो स्वामी ॥

पर उपकारमा मग्न होयके । करते आत्म-ध्यान हो स्वामी-दिल ॥ २ ॥

हरिसागर हरि तूख हो स्वामी । जग्य जीव मतिबोध हो स्वामी ॥

दर्शन पदको धारत स्वामी । करत, निज उपकार-हो स्वामी-दिल ॥ ३ ॥

नवनिधिमागर मुनिवर स्वामी ॥ ज्ञान निधिको चवे हो स्वामी ॥

जैन बालक अव बोधता स्वामी । मोक्ष मार्गको ध्यावे हो स्वामी-दिल ॥ ४ ॥

द्वैपसागर मुनिराय कहावे । चारित्र रत्न सुहाय हो स्वामी-॥

सदचारी बहु सुख पावे । आनंद अद्भुत माय हो स्वामी-दिल ॥ ५ ॥

आनंद सिन्धु आनंद पावे ॥ ज्ञान वैराग्य अपार हो स्वामी ॥
सिंह परे गुरु धर्म दिपावे । देशना अमृतधार हो स्वामी-दिल ॥ ६ ॥

वज्रजसागर मुनि पद सुखकारी । गुरु जक्तिमें जारी हो स्वामी ॥
जक्तिसागर मुनि जक्तिमें शोहे । विनयवन्त गुण मोहे हो स्वामी-दिल ॥ ७ ॥

वीर चौबीस्से उनचालीस स्वामी । पर्व पर्यूपणकी बलिहारी ॥
जाड़व कृष्ण एकादशी स्वामी । नगर फलोदीमें जय १ कारी-दिल ॥ ८ ॥

चरण कमजमें वंदना स्वामी । विनय करी करें जौड़ हो स्वामी ॥
बाल शिष्य इम विनवे स्वामी । हममनशागुरुपुरोहो स्वामी ॥ ९ ॥

॥ ॐ ॥

मुनोरे जाई आज आनंद धरी ॥ टेक ॥

मुनि दर्शनके लाज लिये हम
डःख जावे बिखरी ॥ सु० ॥ १ ॥

सोना केरो सूरज उगियो ।
आज बिकाणे खरी ॥ सु० ॥ २ ॥

आज हमारे मुरतरु फलियो ।
जावे करम जरी ॥ सु० ॥ ३ ॥

खरतर गड्डमें दीपे महा मुनि ।
सुख सूरि पट धरी ॥ सु० ॥ ४ ॥

गुरु जगवानके पटधर सोहें ॥
मुझ शान्त धरी ॥ सु० ॥ ५ ॥

त्रैलोक्य सिंधु नाम धरावे ।
हरिनिधि सांघं बरी ॥ सु० ॥ ६ ॥

हेम गुणे करी शोभे महा मुनि ।
आनंद अंग जरी ॥ मु० ॥ ७ ॥

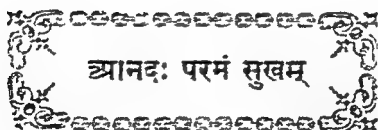
बृहज्ज जकी है महु सयका ॥
वन वन आज परी ॥ मु० ॥ ८ ॥

उप सप्त नदियां आज बही है ।
झा फली मवरी ॥ मु० ॥ ९ ॥

पूरव पुण्य उदय हुवो हमारो ।
पाया दर्श करी ॥ मु० ॥ १० ॥

श्री मंत्र चाहे मन बच तनसैं ।
गुम्की जय जरी ॥ मु० ॥ ११ ॥

शेरसिंह चरणोका चाकर ।
कहे गुम् पाय पगी ॥ मु० ॥ १२ ॥



आनंदः परमं सुखम्

॥ श्री सुखसागरजी मुनि समुदाय यन्त्र ॥ ❀

क्र.सं.	नाम मुनिराजोंके.	गुरुवर्यके नाम	विद्यमानया काल प्राप्त.	कौन पृथक्के शासनमें हुवे.
१	गुणवन्तसागरजी महाराज.	राजसागरजी महाराज.	काल प्राप्त.	राजसागरजी महाराज.
२	पद्मसागरजी महाराज.	"	"	"
३	स्थानसागरजी महाराज.	"	"	"
४	जगवानसागरजी महाराज.	सुखसागरजी महाराज.	"	सुखसागरजी महाराज
५	चिदानन्दजी महाराज.	"	"	"
६	रामसागरजी महाराज.	"	"	"
७	कल्याणसागरजी महाराज.	"	"	"
८	रत्नसागरजी महाराज.	"	"	"
९	ठगनसागरजी महाराज.	स्थानसागरजी महाराज.	"	जगवानसागरजी महाराज
१०	चैतन्यसागरजी महाराज.	जगवानसागरजी महाराज.	"	"
११	सुमतिसागरजी महाराज.	"	विद्यमान	"
१२	गुमानसागरजी महाराज.	"	कालप्राप्त.	"
१३	धनसागरजी महाराज.	"	"	"

* श्री सुखनागर मुनि समुदाय यन्त्र होने हुवे भी श्रीमान् राजसागरजी महाराजके भी कतिपय शिष्य इसमें सम्मिलित किये गये हैं उसका यही कारण है कि वे मुनिराज आपके शासनमें थे.

१४	तेजसागरजी महाराज	"	"	"
१५	कीर्तिमागरजी महाराज	सुमतिसागरजी महाराज	"	स्वतन्त्रतया सुमति सागरजी मणके पास
१६	त्रैलोक्यसागरजी महाराज	जगदान्सागरजी महाराज	विद्यमान	जगवान्मागरजी महाराज
१७	रत्नसागरजी महाराज	त्रैलोक्यमागरजी महाराज	"	उगनसागरजी महाराज
१८	हरिमागरजी महाराज	जगवान्मागरजी महाराज	"	"
१९	कल्याणसागरजी	हरिसागरजी महाराज	"	"
२०	रूपासागरजी महाराज	सुखसागरजी महाराज	कालमास	"
२१	लब्धिमागरजी महाराज	कीर्तिमागरजी महाराज	विद्यमान	स्वतन्त्रतया सुवति सागरजी महाराजके पास
२२	जावसागरजी महाराज	"	"	"
२३	मणिसागरजी महाराज	सुमतिसागरजी महाराज	"	"
२४	पूर्णसागरजी महाराज	उगनसागरजी महाराज	कालमास	उगनसागरजी महाराज
२५	नवनिधिसागरजी महाराज	पूर्णसागरजी महाराज	विद्यमान	"
२६	क्षेमसागरजी महाराज	"	"	"
२७	रूपसागरजी महाराज	त्रैलोक्यसागरजी महाराज	"	"

१८	मणिसागरजी महाराज.	रूपसागरजी महाराज.	"	लपता
१९	आनंदसागर	त्रैलोक्यसागरजी महाराज.	"	त्रैलोक्यसागरजी महाराज
२०	कल्याणसागरजी.	"	"	"
२१	वद्वज्रसागरजी.	हेमसागरजी महाराज.	"	"
२२	जक्तिसागरजी.	त्रैलोक्यसागरजी महाराज.	"	"

